उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र

प्रवचन-क्रम

1. जग-जग कहते जुग भये...2
2. डूबो..25
3. प्राण के ओ दीप मेरे...46
4. सरस राग रस गंध भरो...70
5. मैं सिर्फ एक अवसर हूं...92
6. आनंद स्वभाव है...113
7. संन्यास: परमात्मा का संदेश...136
8. मेरी आंखों में झांको..159
9. वेणु लो, गूंजे धरा...179 10..सावन आया अब के सजन 200

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र पहला प्रवचन

जग-जग कहते जुग भये

पहला प्रश्नः ओशो, नव-आश्रम के निर्माण में इतनी देर क्यों हो रही है?
हम आस लगाए बैठे हैं कि कब हम भी बुद्ध-ऊर्जा के अलौकिक क्षेत्र में प्रवेश करें। और हम ही नहीं, हजारों आस लगाए बैठे हैं। अंधेरा बहुत है, प्रकाश चाहिए। और प्रकाश के दुश्मन भी बहुत हैं। इससे भय भी लगता है कि कहीं यह जीवन भी और जीवनों की भांति खाली का खाली न बीत जाए।

नीलम, प्रकाश की आकांक्षा जग गई तो जीवन खाली नहीं बीत सकता है। प्रकाश की आकांक्षा बीज है। और बीज है तो अंकुरण भी होगा। अपनी आकांक्षा को तीव्रता दो, त्वरा दो। अपनी आकांक्षा को अभीप्सा बनाओ। आकांक्षा-अभीप्सा का भेद ठीक से समझ लो। आकांक्षा तो और बहुत आकांक्षाओं में एक आकांक्षा होती है। अभीप्सा है सारी आकांक्षाओं का एक ही आकांक्षा बन जाना।
जैसे किरणें अलग-अलग छितर कर पड़ें तो आग पैदा नहीं होती; ताप तो होगा,
आग नहीं होगी। लेकिन किरणों को इकट्ठा कर लिया जाए और एक ही जगह संगृहीत किरणें पड़ें तो ताप ही नहीं आग भी पैदा होगी। अभीप्सा आकांक्षाओं की बिखरी किरणों का इकट्ठा हो जाना है।
मेरे बिना भी तुम्हारा पहुंचना हो सकता है। बुद्ध-क्षेत्र के बिना भी बुद्धत्व घट सकता है। बुद्धत्व का घटना बुद्ध-क्षेत्र पर निर्भर नहीं है। बुद्ध-क्षेत्र बुद्धत्व के लिए कारण नहीं है, निमित्त मात्र है। सहारा मिलेगा, सहयोग मिलेगा। गुरु-परताप साध की संगति! लेकिन जो घटना है वस्तुतः वह तुम्हारे भीतर घटना है, बाहर नहीं।
मेरा आश्रम तुम्हारे भीतर निर्मित होना है, तुम्हारे बाहर नहीं। मेरा मंदिर तुम्हें बनना है। बाहर के मंदिर बने तो ठीक, न बने तो ठीक; उन पर निर्भर न रहना। बाहर के मंदिरों का बहुत भरोसा न करना। उनके बनने में बाधाएं डाली जा सकती हैं, हजार अड़चनें खड़ी की जा सकती हैं--की जा रही हैं, की जाएंगी। वह सब स्वाभाविक है। वह सदा से होता रहा है--नियमानुसार है, परंपरागत है, नया उसमें कुछ भी नहीं है। चिंता का कोई कारण नहीं है। नव-आश्रम निर्मित होगा, लेकिन जितनी बाधाएं डाली जा सकती हैं, डाली ही जाएंगी। डाली ही जानी चाहिए भी। क्योंकि सत्य ऐसे ही आ जाए और असत्य कोई बाधा न डाले तो सत्य दो कौड़ी का होगा। सुबह ऐसे ही हो जाए, अंधेरी रात के बिना हो जाए, तो क्या खाक सुबह होगी! गुलाब खिलेगा तो कांटों में खिलेगा।
बुद्ध-क्षेत्र का यह गुलाब भी बहुत कांटों में खिलेगा।
तुम्हारी प्रीति समझ में आती है, तुम्हारी प्रार्थना समझ में आती है। मगर बुद्ध-क्षेत्र के लिए रुकना नहीं है, एक पल गंवाना नहीं है। होगा तो ठीक, नहीं होगा तो ठीक। मगर तुम्हें इस जीवन में जाग कर ही जाना है।
जग-जग कहते जुग-जुग भए!
कब से जगाने वाले जगा रहे हैं! कितने जुग बीत गए! जागो, जागो! बाहर के निमित्तों पर मत छोड़ो। यह भी एक निमित्त बन जाएगा कि क्या करें, आश्रम में प्रवेश नहीं मिल पा रहा है; मिल जाता प्रवेश तो आत्मा को उपलब्ध हो जाते। नहीं; प्रवेश मिल जाएगा तो सुविधा जरूर होगी, सुगमता होगी, सीढ़ियां चढ़नी आसान हो जाएंगी, किसी के हाथ का सहारा होगा। लेकिन यह तो एक पहलू है। एक दूसरा पहलू भी है जो कभी भूल मत जाना। कभी-कभी किसी के हाथ का सहारा बाधा भी बन जाता है। क्योंकि हाथ के सहारे मिल जाते हैं तो लोग समझते हैं अपने पैरों पर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। लोग बैसाखियों पर निर्भर हो जाते हैं। और जो बैसाखियों पर निर्भर है, बिना लंगड़ा हुए लंगड़ा हो जाता है।
मैं तो तुम्हारी सारी बैसाखियां छीन लेना चाहता हूं। वही होगा नव-आश्रम में। तुम आओगे बैसाखियां लेकर या बैसाखियां लेने; लाओगे बैसाखियां, छीन ली जाएंगी, उनकी होली हो जाएगी। और जो तुम आए हो लेने वे तुम्हें कभी

दी नहीं जाएंगी। मैं चाहता हूं तुम्हारे पैर तुम्हें ले जाएं परमात्मा तक। क्योंकि और कोई जाने का मार्ग नहीं, उपाय नहीं।
बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध तो केवल मार्ग दिखा सकते हैं, चलना तो तुम्हें होगा।
कहावत है न हमारे पास--घोड़े को नदी तक ले जा सकते हो, पानी दिखा सकते हो, पिला नहीं सकते। बुद्ध-क्षेत्र नदी तक ले जाएगा, पानी दिखा देगा; मगर पीना तो तुम्हें होगा, कंठ तो तुम्हारा प्यासा है! और जिसे पीना है नीलम, वह आज ही पीए, अभी पीए, कल के लिए प्रतीक्षा न करे।
नव-आश्रम निर्मित होगा, तब तक के लिए टालो मत। सब स्थगन मंहगे पड़ते हैं। कल का भरोसा क्या है? आज है, बस इतना काफी है। आज ही होना चाहिए जो होना है, अभी होना चाहिए। एक पल पर भी टाला तो कौन जाने पल आए न आए!
इसलिए कहूंगा कि टालो मत। मुझसे प्रीति लग गई तो मेरे क्षेत्र में प्रवेश हो गया। यह क्षेत्र बाहर की बात नहीं है, अंतरतम की है, अंतरात्मा की है। मुझसे बाहर दूर भी रहो तो कुछ हर्ज नहीं; भीतर मुझसे पास रहो। बाहर से मेरे पास भी हुए और भीतर से पास न हो सके तो वैसा पास होना किस काम आएगा? तूने पूछाः "नव-आश्रम के निर्माण में इतनी देर क्यों हो रही है?"
होनी ही चाहिए। यह कोई छोटी-मोटी घटना नहीं है। यह कोई छोटा-मोटा आश्रम भी होने वाला नहीं है। जिस आश्रम के लिए हम बीज बो रहे हैं, वह इस पृथ्वी का सबसे बड़ा आश्रम होगा। दस हजार संन्यासी वहां आवास करेंगे। महत ऊर्जा का बवंडर उठाना है। पूरी पृथ्वी को जो गैरिक कर दे, ऐसी गुलाल उड़ानी है। रंग दे सारे जगत को, ऐसी फाग खेलनी है।
निश्चित ही फाग के दुश्मन हैं, गुलाल के दुश्मन हैं, रंगों के शत्रु हैं। उदास, गंभीर, शास्त्रज्ञानी, पंडित-पुरोहित, राजनेता, उनकी लंबीशृंखला है। और मैं जो कह रहा हूं वह बगावत है। मैं जो कह रहा हूं वह सीधी बगावत है। मैं जिंदा हूं, यह भी चमत्कार है नीलम! जैसे कोई सुकरात को जहर न पिलाए! जैसे कोई जीसस को सूली न चढ़ाए! जैसे कोई मंसूर को मारे न! मैं हूं, यह भी चमत्कार है! इस चमत्कार का लाभ उठा लो। इस बगावत में डुबकी लगा लो। इसे किसी बहाने मत टालो। मन बड़े बहाने खोज लेता है।
मेरे नव-आश्रम का विरोध हो रहा है, होगा, होता रहेगा। नव-आश्रम फिर भी निर्मित होगा। मगर मैं चाहता हूं कि तुम उस पर अपनी सारी आशाओं को मत टिका देना। तुम तो काम में लगी रहो, क्योंकि नव-आश्रम की ईंट कौन बनेगा? नव-आश्रम कोई पत्थर, मिट्टी, गारे से नहीं बनने वाला है। तुमसे बनने वाला है! संन्यासियों से बनने वाला है! नीलम, तुझे उसकी ईंट बनना है। तो तुम तो तैयार होओ। ईंटें तैयार हो जाएंगी तो आश्रम भी बनेगा। कौन रोक सका है? सत्य को रोकने की चेष्टा सदा की गई है, मगर कौन कब रोक सका है?
राजनेता विरोध डालेंगे, क्योंकि मैं एक ऐसी दुनिया देखना चाहता हूं जहां राजनीति न हो। मैं एक ऐसी दुनिया देखना चाहता हूं जहां शासन-तंत्र कम से कम हो। क्योंकि शासन-तंत्र जितना ज्यादा हो उतनी गुलामी होती है। शासन-तंत्र जितना कम हो उतनी स्वतंत्रता होती है। थोड़ा तो जरूरी रहेगा। मैं पूर्ण अराजकवादी नहीं हूं, क्योंकि पूर्ण अराजकता संभव नहीं है। पूर्ण अराजकता तो तभी संभव है जब सभी लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएं। ऐसा तो कब होगा, कहना मुश्किल; कभी होगा भी, यह भी कहना मुश्किल। पूर्ण अराजकता तो तभी हो सकती है जब बुद्धों का समूह हो। बुद्धुओं के समूह में शासन की जरूरत तो रहेगी। बुद्धुओं के कारण शासन की जरूरत है। तो जब तक बुद्धूपन है दुनिया में, शासन भी रहेगा किसी न किसी मात्रा में। मगर उसकी न्यूनतम मात्रा हो जानी चाहिए। शासन का तंत्र ऐसी किसी भी चीज का विरोध करेगा जो शासन के तंत्र की जड़ें काटता हो।
राजनेता मेरा विरोध करेंगे ही। श्री मोरारजी देसाई का मुझसे विरोध आकस्मिक नहीं है, अकारण नहीं है। ठीक होना चाहिए वही है। जैसा होना चाहिए वैसा ही है। क्योंकि उन्हें एक बात साफ दिखाई पड़ती है कि अगर मेरी बात सही है तो राजनेता का अस्तित्व ही गलत है। अगर उसको अपने अस्तित्व को बचाना है तो मेरी बात जितने कम लोगों तक पहुंचे उतना अच्छा। रेडियो पर मत जाने दो, टेलीविजन पर मत जाने दो, अखबारों में मत छपने दो; लोगों को मेरे पास मत आने

दो; जो आ जाएं उनको इस तरह सताओ, इतना परेशान करो, इतना हैरान करो कि वे दोबारा आने की हिम्मत और जुर्रत न करें। यह सब हो रहा है। और मैं फिर तुम्हें दोहरा दूं कि यह सब बड़े नियमबद्ध रूप से हो रहा है। ऐसा नहीं है कि मैं इससे कुछ चकित हूं। न होता ऐसा तो मैं चकित होता, तो मैं हैरान होता। एक बहुत प्यारे फकीर थे। मेरे पास कभी-कभी आकर रुकते थे। महात्मा भगवानदीन उनका नाम था। जब सभा में कभी बोलते थे, अगर कोई ताली बजा दे तो वे बड़े नाराज हो जाते थे। मैंने उनसे पूछा कि लोग ताली बजाते हैं तो खुश होना चाहिए, आप नाराज हो जाते हैं! वे कहते कि जब भी कोई ताली बजाता है तब मैं समझता हूं कि जरूर मैंने कोई गलत बात कही होगी, नहीं तो लोगों की समझ में ही कैसे आती! अगर सही बात कहो तो लोग पत्थर मारते हैं। अगर गलत बात कहो तो लोग माला पहनाते हैं।
उनकी बात मुझे जंची। बूढ़ा ठीक कह रहा था, उचित कह रहा था। ठीक बात कहो
और लोग पत्थर न मारें, यह असंभव। क्योंकि ठीक बात उनके पैरों के नीचे की जमीन खींच लेती है। और मैंने ठीक के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना है, ऐसा तय किया। समझौते भी नहीं करने हैं। सत्य को इस ढंग से भी नहीं कहना है कि थोड़ा मीठा हो जाए। कड़वा है तो कड़वा। सत्य जैसा है वैसा ही कहना है। न समझौते, न लीपा-पोती, न ढांकना, न मुखौटे। तो कठिनाई तो होगी। राजनेता की कठिनाई है। फिर नौकरशाही है इस देश में। शायद दुनिया में ऐसी नौकरशाही कहीं भी नहीं। लालफीताशाही है इस देश में। ऐसी लालफीताशाही भी दुनिया में कहीं नहीं। हमारे देश में कुछ चीजें तो बड़ी गौरव की हैं--नौकरशाही, लालफीताशाही! जो काम घड़ियों में हो जाएं वे वर्षों में नहीं हो सकते। बस फाइलें घूमती ही रहती हैं। कोई अंत ही नहीं आता।
सत्य प्रिया ने एक कहानी मेरे पास भेजी। शेरसिंह पुलिस में नौकरी करता था। एक बार पुलिस के सबसे बड़े आई.जी. साहब ने सिंह का शिकार खेलने की इच्छा प्रकट की। शेरसिंह ने सारी व्यवस्था कर दी। मचान बंधवा दिया, एक पेड़ से बकरे को बांध दिया। आई.जी., डी.आई.जी., एस.पी., आई.जी. की पत्नी और उनकी बेबी, सभी मचान पर बैठ गए। शाम का समय था, शेरसिंह वहां टार्च लेकर खड़ा हो गया। उसको बकरे के गले की घंटी बजते ही टार्च की रोशनी फेंकनी थी, ताकि आई.जी. साहब सिंह का शिकार कर सकें। काफी देर हो गई और सिंह नहीं आया तो बेबी ने अपनी मम्मी से पूछा, मम्मी, सिंह कब आएगा? मम्मी ने आई.जी. साहब से पूछा, सिंह कब आएगा? आई.जी. ने डी.आई.जी. से, डी. आई.जी. ने एस.पी. से, एस.पी. ने शेरसिंह से पूछा कि सिंह कब आएगा? और सब एक ही मचान पर बैठे हैं। मगर सरकारी ढंग होता है एक काम करने का! बेचारे शेरसिंह की जेब में तो सिंह था नहीं। फिर भी शेरसिंह ने एस.पी. साहब से कहा कि सर, सिंह आता ही होगा, जब साहब आ गए तो सिंह भी आएगा ही। अरे सरकार, सरकारी हुक्म को कौन टाल सकता है! सब पास-पास ही बैठे हैं। शेरसिंह की बात सुन कर एस.पी. ने डी.आई.जी. से, डी.आई.जी. ने आई.जी. से कहा कि सर, सिंह आता ही होगा। साहब आएं और सिंह न आए, ऐसा कहीं हो सकता है! सरकारी प्रतिष्ठा का सवाल है। आई.जी. ने अपनी पत्नी से और पत्नी ने बेबी से कहा, सिंह आता ही होगा, चिंता न कर। जहां तेरे पिताजी मौजूद हैं वहां किस चीज की कमी?
फिर बेबी तो थक कर सो गई। करीब रात को बारह बजे सिंह आया। उसकी दहाड़ से शेरसिंह, एस.पी., डी.आई.जी., आई.जी., आई.जी. की पत्नी और बेबी, सभी का जीवन-जल वस्त्रों में ही निकल कर बह गया। शेरसिंह ने टार्च की रोशनी फेंकी, आई.जी. साहब ने किसी तरह गोली चलाई। परंतु गोली बकरे को लगी। सरकारी काम! कोई तीर निशाने पर कभी लगता नहीं। और लगे भी क्या, जब जीवन-जल ही निकल गया तो अब शक्ति भी कहां रही! किसी तरह कंपते हुए हाथ, लेकिन अपनी प्रतिष्ठा भी बचानी पड़े, सब सरकारी आफिसर मौजूद हैं, तो गोली किसी तरह चलाई। आश्चर्य तो यह है कि बकरा भी कैसे मर गया! बकरे को भी पता होता कि गोली सरकारी है, नहीं मरता। आई.जी. साहब ने डी.आई.जी. से पूछा, शिकार कैसा रहा? डी.आई.जी. ने एस.पी. से पूछा, एस.पी. ने शेरसिंह से पूछा। शेरसिंह पेशोपस में पड़ा कि क्या जवाब दे! शिकार तो कुछ हुआ ही नहीं। फिर भी सोच कर उसने एस.पी. साहब से कहा, सर, शिकार अंतिम सांस ले रहा है। नौकर-चाकर भी होशियार हो जाते हैं। चमचे! उसने सिंह की बात ही छोड़ दी। उसने कहा, शिकार अंतिम सांसें ले रहा है। बकरा

अंतिम सांसें ले रहा था। एस.पी. ने डी.आई.जी. से कहा, सर, शिकार अंतिम सांस ले रहा है। डी.आई.जी. साहब ने आई.जी. साहब से कहा, सर, शिकार अंतिम सांस ले रहा है। आई.जी. साहब ने अपनी पत्नी से कहा, डार्लिंग, शिकार अंतिम सांस ले रहा है। पत्नी ने बेबी से कहा, बिटिया, शिकार अंतिम सांस ले रहा है। बड़े साहब प्रसन्न हुए। डी.आई.जी. की प्रसन्नता का क्या कहना! उन्होंने शेरसिंह की तरक्की कर दी।
शिकार बकरे का और तरक्की शेरसिंह की! और फाइलों का ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने का लुत्फ देखा आपने! और मजा यह कि सब अंधे वहीं मौजूद थे। और सिंह तो दहाड़ मार कर कभी का जा चुका था। हां, बकरा जरूर दम तोड़ रहा था। तो एक तो श्री मोरारजी देसाई का दबाव, भारी दबाव, कि मेरा कोई काम हो न सके! फिर सरकारी तंत्र--बड़ा तंत्र! जिसमें चीजें सरकती ही रहती हैं, सरकती ही रहती हैं। जिसमें किसी चीज का कभी कोई अंत आता मालूम नहीं होता। तो देर तो लग रही है। मगर देर कितनी ही हो, यह बुद्ध-ऊर्जा का क्षेत्र निर्मित होगा--निर्मित हो रहा है; क्योंकि तुम निर्मित हो रहे हो। मुझे उनकी फिक्र है नहीं। तुम निर्मित हो रहे हो। मेरी आशा तुमसे है। तुम हो, तो शेष सब हो जाएगा। लेकिन तुम टालना मत; तुम प्रतीक्षा समय की मत करना। एक-एक पल बहुमूल्यवान है।
तूने पूछा नीलमः "हम आस लगाए बैठे हैं कि कब हम भी बुद्ध-ऊर्जा के अलौकिक क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।"
प्रवेश हो गया। जो संन्यस्त हुआ, वह प्रविष्ट हो गया। प्रवेश तो प्रीति में प्रवेश है।
"और हम ही नहीं, हजारों आस लगाए बैठे हैं।"
मुझे पता है। रोज न मालूम कितने पत्र आते हैं कि कब हम भी सम्मिलित हो सकते हैं! उनके पत्र तक नहीं पहुंचें, इसकी व्यवस्था की जाती है। दिल्ली से पत्र चलता है, पूना पहुंचते-पहुंचते डेढ़ महीने लग जाते हैं! कुछ-कुछ पत्र तो छह-छह महीने में पहुंचते हैं! और जो नहीं पहुंचते, उनका तो हमें पता ही नहीं चलता। क्योंकि जब छह महीने में पहुंचते हैं, तो कुछ तो पहुंचते ही नहीं; या पहुंचेंगे छह साल में! हर पत्र खोला जाता है; कोई पत्र बिना खुला नहीं आता। हर पत्र को जितनी देर-दार की जा सके, उतनी देर-दार की जाती है। हर पत्र की जांच-पड़ताल होती है।
श्री जयप्रकाश नारायण ने जो महाक्रांति की है, उससे एक बड़ा अदभुत लोकतंत्र निर्मित हुआ है! यह लोकतंत्र है, जहां लोगों के निजी पत्र भी निजी नहीं हैं! फोन टेप किए जाते हैं। अमरीका जैसे देश में फोन टेप करने और इस तरह के उपद्रव करने के कारण निक्सन को राष्ट्रपति पद छोड़ना पड़ा। यहां यह सब रोज हो रहा है। यहां यह सब नियमानुसार हो रहा है। यहां किसी के कानों पर जूं नहीं रेंगती।
देर तो जितनी वे कर सकते हैं, करेंगे; मगर उनकी देर के बावजूद भी घटना घटने वाली है। घटना इसलिए घटने वाली है कि देर है, मगर अंधेर नहीं है। सत्य को अटका सकते हो, मगर मिटा नहीं सकते। जीसस को ही मार कर तुम क्या मार पाए! सुकरात को जहर देकर तुमने अपने को जहर दे लिया।
सुकरात जब मर रहा था, तो उसको जहर देने वाले एक आदमी ने पूछा कि सुकरात, मरते समय तुम्हारे मन को क्या हो रहा है? तुम्हारा बहुमूल्य जीवन नष्ट हो रहा है!
सुकरात ने कहा, भूल यह बात, छोड़ यह बात। मेरे कारण तुम सब का नाम भी सदियों तक याद किया जाएगा। मेरे कारण! चूंकि तुमने मुझे जहर दिया था, इतिहास में तुम्हारे नामों का उल्लेख रहेगा। अन्यथा तुम्हारे नामों का कोई उल्लेख भी होने वाला नहीं था।
वह आदमी तो चुप हो गया होगा। सुकरात जैसे लोग जब जवाब देते हैं तो मुंह बंद हो जाते हैं। सुकरात के एक शिष्य ने पूछा कि अंतिम एक प्रश्न कि जब आप मर जाएंगे तो हम आपको गड़ाएं? जलाएं? कौन सी विधि करें? सुकरात ने कहा, सुनो, यह भी सुनो! वे दुश्मन हैं, जो मुझे मार रहे हैं; और वे सोचते हैं कि मेरे मित्र हैं, जो मुझे गड़ाएंगे!

सुकरात ने कहा, न तो मारने वाले मुझे मार पाएंगे और न गड़ाने वाले मुझे गड़ा पाएंगे। मैं रहूंगा। यह मेरी आवाज गूंजती ही रहेगी। और जब भी कोई सत्य को खोजेगा, उसे राह दिखाती रहेगी। और जब भी कोई अंधेरे में टटोलेगा, उसके लिए रोशनी बन जाएगी। और जब भी कोई सच में प्यासा होगा, तो उसके कंठ में अमृत की बूंद बन जाएगी।
नहीं, नव-आश्रम रुकेगा नहीं। थोड़ी देर-अबेर। पर तुम उसके कारण स्थगित नहीं करना। तुम्हारा श्रम जारी रहे; तुम्हारा ध्यान जारी रहे; तुम्हारी प्रार्थना जारी रहे। तुम्हारी सारी प्रार्थनाओं के परिणाम में ही तो नव-आश्रम निर्मित होगा। तुम्हारी आशा के दीये जगते रहें; क्योंकि तुम्हारे दीयों से ही तो वहां दीपावली होगी। और तुम अपने हृदय को रंगे चलो, रंगे चलो; क्योंकि तुम्हारे रंगों का ही तो मुझे उपयोग करना है। गुलाल कैसे उड़ाऊंगा? उत्सव कैसे होगा?
तूने यह भी पूछा कि "अंधेरा बहुत है, प्रकाश चाहिए।"
अंधेरा कितना ही हो, चिंता न करो। अंधेरे का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। अंधेरा कम और ज्यादा थोड़े ही होता है; पुराना-नया थोड़े ही होता है। हजार साल पुराना अंधेरा भी, अभी दीया जलाओ और मिट जाएगा। और घड़ी भर पुराना अंधेरा भी, अभी दीया जलाओ और मिट जाएगा। और अंधेरा अमावस की रात का हो तो मिट जाएगा। और अंधेरा साधारण हो तो मिट जाएगा। अंधेरे का कोई बल नहीं होता। अंधेरा दिखाई बहुत पड़ता है, मगर बहुत निर्बल है, बहुत नपुंसक है। ज्योति बड़ी छोटी होती है, लेकिन बड़ी शक्तिशाली है। क्योंकि ज्योति परमात्मा का अंश है; ज्योति में परमात्मा छिपा है। अंधेरा तो सिर्फ नकार है, अभाव है। अंधेरा है नहीं।
इसीलिए तो अंधेरे के साथ तुम सीधा कुछ करना चाहो तो नहीं कर सकते। न
तो अंधेरा ला सकते हो, न हटा सकते हो। दीया जला लो, अंधेरा चला गया। दीया बुझा दो, अंधेरा आ गया। सच तो यह है कहना कि अंधेरा आ गया, चला गया--ठीक नहीं; भाषा की भूल है। अंधेरा न तो है, न आ सकता, न जा सकता। जब रोशनी नहीं होती तो उसके अभाव का नाम अंधेरा है। जब रोशनी होती है तो उसके भाव का नाम अंधेरे का न होना है।
अंधेरा कितना ही हो नीलम, और कितना ही पुराना हो, कुछ भेद नहीं पड़ता।
जो दीया हम जला रहे हैं, जो रोशनी हम जला रहे हैं, वह इस अंधेरे को तोड़ देगी; तोड़ ही देगी। बस रोशनी जलने की बात है। इसलिए अंधेरे की चिंता न लो। रोशनी के लिए ईंधन बनो।
इस प्रकाश के लिए तुम्हारा स्नेह चाहिए। स्नेह के दो अर्थ होते हैंः
एक तो प्रेम और एक तेल। दोनों अर्थों में तुम्हारा स्नेह चाहिए--प्रेम के अर्थों में और तेल के अर्थों में--ताकि यह मशाल जले।
अंधेरे की बिल्कुल चिंता न लो। अंधेरे का क्या भय! सारी चिंता, सारी जीवन-ऊर्जा प्रकाश के बनाने में नियोजित कर देनी है। और प्रकाश तुम्हारे भीतर है, कहीं बाहर से लाना नहीं है। सिर्फ छिपा पड़ा है, उघाड़ना है। सिर्फ दबा पड़ा है, थोड़ा कूड़ा-कर्कट हटाना है। मिट्टी में हीरा खो गया है, जरा तलाशना है।
और तूने कहाः "प्रकाश के दुश्मन भी बहुत हैं!"
सदा से हैं। कोई नयी बात नहीं। मगर क्या कर पाए प्रकाश के दुश्मन? प्रकाश के दुश्मन खुद दुख पाते हैं--और क्या कर पाते हैं!
जिन्होंने सुकरात को जहर दिया, तुम सोचते हो सुकरात को दुखी कर पाए? नहीं, असंभव! खुद ही दुखी हुए, खुद ही पश्चात्ताप से भरे, खुद ही पीड़ित हुए। सुकरात को सूली की सजा देने के बाद न्यायाधीश सोचते थे कि सुकरात क्षमा मांग लेगा। क्षमा मांग लेगा तो हम क्षमा कर देंगे। क्योंकि यह आदमी तो प्यारा था; चाहे कितना ही बगावती हो, इस आदमी की गरिमा तो थी। असल में सुकरात जिस दिन बुझ जाएगा, उस दिन एथेंस का दीया भी बुझ जाएगा--यह भी उन्हें पता था।
सुकरात की मौत के बाद एथेंस फिर कभी ऊंचाइयां नहीं पा सका। आज क्या है एथेंस की हैसियत? आज एथेंस की कोई हैसियत नहीं है। इन ढाई हजार सालों में सुकरात के बाद एथेंस ने फिर कभी गौरव नहीं पाया; कभी फिर स्वर्ण-शिखर नहीं

चढ़ा एथेंस पर। और सुकरात के समय में एथेंस विश्व की बुद्धिमत्ता की राजधानी थी। विश्व की श्रेष्ठतम प्रतिभा का प्रागट्य वहां हुआ था। एथेंस साधारण नगर नहीं था, जब सुकरात जिंदा था। सुकरात की ज्योति से ज्योतिर्मय था, जगमग था।
जानते तो वे लोग भी थे जो सुकरात को सजा दे रहे थे। अपने स्वार्थों के कारण सजा दे रहे थे। मारना चाहते भी नहीं थे; सिर्फ सुकरात सत्य बोलना बंद कर दे, इतना चाहते थे। सोचा था उन्होंने, अपेक्षा रखी थी, कि मौत सामने देख कर सुकरात क्षमा मांग लेगा। लेकिन सुकरात ने तो क्षमा मांगी नहीं। तो बड़े हैरान हुए। तो उन्होंने खुद ही कहा कि हम दो शर्तें और रखते हैं। एक--कि अगर तुम एथेंस छोड़ कर चले जाओ तो जहर देने से हम अपने को रोक लेंगे। हम तुम्हें नहीं मारेंगे। फिर एथेंस लौट कर मत आना। अगर यह तुम न कर सको... । सुकरात ने कहा, यह मैं न कर सकूंगा। क्योंकि एथेंस के इस बगीचे को मैंने लगाया। यहां मैंने सैकड़ों लोगों के प्राणों में प्राण फूंके हैं। यहां मैंने न मालूम कितने लोगों की बंद आंखों को खोला है। एथेंस को छोड़ कर मैं न जा सकूंगा। अब इस बुढ़ापे में फिर से काम शुरू न कर सकूंगा। मौत तो आती ही होगी, तो यहीं आ जाए। एथेंस में जीया, एथेंस में जागा, एथेंस में ही मरूंगा--अपने प्रियजनों के बीच। अब किसी परदेश में अब फिर जाकर क ख ग से शुरू करूं, यह मुझसे न हो सकेगा। और आखिर में यह वहां होना है जो यहां हो रहा है। जब एथेंस जैसे सुसंस्कृत नगर में ऐसा हो रहा है तो एथेंस को छोड़ कर कहां जाऊं? जहां जाऊंगा, वहां तो और जल्दी हो जाएगा। यहां कम से कम यह तो भाग्य रहेगा कि सुसंस्कृत, सभ्य, समझदार लोगों के द्वारा मारा गया था! कम से कम यह तो सौभाग्य रहेगा! जंगली लोगों के हाथों से मारे जाने से यह बेहतर है। एथेंस मैं नहीं छोडूंगा, तुम जहर दे दो।
उन्होंने कहा, दूसरी शर्त यह है कि तुम एथेंस में रहो, कोई फिक्र नहीं,
मत छोड़ो; मगर सत्य बोलना बंद कर दो।
सुकरात हंसा। उसने कहा, यह तो और भी असंभव है। यह तो ऐसे है, जैसे कोई पक्षियों से कहे गीत न गाओ, कि कोई फूलों से कहे सुगंध न उड़ाओ, कि कोई झरनों से कहे कि नाद न करो। यह तो ऐसे है जैसे कोई सूरज से कहे रोशनी मत दो। यह नहीं हो सकता। मैं हूं तो सत्य बोला जाएगा। मैं जो बोलूंगा वही सत्य होगा। अगर मैं चुप भी रहा तो मेरी चुप्पी भी सत्य का ही उदघोष करेगी। नहीं, यह नहीं हो सकेगा। यह तो मेरा धंधा है। ठीक "धंधे" शब्द का प्रयोग किया है सुकरात ने। व्यंग्य में किया होगा। मरते वक्त भी इस तरह के लोग हंस सकते हैं। सुकरात ने कहा, यह तो मेरा धंधा है, मेरा प्रोफेशन। सत्य बोलना मेरा धंधा है। यह तो मेरी दुकान। यह तो मैं जब तक जी रहा हूं, जब तक श्वास आती- जाती रहेगी, तब तक मैं बोलता ही रहूंगा।
सुकरात को फांसी जहर पिला कर देनी ही पड़ी। मगर पछताए बहुत लोग, क्योंकि उसके बाद एथेंस की गरिमा मिट गई। उसके बाद रोज-रोज एथेंस का पतन होता चला गया।
जीसस को सूली लगी। जिस आदमी ने, जुदास ने, जीसस को दुश्मनों के हाथ में बेचा था, तुम्हें मालूम है उसने खुद भी दूसरे दिन सूली लगा ली! यह कहानी बहुत कम लोगों को पता है, क्योंकि ईसाई यह कहानी कहते नहीं। यह कहनी चाहिए, इसके बिना जीसस की कहानी अधूरी है। जीसस को तो सूली लगाई गई, जुदास ने दूसरे दिन अपने हाथ से जाकर झाड़ से लटक कर सूली लगा ली। इतना पछताया। क्योंकि जीसस के जाते ही उसे दिखाई पड़ाः जेरुसलम अंधेरा हो गया। जेरुसलम का उत्सव खो गया। जेरुसलम पर एक उदासी छा गई। एक रात उतर आई, जो फिर टूटी नहीं, जो अभी भी नहीं टूटी! जब तक कोई दूसरा जीसस पैदा न हो, जेरुसलम की रात टूट भी नहीं सकती। दो हजार साल बीत गए, रात का अंत नहीं है, प्रभात का कोई पता नहीं है।
प्रकाश के दुश्मन हैं जरूर, मगर प्रकाश के दुश्मन क्या कर पाते हैं? पीछे पछताते हैं। और प्रकाश के दुश्मन भला एक प्रकाशित दीये को बुझा देते हों, लेकिन उस प्रकाशित दीये की ज्योति को, जो तिरोहित हो जाती है आकाश में, सदा के लिए शाश्वत भी कर देते हैं।

शायद जीसस को लोग भूल भी गए होते अगर सूली न लगी होती। शायद सुकरात को लोग भूल भी गए होते अगर जहर न दिया गया होता। लेकिन छाप लग गई सुकरात पर जहर देने से। जीसस मनुष्य-जाति के अंतरंग हो गए, प्राणों के प्राण हो गए। तो अंधेरे के पक्षपाती, प्रकाश के दुश्मन, प्रकाश की कोई हानि नहीं कर पाते, कभी नहीं कर पाते। सत्य की कोई हानि होती ही नहीं। सत्यमेव जयते! सत्य तो जीतता ही है। हां, छोटी-मोटी लड़ाइयां भला हार जाए, मगर आखिरी लड़ाई में तो जीतता ही है। और छोटी-मोटी लड़ाइयों का कोई हिसाब नहीं है। कभी-कभी तो जीतने के लिए भी दो कदम पीछे हटना पड़ता है। कभी-कभी तो जीतने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कभी-कभी तो जीतने के लिए हार का ढोंग रचना पड़ता है। लेकिन अंतिम विजय सदा ही प्रकाश की है, सत्य की है।
और तू कहती है कि इससे लगता है, भय लगता है कि यह जीवन भी और जीवनों की तरह खाली न बीत जाए!
नहीं बीतेगा। तू चिंता छोड़। यह जीवन खाली नहीं बीतेगा। जो मुझसे जुड़े हैं वे भर कर ही जाएंगे, क्योंकि मैं अपने भीतर जो अनुभव कर रहा हूं, तुम्हारे भीतर उंडेलने को तत्पर हूं। और जिन्होंने भी अपनी गागरें मेरे सामने रख दी हैं वे खाली नहीं जाने वाले हैं। खाली वे ही जाएंगे जिन्होंने गागरें ही नहीं रखीं; या रखी हैं तो उलटी रखी हैं; या अपनी गागरों को पीठ के पीछे छिपाए बैठे हैं। सुन भी रहे हैं और नहीं सुन रहे हैं। देख भी रहे हैं और नहीं देख रहे हैं।
मेरे भीतर जो उमगा है, मेरे भीतर जो स्वर बजा है, वह तुम्हारे भीतर भी स्वर बजाने में कुशल है। वह तुम्हारे भीतर के भी तार छेड़ेगा। वह तुम्हें दिखाऊंगा जो साधारणतः देखा नहीं जाता। और वह तुम्हें सुनाई पड़ेगा जो साधारणतः सुना नहीं जाता। वह आकाश की वीणा बजेगी।
नीलम, अपने आंचल को फैलाओ! अपनी झोली पसारो! और बुद्ध-क्षेत्र तो निर्मित हो ही गया है। अभी अदृश्य है, उसको दृश्य करना है, बस इतनी बात है। आज पृथ्वी पर एक लाख संन्यासी हैं। उनमें से दस हजार संन्यासी किसी भी क्षण आने को तैयार हैं सब छोड़-छाड़ कर।
सारे कष्ट यहां आकर संन्यासी झेल रहे हैं। और मैंने अगर कुछ उनके कष्टों के संबंध में कहा और पूना नगर की असंस्कृत दशा के संबंध में कुछ कहा, तो बड़ी बेचैनी पूना में फैल गई। बड़े लेख लिखे गए।
एक लेखक ने लिखा कि पूना चौदह लाख की आबादी का नगर है। हो सकता है चार प्रतिशत लोग लुच्चे-लफंगे हों, संन्यासियों को परेशान कर रहे हों, विशेषकर संन्यासिनियों को परेशान कर रहे हों; लेकिन इस कारण पूरे नगर की निंदा नहीं की जा सकती।
उन लेखक का नाम है राम बंसल। मैं हैरान हुआ। मुझे गणित बहुत नहीं आता, लेकिन इतना गणित तो आता है कि राम बंसल की बात की व्यर्थता को सिद्ध कर सकूं। अगर चौदह लाख की आबादी है तो चार प्रतिशत कितने लोग होते हैं? छप्पन हजार लोग होते हैं चार प्रतिशत। और यहां विदेशी संन्यासिनियां ज्यादा से ज्यादा एक हजार। एक-एक संन्यासिनी के पीछे छप्पन-छप्पन गुंडे पड़े हों, और मैं आलोचना न करूं? जरा सोचो तो कि तुम्हारी पत्नी को बस्ती में छप्पन गुंडों से मुकाबला करना पड़े, तो जहां जाएगी वहीं गुंडा मिल जाएगा। और माना कि ये चार प्रतिशत बुरे लोग हैं, मगर जो भले लोग हैं वे नपुंसक हैं और निष्क्रिय हैं। अगर चार गुंडे एक स्त्री पर हमला करते हैं तो सज्जन मुंह फेर कर निकल जाते हैं। वे छियानबे प्रतिशत जो लोग बचते हैं वे किस काम के हैं? वे तो इन गुंडों से खुद ही डरे हुए हैं।
लेकिन बड़ी हैरानी हो गई उनको कि पूना जैसी सुसंस्कृत नगरी... कभी रही होगी, कभी जरूर रही होगी, तभी तो पूना नाम मिला। पूना नाम बना है पुण्य से, पुण्य शब्द से। कभी पुण्य नगरी रही होगी। दक्षिण की काशी है पूना। मगर असली काशी की हालत इतनी खराब हो गई है कि नकली काशी की हालत का क्या हिसाब रखना! असली काशी ही डूब गई तो नकली काशियों का क्या है!
और लेखकों ने नाम गिना दिए कि यहां लोकमान्य तिलक जैसे महापुरुष हुए!

मुझे भी पता है। और महात्मा नाथूराम गोडसे, उनके संबंध में भी कुछ सोचोगे कि नहीं? महात्मा नाथूराम गोडसे एक अकेला काफी है सौ लोकमान्य तिलक को पोंछ देने के लिए।
अड़चनें होंगी, समाज से अड़चनें होंगी, राज्य से अड़चनें होंगी, राजनीतिज्ञों से अड़चनें होंगी। इन सारी अड़चनों को झेल कर भी हजारों लोग आने को उत्सुक हैं। वे आकर रहेंगे। संन्यासियों का यह गैरिक नगर बस कर रहेगा। थोड़ी देर हो सकती है; मगर अंधेर न कभी हुआ है, न हो सकता है। मगर तुम तैयार होने लगो, क्योंकि सभी को प्रवेश न मिल सकेगा। उन्हीं को प्रवेश मिल सकेगा जो तैयार हो गए हैं।
इसलिए इसकी चिंता मत करो कि कितनी देर लगती है नये कम्यून के बनने में। चिंता इसकी करो कि नया कम्यून बने, उसके पहले तुम तैयार होओ। वहां तो मैं उन्हीं को चाहता हूं जो अपने अहंकार को बिल्कुल ही शून्य करके प्रवेश करें, क्योंकि वहां कुछ अनूठे प्रयोग होने हैं जो सदियों से नहीं हुए हैं। वहां कुछ अनूठी गहराइयों में ले जाना है जहां आदमी ने जाना सदियों से बंद कर दिया है। तुम्हें तुम्हारे अचेतन में उतारना है और तुम्हारे समष्टिगत अचेतन में भी उतारना है। तुम्हें तुम्हारे अतिचेतन में भी ले जाना है और तुम्हें सार्वभौम जागतिक चेतन में भी ले जाना है। तुम तो बीच में हो। न तुम्हें गहराइयों का पता है, न तुम्हें ऊंचाइयों का पता है। मैं तुम्हें ले चलूंगा प्रशांत महासागर की गहराइयों में भी और गौरीशंकर के शिखरों पर भी। और ये दोनों यात्राएं साथ-साथ करनी हैं। क्योंकि जो जितना गहरा जाता है उतना ऊंचा जाने में समर्थ हो जाता है और जो जितना ऊंचा जाता है उतना गहरा जाने में समर्थ हो जाता है। ऊंचाई और गहराई एक ही आयाम है, एक ही आयाम का विस्तार है।
नीलम, तैयारी करो! अपने को मिटाने की तैयारी करो! ताकि तुम जब नये कम्यून में प्रवेश पाओ तो मेरे हृदय की धड़कन तुम्हारे हृदय की धड़कन हो और मेरी श्वास तुम्हारी श्वास हो।
कठिनाई तुम्हें होती है--देर हुई जाती। मन जल्दी है, आतुर है। शुभ है
मन की आतुरता।
आग लगा दी जो तुमने वह आंसू से क्या बुझ पाएगी?
मुझे पता है कि मैं आग लगा रहा हूं। ये गैरिक वस्त्र आग के ही तो प्रतीक हैं। यह चिता जला रहा हूं, जिसमें तुम्हारा अहंकार जले, तुम्हारा देह-भाव जले। तुम्हारा तादात्म्य मन, देह, बुद्धि सबसे छूट जाए, जल जाए, राख हो जाए। ताकि सिर्फ शुद्ध चैतन्य में ही तुम विराजमान हो सको।
आग लगा दी जो तुमने वह आंसू से क्या बुझ पाएगी?
मुझे पता है नीलम, रो-रो कर यह आग बुझने वाली नहीं। सच तो यह है, रो-रो
कर यह आग बढ़ेगी। इसलिए रोने को, मैं कहता हूं, छोड़ना मत। ये आंसू घी का काम करेंगे। प्रेम में गिरे आंसू घी हो जाते हैं। ये इस लपट को और बढ़ाएंगे। और यह आग बुझाने के लिए है भी नहीं, और-और प्रज्वलित करने के लिए है।
आग लगा दी जो तुमने वह आंसू से क्या बुझ पाएगी?
गली-गली में द्वार-द्वार पर
बैठा दी मैंने शहनाई,
पर बीते दिन भूल न पाता
कंपती स्वर-स्वर में परछाईं
गांठ लगा दी जो तुमने वह कैसे स्वयं सुलझ जाएगी?
नहीं सुलझेगी। स्वयं नहीं सुलझेगी। गांठ लगा ही इसलिए रहा हूं कि सारी छोटी गांठों को मिटा कर एक बड़ी गांठ लगा दूं। फिर उस एक बड़ी गांठ को काटा जा सकता है। सुलझाना नहीं है, काटना है। फिर तो एक तलवार से गांठ को काटा जा सकता है। छोटी-छोटी गांठों के साथ झंझट है। कोई की धन के साथ, पद के साथ, प्रतिष्ठा के साथ--छोटी-छोटी गांठें लगी हैं। सारी गांठों की एक गांठ रह जाए, एक ग्रंथि बन जाए, तो उसे तो तलवार के एक झटके से काटा जा सकता है। और वही तलवार नये कम्यून में उपलब्ध होने वाली है।
जीसस से किसी ने पूछा कि तुम विश्व के लिए क्या लाए हो? जीसस ने कहा, शांति नहीं, तलवार।

ईसाई इस वक्तव्य को उद्धृत करने में डरते हैं, क्योंकि उनको इस वक्तव्य में विरोध दिखाई पड़ता है। जीसस तो बार-बार कहते हैं कि प्रेम परमात्मा है। और जीसस तो बार-बार कहते हैं कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा कर देना। और जीसस तो कहते हैं कि जो तुम्हारा कोट छीन ले उसे कमीज भी दे देना। और जीसस तो कहते हैं, जो तुमसे कहे कि बोझ एक मील तक ढोकर ले चलो मेरा, दो मील तक चले जाना। इस आदमी ने उत्तर में कहा कि शांति नहीं, मैं लाया हूं जगत में एक तलवार! तो इस वचन को ईसाई उद्धृत नहीं करते। इस पर ईसाई पंडित-पुरोहित प्रवचन नहीं देते, इसको कन्नी काट जाते हैं। समझते ही नहीं कि किस तलवार की बात हो रही है।
तलवारें और तलवारें, बहुत तरह की तलवारें हैं। तलवारें हैं जिनसे समस्याएं खड़ी होती हैं और तलवारें हैं जिनसे समस्याएं काटी जाती हैं। तलवारें हैं जिनसे अशांति पैदा होती है और तलवारें हैं जिनसे शांति की वर्षा होती है। जीसस उस तलवार की बात कर रहे हैं जो तुम्हारी गांठ को काट दे, एक झटके में काट दे!
और धीरे-धीरे क्या काटना! आहिस्ता-आहिस्ता क्या काटना! हां, बहुत गांठें हों तो मुश्किल होती है। सारी गांठों की एक गांठ बना लो। सारी गांठों की एक गांठ बनाने से मेरा मतलब है सारी आकांक्षाओं की एक अभीप्सा; एक परमात्मा को पाने की अभीप्सा, बस एक गांठ रह जाए। उसे मैं काट दूंगा। उसके लिए मैं तलवार हूं।
आग लगा दी जो तुमने वह आंसू से क्या बुझ पाएगी?
गली-गली में द्वार-द्वार पर
बैठा दी मैंने शहनाई
पर बीते दिन भूल न पाता
कंपती स्वर-स्वर में परछाईं
गांठ लगा दी जो तुमने वह कैसे स्वयं सुलझ जाएगी?
खारे मन सागर की बांहों--
ने ऊंचे उठ हाथ बढ़ाया
मगर चांदनी की लहरों ने
उनको बढ़ कर कहां उठाया?
प्यास जगा दी जो तुमने क्यों लोरी सुन वह सो जाएगी?
नहीं सोएगी। लोरियों में मेरा भरोसा भी नहीं है। मैं सांत्वना देना
भी नहीं चाहता। मैं यहां नहीं हूं कि तुम्हें सुला दूं। मैं यहां तुम्हें जगाने को हूं, झकझोरने को हूं।
सुंदर यहां बहुत कुछ है पर
तुम सुंदरतम सबसे बांके
झूठे हो, पर सत्य हृदय के
अवगुंठन से शिवता झांके।
तम की बेला, घन दुर्दिन हैं, घर कैसे ऊषा आएगी?
बड़ा अंधेरा है, सुबह कैसे होगी?
बड़े अंधेरे के बाद ही सुबह होती है। घने अंधेरे के बाद ही सुबह होती है। रात जितनी गहन होने लगती है उतनी सुबह करीब होने लगती है। मेरे काम में जितनी बाधा पड़ेंगी, मेरे संन्यासियों पर जितनी मुसीबतें आएंगी, जितनी रात सघन होगी, जितने बादल मंडराएंगे--उतना ही काम आसान होता जाएगा, उतना ही प्रभात का क्षण करीब आता जाएगा।
इसलिए सब चिंता तुम मुझ पर छोड़ दो। तुम तो नाचो, तुम तो गाओ। जो जब होना है तब ठीक समय पर हो जाएगा। एक क्षण की भी उसमें देरी नहीं होगी। और मुझे चिंता नहीं पकड़ती, इसलिए मैं कहता हूं सब चिंता मुझ पर छोड़ो।
चला जा रहा गज गति से मैं, भूंक रहे हैं श्वान।
कितने आए चले गए सब,
जग के छलिया छले गए सब;
गूंज रहा फिर भी धरती पर स्नेह सिद्ध रस-गान।
चला जा रहा गज गति से मैं, भूंक रहे हैं श्वान।
कांटों की देखी झांकी है,

अभी रक्त पग में बाकी है;
करते रहे सदा मुस्काकर प्राण-रक्त का दान। पास न आ पाए बेचारे,
कितने भूंक-भूंक कर हारे;
फिर भी स्वर में पड़ा न अंतर गाता पथ जय-गान।
क्या चिंता चलने वाले को,
लौ पर बढ़ जलने वाले को?
पथ की छाया स्नेह ज्योति बन करती शीतल प्राण।
चला जा रहा गज गति से मैं, भूंक रहे हैं श्वान।
छोड़ो सब चिंताएं मुझ पर! दे दो सब बोझ मुझे! क्योंकि मुझे बोझ नहीं लगता और मुझ पर चिंता नहीं पड़ती। तुम निश्चिंत नाचो और गाओ। तुम्हारा नृत्य और तुम्हारा गीत नये कम्यून को करीब ले आएगा। तुम सुबह की प्रभाती गाओ, प्रभात करीब ले आएगी। तुम्हारी प्रभाती प्रभात को करीब लाने का कारण बनेगी। तुम उदास नहीं होना। तुम चिंतित नहीं होना।
स्वाभाविक है, मुझे गालियां पड़ती हैं सारे देश में तो मेरे संन्यासी
को चिंता होती है। प्रसन्न होना, नाचना जब मुझे गालियां पड़ें। इसका अर्थ है कि लोग अब विचार करने लगे। इसका अर्थ है कि लोगों को अब बेचैनी शुरू हो गई। इसका अर्थ है कि मेरी मौजूदगी अब उनके न्यस्त स्वार्थों में कांटा बनने लगी। नहीं तो कोई मुफ्त गाली नहीं देता। कोई व्यर्थ गाली नहीं देता, हर किसी को गाली नहीं देता। मैं तो इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था, कब सारे लोग गालियां देने लगें। तो वह घड़ी शुभ घड़ी होगी, क्योंकि उसके बाद काम गति पकड़ेगा। और जितने लोग गालियां देंगे उतने ही लोग उत्सुक हो जाएंगे।
जीवन का गणित बड़ा अनूठा है! जितने लोग निंदा करेंगे उतने लोग आतुर होकर सुनना चाहेंगे कि बात क्या है! यहां तुम में से बहुत इसी तरह आए हैं। इतनी गालियां सुनीं, इतनी निंदा सुनी, कि सोचा एक बार जाकर देख तो लेना चाहिए कि बात क्या है! और जो एक बार यहां आया है उसकी जिंदगी में कुछ न कुछ होकर रहेगा। वह वैसा ही नहीं जा सकता जैसा आया था।
नीलम, चिंता न कर। सब ठीक समय पर हो रहा है। सब ठीक समय पर हो जाएगा। और प्रत्येक घटना की अपनी घड़ी है, अपनी परिपक्व घड़ी है। उसके पहले कुछ होना ठीक भी नहीं। ठीक परिपक्व घड़ी में ही कुछ होता है, वही ठीक है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, संग का रंग लगता ही है या कि यह केवल संयोग मात्र है? कृपा कर समझावें!

राजेंद्र भारती, सब तुम पर निर्भर है। वर्षा होती हो और तुम छाता लगा
कर खड़े हो जाओ, तो भीगोगे नहीं। छाता बंद कर लो, और भीग जाओगे। वर्षा होती हो, तुम छिद्र वाला घड़ा ले जाकर आकाश के नीचे रख दो; भर भी जाएगा और फिर भी खाली हो जाएगा। छिद्र बंद कर दो, भरेगा और भरा रह जाएगा। वर्षा होती हो, छिद्रहीन घड़े को भी आकाश के नीचे ले जाकर उलटा रख दो; तो वर्षा होती रहेगी और घड़ा खाली का खाली रहेगा। सब तुम पर निर्भर है।
सदगुरु तो वर्षा है--अमृत की वर्षा! तुम लोगे तो तुम्हारे प्राणों को रंग जाएगा। तुम न लोगे, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठे रहोगे, तो चूक जाओगे। तुम पूछ रहे होः "संग का रंग लगता ही है या कि यह केवल संयोग मात्र है?"
अनिवार्यता नहीं है और संयोग भी नहीं। संग का रंग लगता ही होता, तब तो
जो भी सदगुरु के पास आ जाता उसी को रंग लग जाता। फिर तो जिन्होंने जीसस को सूली दी, वे सूली देते-देते रंग गए होते। फिर तो जिन्होंने बुद्ध को पत्थर मारे, वे पत्थर मारते-मारते रंग गए होते।
संग का रंग लगे ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। ऐसी अनिवार्यता तो जगत में किसी चीज की नहीं है। आग भी तभी जलाएगी जब तुम हाथ डालोगे। हाथ तुम दूर रखो, आग नहीं जलाएगी। आग जलती रहेगी। आग अपने को जलाती रहेगी। मगर अगर हाथ डालोगे तो जलोगे।

सदगुरु के पास आओगे तो रंग लगेगा। हाथ डालोगे तो जलोगे। प्राण डाल दोगे तो जो भी व्यर्थ है, कूड़ा-कर्कट है, सब कचरा हो जाएगा; सोना निखर आएगा। और यह संयोग मात्र भी नहीं है। संयोग मात्र का तो अर्थ हैः कभी हो जाए, कभी न हो। हो जाए तो हो जाए, न हो तो न हो; कोई नियमबद्धता नहीं है। ऐसा भी नहीं है।
आग में हाथ का जलना संयोग मात्र नहीं है। आग में हाथ डालोगे तो जलोगे
ही, नियम से जलोगे। ऐसा नहीं कि कभी जलो और कभी न जलो। कभी आग कहे कि आज दिल ही जलाने का नहीं है। और कभी कहे कि आज जरा दूर ही रहना, आज दुगना जलाऊंगी। संयोग नहीं है आग में हाथ डाल कर जलना और अनिवार्यता भी नहीं है। क्योंकि अनिवार्यता होती तो तुम कहीं भी होते तो जल जाते। दूर खड़े रहते तो भी जल जाते।
आग का तो नियम है जलाना। मगर जिसको जलना है सब उस पर निर्भर है। उसे पास आना होगा। उसे निकटता, समीपता, सत्संग करना होगा।
संग का रंग तो लगता है, मगर लगने दोगे तभी न!
ऐसा हुआ, फाग के दिन आए, होली आई। गांव के लोगों ने होली खेली। राजनेता
को भी पकड़ लिया। नेताजी के साथ दिल में तो बहुत दिन से था लोगों के कि झूमा- झटकी कर लें। खूब रंग पोता, काला रंग पोता, डामल पोता, नाली की कीचड़-कबाड़ पोती। और बड़े हैरान थे कि नेता मुस्कुराता रहा सो मुस्कुराता ही रहा। उसकी मुस्कुराहट में जरा भी फर्क न पड़ा। दोपहर हो गई। लोग घर गए। नेताजी भी घर गए। लोग सोच रहे थे कि महीनों लग जाएंगे रंग छुड़ाने में, क्योंकि रंग लाए थे गाढ़े से गाढ़ा। रंग क्या था, कोलतार था। छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। चमड़ी उखड़ जाए, रंग न छूटे। सो लोगों ने जरा झांक कर देखा शाम तक कि हालत क्या है नेताजी की!
देखा तो बड़े चकित हुए, नेताजी के चेहरे पर तो रंग है ही नहीं! हां, पास में एक मुखौटा पड़ा है जिस पर कोलतार पुता है। और तब उन्हें समझ में आया कि यह नेताजी नहीं हंस रहे थे, मुखौटा हंस रहा था। इसलिए हंसी गई भी नहीं, क्योंकि मुखौटे की हंसी जाए कैसे, वह तो हंसी बनी थी।
अब नेताजी हंसे और उन्होंने कहा कि तुम भी खूब हो! अरे तुम्हें इतना
भी पता नहीं कि सब राजनेताओं के मुखौटे होते हैं? तुमने नाहक रंग खराब किया! इसलिए मैं मजे से पुतवाता भी रहा कि पोतते रहो, कोई फिकर नहीं, अपने चेहरे पर तो रंग लगना नहीं है।
अगर सदगुरु के पास भी तुम मुखौटे ओढ़ कर गए तो संग का रंग नहीं लगेगा। हिंदू की तरह गए, बस चूके। मुसलमान की तरह गए, चूके। जैन की तरह गए, चूके।
ये मुखौटे हैं। सदगुरु के पास तो छोटे बच्चे की तरह गए--सरल, न कोई विशेषण, न कोई धर्म, न कोई जाति, न कोई सिद्धांत, न कोई शास्त्र--फिर लगेगा रंग, निश्चित लगेगा, अनिवार्यरूपेण लगेगा! और ऐसा लगेगा कि कभी नहीं छूटेगा।
यह रंग ऐसा है ही नहीं जो छूट जाए। यह पक्का रंग है।
कबीर ने कहा है कि चुनरिया मैं ऐसी रंगता हूं कि फिर कभी छूटता नहीं रंग। कबीर ने कहाः मैं रंगरेज हूं।
सभी सदगुरु रंगरेज हैं। मगर जबरदस्ती छीन कर तुम्हारी चुनरिया थोड़े
ही रंग देंगे, कि तुम भाग रहे हो और वे तुम्हारी चुनरिया रंग रहे हैं! और यह चुनरिया ऐसी है भी नहीं कि इसे तुम छोड़ कर भाग जाओ। तुम्हारी आत्मा की ही चुनरिया है।
राजेंद्र, अगर कोई रंगने को तैयार हो तो उन सदगुरुओं से भी रंग जाता
है जो अब मौजूद नहीं हैं और कोई रंगने को तैयार न हो तो उनसे भी नहीं रंग पाता जो मौजूद हैं। ऐसे दीवाने हैं जो कृष्ण से रंग गए, और कृष्ण को गए हजारों साल हो गए! आखिर मीरा रंगी न! कृष्ण से रंगी। कृष्ण के रंग में डूब गई। और कितने लोग कृष्ण के समय में मौजूद रहे होंगे और बिना रंगे रह गए होंगे। दुर्योधन तो नहीं रंगा था। दुर्योधन की तो छोड़ दो, अर्जुन ने भी रंगे जाने में बड़ी झंझट खड़ी की थी। तभी तो गीता पैदा हुई, नहीं तो गीता कैसे पैदा होती? कृष्ण कहते रंग जाओ और अर्जुन कहता कि यह रहा सिर, रंगो! तो गीता पैदा न होती।

अर्जुन ने बड़ी झंझट की। बड़े सवाल उठाए। इधर से, उधर से बड़े संदेह खड़े किए। फिर भी रंगा, यह संदिग्ध है। मेरा अपना भाव तो यही है कि थक गया वह कृष्ण की बातें सुन-सुन कर। तो उसने कहा कि अब बस महाराज, बंद करो; मेरे सब संदेह दूर हो गए। क्योंकि अब संदेह उठाए तो फिर चर्चा चले। मेरे सब संदेह दूर हो गए। आप जैसा कहोगे वैसा ही करूंगा। उठा लिया गांडीव, चल पड़ा लड़ने। लेकिन पूरा रंगा नहीं होगा, क्योंकि पुरानी कथा कहती है कि जब महायात्रा शुरू हुई मृत्यु के बाद, स्वर्गारोहण हुआ, तो और सब बीच में ही गलते चले गए, उनमें अर्जुन भी गल गया। सिर्फ युधिष्ठिर और उनका कुत्ता, दो स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे। यह कुत्ता कहीं ज्यादा सत्संगी साबित हुआ। यह दिल खोल कर रंग गया होगा। अर्जुन भी गल गया! वह गीता सुनी, उसका क्या हुआ? मैं पूछता हूं, वह गीता सुनी, उसका क्या हुआ? गीता न बचा सकी अर्जुन को! कृष्ण ने इतना रंगा, रंगा--और रंग न बैठा! जरूर कहीं बात है।
अर्जुन थक गया। विवाद में हार गया। सब तरफ से उसने कोशिश कर ली बचने की, लेकिन देखा कि नहीं, इस आदमी से बचना मुश्किल है; लड़ना ही होगा। सो लड़ा। मगर कहीं भीतर कोर-कसर रह गई। कहीं कोई संदेह का कण भी रह गया हो तो पर्याप्त है डुबा देने को।
युधिष्ठिर अपने कुत्ते के साथ स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे। द्वारपाल
ने द्वार खोला, युधिष्ठिर को कहा, आप भीतर आ जाएं, लेकिन कुत्तों के आने की मनाही है।
युधिष्ठिर ने कहा, तो फिर मैं भी नहीं आ सकूंगा। कुत्ता पहले, पीछे मैं।
क्यों? पहरेदार ने पूछा, क्यों?
तो उन्होंने कहा कि मेरे भाई बीच में गल गए, मेरी पत्नी बीच में गल गई, मेरे सगे-संबंधी बीच में गल गए; सिर्फ मेरे साथ स्वर्ग के द्वार तक यह कुत्ता आ पाया है। मैं इसे छोड़ दूं? जिसने मेरा यहां तक संग-साथ दिया है, जहां तक कोई मेरा संगी-साथी नहीं हुआ; जो मृत्यु के इस पार भी अमृत के द्वार तक मेरे साथ आया है; जिसकी मेरे साथ ऐसी गांठ बंधी, ऐसी सगाई हो गई-- उसे छोड़ दूं? रख लो अपना स्वर्ग! तुम्हारा स्वर्ग छोड़ सकता हूं, मगर इस साथी को, संगी को नहीं छोड़ सकता। इस शिष्य को नहीं छोड़ सकता हूं।
अर्जुन बीच में गल गया। कृष्ण के रंग में अर्जुन भी उतना नहीं रंग पाया, जैसी मीरा रंगी। और मीरा रंगी हजारों साल बाद। और चैतन्य भी रंगे हजारों साल बाद।
अगर सदगुरु से प्रीति हो तो प्रीति सारे अवधान, सारे व्यवधान गिरा देती है। अगर प्रीति हो तो समय मिट जाता है, क्षेत्र मिट जाता है; बीच की सारी दूरियां, काल की या क्षेत्र की, समाप्त हो जाती हैं। प्रेम कालातीत है, क्षेत्रातीत है।
अगर प्रेम हो राजेंद्र, तो रंग जाओगे। कभी भी रंग जाओगे। सदगुरु चला
भी जाता है देह को छोड़ कर, तो भी उसकी आत्मा उपलब्ध रहती है, सदा उपलब्ध रहती है। जो प्रेम-पगे हैं, जो उसे प्रीति से पुकारेंगे, उन पर वह फिर भी बरसेगा। लेकिन सदगुरु मौजूद भी हो और तुम अपनी अकड़ में बैठे हो, कि तुम अपनी होशियारी और कुशलता में बैठे हो, तो चूक जाओगे।
खे रे धीरे धीरे नैया
परिचित है प्रिय घाट पुराना
मांझी अनगिन लहरें आईं
आकर घाटों से टकराईं
नहीं जानते इसी घाट पर
राधा बंसी सी लहराई
मैं आता था सदा यहां ही
ढूंढ ढूंढ नित नया बहाना रही न माया, उसकी काया
छिप-छिपकर अब भी मुसकाती सुन न सकोगे, अंधे बहरे
देखा मधु-स्मृति कजरी गाती

मुसकाती है खिल कदंब सी
छूट न पाता आना जाना
अनजाने ही बात बता दी
लगने वाली घात बता दी
वादी तो पहले से ही था
और बना हूं अब प्रतिवादी
बुरा न होगा, मुझे छोड़ दो
धार-बीच सुनने को गाना
जो सुन सकते हैं वे आज भी यमुना के तट पर कृष्ण की बांसुरी सुन सकते हैं। जो सुन सकते हैं वे आज भी बंसीवट में राधा का गीत सुन सकते हैं। आंख चाहिए! कान चाहिए! कान और आंख के पीछे जुड़ा हुआ हृदय चाहिए! आंख प्रेम से देखे, कान प्रेम से सुने--तो बुद्ध मौजूद हैं, कृष्ण मौजूद हैं, जीसस मौजूद हैं, मोहम्मद मौजूद हैं। ये सदा ही मौजूद हैं।
सदगुरु मिटता ही नहीं। जो मिट जाए वह क्या सदगुरु है!
महर्षि रमण का अंतिम क्षण, और किसी ने पूछा, महर्षि, अब देह छूट जाएगी,
आप कहां जाएंगे? महर्षि ने कहा, कहां जाऊंगा! जाने को कहीं कोई जगह और है? जो हूं वही रहूंगा, जहां हूं वहीं रहूंगा। जाने को कहां है? एक ही तो अस्तित्व है, दूसरा कोई अस्तित्व नहीं है।
बड़ी अदभुत बात कहीः जाऊंगा कहां? एक ही अस्तित्व है, यहीं रहूंगा! जैसा हूं वैसा ही रहूंगा।
देह के गिर जाने से आत्मा तो नहीं गिर जाती। और घड़े के फूट जाने से जल
तो नहीं फूट जाता। और घाटों के छूट जाने से नदी तो नहीं मर जाती--सागर हो जाती है। प्रीति चाहिए! प्रीति एक देखने का और ही ढंग है। भाव देखने की एक नयी ही आंख है। जो अदृश्य को भी दिखा देती है, ऐसी आंख! जो अगोचर को गोचर बना देती है, ऐसी आंख!
और तुम पूछते होः "संग का रंग लगता ही है या कि यह केवल संयोग मात्र है?"
संयोग मात्र ही नहीं है और अनिवार्यता भी नहीं है। तुम पर निर्भर है। स्वतंत्रता है। तुम चाहो तो लगेगा, तुम न चाहो तो नहीं लगेगा।
सत्य थोपा नहीं जा सकता। स्वीकार कर लोगे तो तुम्हारा है, अस्वीकार
कर दोगे तो तुम्हारा नहीं है। जबरदस्ती ओढ़ाया नहीं जा सकता। सत्य कोई जंजीर नहीं है जो तुम्हारे हाथों में पहना दी जाए। और सत्य कोई कारागृह नहीं है जिसमें तुम्हें आबद्ध कर दिया जाए। सत्य मुक्ति है।
तुमने यह ख्याल किया, बंधन जबरदस्ती लादे जा सकते हैं, मुक्ति जबरदस्ती नहीं लादी जा सकती। किसी के हाथों में जंजीरें और पैरों में बेड़ियां जबरदस्ती डाली जा सकती हैं--जबरदस्ती ही डाली जाती हैं, नहीं तो कौन डलवाने को राजी होगा! लेकिन अगर किसी को मुक्त करना हो, जंजीरें काटनी हों, तो जबरदस्ती नहीं की जा सकती। तुम तोड़ भी दोगे तो वह फिर डाल लेगा। ऐसा हुआ, फ्रांस की क्रांति में बैस्तले का किला तोड़ा गया। उसमें फ्रांस के सब से जघन्य अपराधी बंद थे। जिनको आजीवन कैद होती थी, वे ही केवल उस किले में बंद किए जाते थे। उसमें कोई पांच हजार कैदी थे। कोई तीस साल से बंद था, कोई चालीस साल से, कुछ तो ऐसे थे जो पचास साल से बंद थे। उन कैदियों को जो जंजीरें और बेड़ियां पहनाई जाती थीं उनमें ताले नहीं होते थे। क्योंकि ताले की कोई जरूरत नहीं थी। चाबी भी नहीं होती थी। क्योंकि खुलने का तो सवाल ही नहीं था; जब वे मर जाएंगे तब उनके हाथ-पैर तोड़ कर जंजीरें निकाल ली जाती थीं। क्योंकि मरने तक तो उनको अब कारागृह में ही रहना है। क्रांतिकारियों ने बैस्तले का किला तोड़ दिया और जबरदस्ती लोगों को उनकी कालकोठरियों से निकाल कर मुक्त करना चाहा। बहुतों ने तो इनकार किया, बिल्कुल इनकार किया, लड़े-झगड़े--हम जाना नहीं चाहते!
मैं भी उनकी बात समझता हूं, हंसो मत, तुम भी समझो। पचास साल से जो आदमी अंधेरी कोठरी में रहा हो, वह अब बाहर की रोशनी में आंख भी खोल सकेगा? अंधा हो जाएगा। उन्हें बाहर लाया गया तो उन्हें कुछ दिखाई ही न पड़े। उन्होंने कहा, हमें भीतर जाने दो। जो आदमी पचास साल से गंदी हवाओं में जी रहा है,

जहां न खिड़कियां हैं, न रोशनदान हैं, उसे ताजी हवा बरदाश्त होगी? सह न पाएगा। और जो आदमी पचास साल से आबद्ध है, समय पर सुबह रूखी-सूखी रोटी मिल जाती है, सांझ रूखी-सूखी रोटी मिल जाती है; रात घंटा बजता है, सो जाता है; न चिंता, न फिकर--वह अब फिर से रोटी कमाए सत्तर साल की उम्र में! पचास साल से जिसने रोटी नहीं कमाई, जो भूल ही भाल गया सब--अब कहां जाए? पचास साल बाद किसको खोजे? पत्नी मर चुकी होगी। बेटे पहचानेंगे भी नहीं। भाई-बंधु दुतकार देंगे कि भई हम नहीं जानते, कौन हो, कहां से आए हो, आगे बढ़ो! पचास साल बाद, वह समाज जिसको वह छोड़ आया था, अब बचा कहां! न परिचित होंगे, न प्रियजन होंगे, न जाने-पहचाने लोग होंगे। कौन रोटी देगा?
मगर क्रांतिकारी जिद्दी, माने नहीं, जबरदस्ती कोड़ों की चोट पर जंजीरें तुड़वा दीं, हथकड़ियां निकलवा दीं। धक्के मार कर बाहर न जाने वाले कैदियों को बाहर कर दिया।
और एक बड़ी अपूर्व घटना घटी--इतिहास के लिए महत्वपूर्ण। सांझ होते- होते अधिकतम कैदी वापस लौट आए और उन्होंने प्रार्थना की, कम से कम हमें अपनी कोठरियों में तो सोने दो! हम सोएं कहां? हम जाएं कहां? कोई छप्पर तो चाहिए!
और दूसरे दिन तो क्रांतिकारी और हैरान हुए। अनेक ने रात में अपनी जंजीरें, जो तोड़ दी गई थीं, उनको वापस अपने हाथों में डाल लिया और पैरों में पहन लिया था। उनसे पूछा कि पागलो, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, बिना जंजीर के, बिना हथकड़ी के नींद ही नहीं आती। इतना वजन न हो हाथ-पैर में... पचास साल इतने वजन के साथ ही सोए हैं।
तुम भी जानते हो, जो स्त्री बहुत से गहने पहन कर सोती है रात, एक दिन गहने उतार कर सोए, नींद नहीं आएगी। और गहने क्या हैं? लोहे की जंजीरें समझो या सोने की, फर्क क्या है? जरा सा फर्क हो जाएगा तो नींद नहीं आएगी। तुम रोज बाएं तरफ सिर करके सोते हो, आज दाएं तरफ सिर करके सोना, और नींद नहीं आएगी। दुलाई तुम्हारी जरा मोटी या पतली हो जाए, और नींद नहीं आएगी, क्योंकि वजन कम और ज्यादा हो जाएगा। तकिया जरा छोटा-बड़ा हो जाए तो नींद नहीं आएगी।
तुम समझो उन लोगों की तकलीफ, पचास साल से जंजीरों में ही सोए थे! तब क्रांतिकारियों को समझ में आया कि गुलामी तो जबरदस्ती दी जा सकती है, लेकिन स्वतंत्रता जबरदस्ती नहीं दी जा सकती।
कोई सदगुरु तुम्हें जबरदस्ती मुक्त नहीं कर सकता।
मैंने सुना है, एक पहाड़ी सराय में एक क्रांतिकारी रात मेहमान हुआ। सांझ जब सूरज ढलता था तब वह सराय पहुंचा। सराय के द्वार पर ही एक तोता पिंजड़े में बंद है। सुंदर पिंजड़ा! और तोता चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!
क्रांतिकारी के हृदय में तो वीणा बज गई। यही तो उसकी आवाज है! उसने पूछताछ की। पता चला कि सराय का जो मालिक है, कभी जवानी में उसको भी स्वतंत्रता का पागलपन था। तो उसने तोते को राम-राम करना नहीं सिखाया है, स्वतंत्रता-स्वतंत्रता का पाठ सिखाया है। तोता चिल्लाता ही रहाः स्वतंत्रता! रात पूरा चांद निकला तब भी तोता चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता! क्रांतिकारी से न रहा गया, वह आया, उसने तोते का पिंजड़ा खोला और कहा, उड़ जा! प्यारे उड़ जा!
मगर तोते उड़े? तोते ने जोर से पिंजड़े के सींकचे पकड़ लिए। क्रांतिकारी
ने कहा, यह तू क्या कर रहा है? अब दरवाजा खुला है, उड़ जा!
मगर तोता पिंजड़े को पकड़े है जोर से और चिल्ला रहा है, और भी जोर से चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता! लेकिन क्रांतिकारी तो जिद्दी होते हैं, उसने हाथ भीतर डाल कर जबरदस्ती तोते को बाहर खींचना चाहा। तोते ने चोंचें मारीं उसके हाथ पर, लहूलुहान कर दिया उसका हाथ, और चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता! मगर क्रांतिकारी भी क्रांतिकारी है, कोई तोतों से हार जाए! उसने खींच कर तोते को जबरदस्ती... उसके पंख भी टूट गए तोते के, कोई फिकर नहीं। खींच कर... वह तोता उस पर हाथ पर चोट करता ही रहा,

कोई फिकर नहीं, उसने उसे आकाश में उड़ा दिया। और तब बड़ा प्रसन्नचित्त कि एक आत्मा आजाद हुई, सो गया।
सुबह जब उसकी नींद खुली, दरवाजा खुला पड़ा था पिंजड़े का, तोता अंदर बैठा है और चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता! स्वतंत्रता जबरदस्ती नहीं दी जा सकती। और मैं तो जिस स्वतंत्रता की बात कर रहा हूं वह परम स्वतंत्रता है। तुम चाहो तो ले सकते हो। तुम चाहो तो ग्रहण कर सकते हो।
सत्य दिया नहीं जा सकता, लिया जा सकता है; सिखाया नहीं जा सकता, सीखा
जा सकता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो,
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।
और
आज करंते काल कर, काल करंते परसों।
जल्दी-जल्दी क्यों करता है, अभी तो जीना बरसों।।
आपके हिसाब से तो दोनों कहावतें सच होंगी, पर हमारे लिए कौन सा निदान है? कृपा करके समझाएं।

नरेन्द्र! मेरे लिए निश्चित ही दोनों कहावतें सच हैं और एक साथ सच हैं। लेकिन दोनों का प्रयोग भिन्न-भिन्न है।
जहर भी ठीक है; क्योंकि कभी औषधि बनता है। और अमृत भी गलत हो सकता है; ज्यादा पी लो तो जान ले ले। कांटे बुरे भी हैं, क्योंकि गड़ते हैं; और भले भी, क्योंकि गड़े कांटों को निकालना हो तो फिर कांटों की ही जरूरत पड़ती है।
जीवन एकदम दो और दो चार, ऐसा साफ-सुथरा नहीं है; जीवन एक रहस्य है। ये दोनों कहावतें सच हैं।
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।
कौन जानता है! पल भर का भरोसा नहीं। पल में परलय होयगी! अगर कुछ करना
हो तो अभी कर लो। मगर कुछ से क्या मतलब?
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोवैज्ञानिक के पास गया था। और उसने कहा कि मेरे दफ्तर में कोई काम ही नहीं करता। मैं पहुंचता हूं तो लोग जल्दी-जल्दी बही-खाते खोल लेते हैं, झूठा-झाठी लिखा-पढ़ी करने लगते हैं। मैं गया कि इधर बस बही-खाते बंद। टांगें लोग टेबलों पर फैला देते हैं। चाय पी रहे हैं, सिगरेट पी रहे हैं, गप-सड़ाका मार रहे हैं। मैं गया कि सब काम बंद! मैं पहुंचता हूं तो सब काम होने लगता है; मगर सब झूठा, क्योंकि काम कुछ होता नहीं। क्या करूं, क्या न करूं? आप मनस्विद हैं, आप कुछ रास्ता बताएं।
उस मनस्विद ने यह कहावत लिख कर दे दी। कहा, इसे दफ्तर में टांग दो सब जगह!
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।
इसका परिणाम होगा, उसने कहा। लोग इसको बार-बार पढ़ेंगे, प्रभाव पड़ेगा, संस्कार पड़ेगा।
टांग दी उसने हर टेबल के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में। दूसरे दिन मनोवैज्ञानिक मुल्ला नसरुद्दीन को मिला रास्ते में। बड़ा हैरान हुआ। सिर पर पट्टी बंधी थी। हाथ पर पलस्तर चढ़ा था। कहा कि नसरुद्दीन, क्या हो गया? उसने कहा कि वह तुम्हारी कहावत! उसने कहा, मेरी कहावत! मेरी कहावत से तुम्हारा सिर कैसे फूटेगा? मेरी कहावत से तुम्हारा हाथ कैसे टूटेगा? उसने कहा कि महाराज, तुम्हारी कहावत का परिणाम है! क्योंकि मैनेजर तिजोड़ी में जितने पैसे थे लेकर भाग गया। उसने सोचा--
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।

पता मुझे चला कि वह सोच तो रहा था बहुत दिन से कि करना है, करना है, लेकिन कल करेंगे, कल करेंगे; मगर जब यह तख्ती उसने देखी तो वह तो तिजोड़ी से लेकर सब नदारद हो गया। मेरा सेक्रेटरी मेरी टाइपिस्ट को भगा गया। वे नदारद हो गए। और मेरा जो चपरासी है उसने भीतर घुस कर मेरी ऐसी पिटाई की! मैंने पूछा, भाई, तू यह क्या करता है? उसने कहा--
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।
पिटाई तो तुम्हारी मुझे कब से करनी है! जब से नौकरी शुरू की है तब से करनी है। मगर टालता रहता हूं कि कर लेंगे, जब होगी सुविधा तब देखेंगे। कभी मौका मिल जाएगा अंधेरे-उजेले कहीं, खोल देंगे सिर। मगर यह तुमने तख्ती क्या लगा दी, इसका प्रभाव हुआ है!
नासमझ के हाथ में अमृत जहर हो जाएगा। समझदार के हाथ में जहर भी अमृत
हो जाता है। यह जो पहली कहावत है, सदगुणों के लिए है। अगर प्रेम करना हो तो अभी। अगर दान करना हो तो अभी। ध्यान करना हो तो अभी। पूजा, प्रार्थना, अर्चना करनी हो तो अभी। संन्यस्त होना हो तो अभी। कोई शुभ विचार उठता हो तो कल पर मत टालना, क्योंकि कल का क्या भरोसा है?
लेकिन शुभ विचार ही तो नहीं उठते तुम्हारे मन में, अशुभ विचार भी उठते हैं। अशुभ विचारों को कल पर टालना। कहना कि क्या जल्दी है, कल कर लेंगे! आज करंते काल कर, काल करंते परसों।
जल्दी-जल्दी क्यों करता है, अभी तो जीना बरसों।।
तुम ऐसा समझो कि मुल्ला नसरुद्दीन ने अगर यह दूसरी तख्ती टांगी होती
तो दफ्तर ज्यादा ढंग पर रहता। काम-वाम तो नहीं होता, मगर सिर न टूटता, हाथ-पैर न टूटते। कम से कम टाइपिस्ट को भगा कर न ले जाता सेक्रेटरी। और कम से कम तिजोड़ी में जो था तिजोड़ी में रहता। बढ़ता नहीं तो भी कोई हर्जा नहीं; मगर जो था वह रहता।
बुरे को कल पर टाल दो।
गुरजिएफ ने कहा है कि मेरे जीवन में जो सब से क्रांतिकारी बात घटी, वह मेरे दादा के द्वारा घटी। मैं नौ साल का था। उनकी मृत्यु आई, उन्होंने मुझे पास बुलाया। उनका मुझ पर बड़ा प्रेम था और मुझसे कहा, शायद तू अभी समझ भी न सके, अभी तेरी उम्र भी समझने की नहीं; लेकिन याद रख, याद रख! कभी उम्र हो जाएगी तब समझ लेगा, मगर एक-एक शब्द याद रख। छोटा सा ही वचन है जो मैं तुझे दे जाता हूं। यही तेरे लिए मेरी संपदा, मेरी वसीयत। और कुछ मेरे पास देने को है भी नहीं। मगर इस वचन ने मेरे जीवन को बदला है। तो गुरजिएफ ने कहा, मैंने सुन लिया। ठीक से समझा तो नहीं, लेकिन बाद में जब समझ आई तो प्रयोग करना शुरू किया। और मरते वक्त दादा कह गया था और इतना उसका प्रेम था कि उसके प्रेम के कारण ही किया! मगर धीरे-धीरे रस आना शुरू हुआ। अंकुरित हुआ बीज, वृक्ष बना।
वचन क्या था? वचन छोटा सा था कि अगर कोई गाली दे, अपमान करे, तो उससे कहनाः चौबीस घंटे बाद उत्तर दूंगा। अब यह भी कोई बहुत बड़ा शास्त्र है? मगर गुरजिएफ कहता, मेरा पूरा जीवन इसने बदल दिया। क्योंकि जब भी मैंने, किसी ने गाली दी, अपमान किया, तो याद रखा--उसी क्षण तत्क्षण उत्तर नहीं देना है। गाली देने वाले को कहा कि भाई क्षमा करना, मेरे दादा को मैंने वचन दिया है, तो कल चौबीस घंटे बाद उत्तर दूंगा। और चौबीस घंटे जब सोचा तो क्रोध बह गया। कभी-कभी तो ऐसा लगा कि उसने जो कहा ठीक ही कहा।
रास्ते पर तुमसे किसी ने कह दिया, चोर कहीं के! ऐसे तो बुरा लग जाता है, मगर सोचोगे तो हजार बातें समझ में आएंगी कि चोरियां कितनी तो की हैं। नहीं की होंगी तो सोची तो हैं ही। किसी ने कह दिया, लुच्चे-लफंगे! नाराज हो गए। मगर घर जाकर सोचोगे तो, विचार करोगे तो लगेगा कि बात एकदम गलत तो नहीं है। लुच्चा का मतलब केवल इतना ही होता हैः घूर-घूर कर देखने वाला। सो घूर-घूर कर कई दफे देखा है। इसमें क्या बुरा है? ठीक ही कहा।
गुरजिएफ ने कहा कि जब मैंने बहुत सोचा तो या तो पाया कि जो कहा है ठीक कहा। तो दादा ने कहा था, अगर पाए कि ठीक है तो धन्यवाद देना जाकर। अगर पाए कि गलत है तो फिकर ही क्या करनी, गलत की क्या फिकर करनी? गलत में जान ही

कहां है! बात ही भूल जाना। और दो में से एक ही हुआः या तो पाया ठीक है तो धन्यवाद दे दिया। धन्यवाद दे दिया तो एक बनती शत्रुता मिट गई, एक मैत्री निर्मित हुई। और एक अपूर्व ढंग की मैत्री! क्योंकि दूसरे को भी दिखाई पड़ा, यह आदमी साधारण आदमी नहीं है। इसकी गरिमा दिखाई पड़ी। और अगर गलत था तो बात ही छोड़ दी, क्योंकि गलत के लिए क्या उत्तर देना, क्या चिंता करनी! गलत तो अपने से मर जाएगा। गलत के पैर ही कहां होते हैं जो चल सके? गलत में प्राण ही कहां हो सकते हैं? गलत में श्वास ही क्या होती है? गलत के लिए लड़ने- झगड़ने में क्या सार है! और ठीक के लिए लड़ने-झगड़ने में कोई प्रयोजन नहीं। गुरजिएफ ने लिखा है, इसका परिणाम यह हुआ कि मैंने बहुत मित्र बनाए, बहुत मित्र बनाए और शत्रु मैंने निर्मित नहीं किए। इससे जीवन में एक माधुर्य आया।
गुरजिएफ में थी कला मित्र बनाने की अदभुत! और उस कला का सारा राज इस छोटे से सूत्र में है।
नरेन्द्र, सब तुम पर निर्भर है। गलत को कल पर छोड़ो, क्योंकि कल कभी आता नहीं; कल पर छोड़ोगे तो गलत कभी होगा नहीं। और ठीक को अभी कर लो, क्योंकि ठीक को कल पर छोड़ोगे, कल कभी आता नहीं, कल पर छोड़ोगे तो ठीक कभी होगा नहीं।
लोग इससे उलटा ही करते हैंः ठीक को अभी करते हैं, ऐसा नहीं; ठीक को कल
पर छोड़ते हैं। गलत को अभी करते हैं; गलत को कल पर नहीं छोड़ते। अगर तुम्हें क्रोध उठ आता है तो तुम अभी करते हो; और अगर करुणा उठती है तो तुम कहते हो सोचेंगे, विचारेंगे। बस सोचने-विचारने में ही करुणा का भाव बह जाता है। अगर अच्छा करने का भाव उठता है तो तुम कहते हो जरा सोचूं, विचारूं। और अगर बुरा करने का भाव उठता है तो तुम आगबबूला हो जाते हो, अभी कर गुजरते हो। दुनिया में जितनी बुराइयां होती हैं, वे त्वरा में होती हैं, तीव्रता में होती हैं, जल्दी में होती हैं। और दुनिया में जितनी भलाइयां होती हैं, वे भी त्वरा में होती हैं, तीव्रता में होती हैं, जल्दी में होती हैं। भले के लिए करने को जिसने सोचा, भला न होगा। और बुरे को जिसने करने के लिए सोचा, उससे बुरा न होगा।
महावीर के जीवन में एक उल्लेख है। महावीर का एक भक्त अपने घर लौटा। पुरानी कहानी है, ढाई हजार साल पुरानी कहानी है; अब तो ऐसा होता नहीं, मगर तब ऐसा होता था। वह स्नान करने बैठा है। उसकी पत्नी उबटन करके उसे स्नान करवा रही है। उबटन करवाते-करवाते बात होने लगी। पत्नी ने कहा कि मैंने सुना, तुम भी महावीर के भक्त हो गए। मेरा भाई भी भक्त है। और भक्त ही नहीं है, मेरा भाई तो कहता है कि आज नहीं कल वह महावीर के द्वारा संन्यस्त होगा, दीक्षा लेगा।
पति ने कहा, कल? फिर कभी नहीं लेगा। महावीर की सारी शिक्षा यही है कि शुभ करना हो तो अभी, इसी क्षण। तेरा भाई किसको धोखा दे रहा है?
विवाद छिड़ गया पति और पत्नी में। पत्नी ने कहा कि तुम मेरे भाई को नहीं जानते, क्षत्रिय है! आखिर मैं भी क्षत्राणी हूं। और जब वह कहता है कि लेगा तो लेगा।
उसने कहा कि क्षत्रिय हो तो भी क्या करेगा, कल आएगा तब लेगा न! कल आता कब? क्षत्रिय के लिए भी नहीं आता, किसी के लिए नहीं आता। कोई कल फर्क थोड़े ही करता है--क्षत्रिय, ब्राह्मण, शूद्र... कि इसके लिए आएंगे, उसके लिए नहीं आएंगे। कल किसी के लिए नहीं आता। मेरी मान! कितने दिन से सोच रहा है वह? तब जरा पत्नी झिझकी, कहा कि कम से कम तीन साल तो हो ही गए।
तो अभी तीन साल में कल नहीं आया? तीस साल में भी नहीं आएगा। और जिंदगी
के जाल तो रोज बढ़ते जाते हैं, घटते नहीं। सोचता होगा कि सब निबटा लूं, फिर दीक्षा ले लूंगा। तो सब तो कभी निबटता ही नहीं। आदमी लिपटता ही जाता है, निबटता कब है। एक से दो चीजें निकलती हैं, दो से चार, चार से आठ... बाजार फैलता जाता है। आदमी छोटे पसार से शुरू करता है, फिर बड़ा पसारी हो जाता है। फिर दुकान को समेटना मुश्किल हो जाता है। फिर वह सोचता है अब समेटूं तब समेटूं, मगर तब हाथ छोटे पड़ जाते हैं, दुकान बड़ी हो जाती है।
आखिर पत्नी को यह बात लगी तो चोट की, कि मेरे भाई का अपमान मेरा अपमान! मेरे भाई के क्षत्रिय होने पर संदेह किया जा रहा है। मेरे भाई की धार्मिक

भावना का संदेह किया जा रहा है। तो उसने भी चोट पर चोट की। उसने कहा, तो तुम क्या समझते हो, तुम भी तो सुनते हो महावीर को! तुम्हारे मन में दीक्षा लेने का भाव नहीं उठा?
एक क्षण सन्नाटा रहा, और पति जैसा नग्न बैठा था स्नान के लिए वैसा ही
उठ कर खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, कहां जाते हो? उसने कहा, बस दीक्षा लेने जा रहा हूं। पत्नी ने कहा, पागल हो गए हो! अरे कहां चले? मगर वह तो द्वार खोल कर बाहर हो गया। पत्नी चिल्लाई, लोग क्या कहेंगे? नग्न बाहर जा रहे हो! उसने कहा, अब लोग क्या कहेंगे, इसकी क्या फिकर करूं? महावीर की दीक्षा में तो नग्न होना ही पड़ेगा, सो अभी से नग्न! पीछे होने की क्या जरूरत है? नग्न ही जाता हूं। दीक्षा का आधा काम तो तूने ही पूरा करवा दिया।
अरे, पत्नी ने कहा, मजाक करती थी। लेकिन पति ने कहा, मजाक हो या नहीं, बात खत्म हो गई। तूने मेरे क्षत्रिय पर चोट कर दी। शुभ अभी ही कर लेना उचित है। मैं तेरा अनुगृहीत हूं। और पति ने झुक कर पत्नी के चरण छुए कि तू मेरी पहली गुरु है। न तू यह बात छेड़ती, न मुझे अभी स्मरण आता। तूने मेरे सोए-सोए स्मरणों को जगा दिया। मैं भी तो प्रभावित हूं महावीर से। और जब प्रभावित हूं तो दीक्षा लेनी चाहिए, नहीं तो प्रभाव का अर्थ क्या है? हालांकि मैंने कभी सोचा नहीं था, लेकिन कहीं अचेतन में भाव तो था। कल पर टाला भी नहीं था, क्योंकि कभी चेतन भाव बनाया नहीं था। आज तूने अचेतन से उसे चेतन में ला दिया, मैं तेरा अनुगृहीत हूं।
उस आदमी ने लौट कर पीछे नहीं देखा। यह तो सम्यक उपयोग हो गया।
स्मरण रखो, जीवन के कोई सिद्धांत अपने आप में सही और गलत नहीं होते; उनके प्रयोग पर सब निर्भर करता है। और प्रयोग के लिए ध्यानस्थ चित्त चाहिए। इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता इनमें से किस सूत्र का पालन करो। अगर तुम्हारे पास ध्यानस्थ चित्त नहीं है तो तुम जिस सूत्र का भी पालन करोगे गलत ही करोगे।
यही हो रहा है। पश्चिम ने पहले सूत्र का उपयोग कर लिया है, तो वे कहते हैं--
काल करंते आज कर, आज करंते अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब।।
पश्चिम में आदमी एकदम आपाधापी और भागा-दौड़ी में लगा है--अभी करो! जल्दी करो! यह भी कोई नहीं पूछता कि इतनी जल्दी क्या? मगर जल्दी, जल्दी पहुंचना है! चाहे पहुंचो, चाहे न पहुंचो। सौ मील की रफ्तार, एक सौ बीस मील की रफ्तार से कार को दौड़ाओ--जल्दी पहुंचना है! पहुंचना कहां है? किसी मित्र के घर ताश खेलने जा रहे हैं; या शतरंज बिछी होगी, कहीं देर न हो जाए। सब्जी खरीदने जा रहे हैं और इतनी तेजी! पहुंच कर भी क्या करोगे? इतनी जल्दी क्या है?
मगर पश्चिम ने पहला सूत्र पकड़ लिया मूढ़तापूर्ण ढंग से--अभी कर लो! तो
हर चीज जल्दी होनी चाहिए, इंस्टैंट कॉफी की भांति--अभी, इसी वक्त! इतनी भी देर कौन करे कि कॉफी तैयार करो, फिर बनाओ। पश्चिम जल्दी ही और सब चीजों में जल्दबाजी कर-कर के ऐसी जगह आ रहा है कि भोजन इत्यादि कौन करे, फिर भोजन करो, फिर पचाओ--बस विटामिन की टिकिएं निगल जाओ या एक इंजेक्शन ले लो, सात दिन के लिए निबटे। इतनी देर इतना समय कौन खराब करे! सोने में समय खराब हो रहा है, सोए कौन! तो ऐसी टिकिएं ले लो जिनसे नींद न आए। समय कम है और बहुत करना है। भागे जाओ! भागे जाओ! और भाग-भाग कर पहुंचोगे कहां? कब्र में गिरोगे!
और पूरब ने दूसरे सूत्र का उपयोग करके अपना सारा गौरव गंवा दिया है--
आज करंते काल कर, काल करंते परसों।
जल्दी-जल्दी क्यों करता है, अभी तो जीना बरसों।।
पूरब टालता है। वह कहता हैः अभी क्या जल्दी है, कर लेंगे। अभी तो जवान हूं, अभी तो बुढ़ापा आएगा। और फिर भी अगर मर गए तो क्या जल्दी है, दूसरा जन्म होगा। पश्चिम में तो दूसरा जन्म होता नहीं। और यहां तो जन्मों के बाद जन्म हैं, सिलसिला ही सिलसिला है।
पश्चिम मर रहा है तनाव से, जल्दबाजी, तीव्रता, शीघ्रता; और पूरब मर रहा
है आलस्य से, तामस से। दोनों ने गलत उपयोग कर लिया है।

इसलिए मैं तुम्हें सिद्धांत नहीं देता; मैं तुम्हें आंख देता हूं। फर्क समझ लो। सिद्धांतों के साथ हमेशा खतरा है। क्योंकि सिद्धांतों का उपयोग कौन करेगा? व्याख्या कौन करेगा? तुम्हीं तो व्याख्या करोगे न! फिर तुम अपने हिसाब से व्याख्या करोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन डट कर शराब पी रहा है। और किसी ने कहा, नसरुद्दीन! तुमको मैंने कुरान भी पढ़ते देखा और तुम शराब भी पीते हो, शर्म नहीं आती? नसरुद्दीन ने कहा, कुरान के अनुसार ही शराब पी रहा हूं। कुरान में वचन साफ है कि जितनी पीनी हो शराब पी लो। उस आदमी ने कहा, वह मुझे मालूम है, लेकिन आगे? यह तो आधा वचन है। आगे लिखा है कि लेकिन परिणाम के लिए तैयार रहना, नरक की अग्नि में सड़ोगे। मुल्ला ने कहा, अभी जितनी हैसियत है उतना कर रहा हूं--आधा। अभी पूरे करने की हैसियत, पात्रता नहीं है। मान तो कुरान को ही रहा हूं।
लेकिन व्याख्या तो तुम करोगे न!
इसलिए मैं तुम्हें सिद्धांत नहीं देता। मैं तुम्हें बंधी-बंधाई धारणाएं नहीं देता। मैं तो तुम्हें देता हूं दृष्टि--देखने की, सोचने की, विचारने की। मैं तो तुम्हें ध्यान देता हूं, ताकि ध्यान के दर्पण में तुम्हें साफ दिखाई पड़ने लगे--कौन बात कब ठीक है। कभी ठीक होती है, कभी ठीक नहीं होती। संदर्भ बदल जाते हैं, सत्य बदल जाते हैं।

आखिरी सवालः ओशो, हम संन्यासियों का परिचय क्या?

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र! बस इतना ही छोटा सा परिचय। पर इतना काफी है। इसमें आ गए सब उपनिषद, आ गईं सब भगवद्गीताएं, आ गई बाइबिल, आ गया कुरान, आ गया धम्मपद। इसमें आ गए सब बुद्धों के गीत। इसमें आ गए सब जाग्रत पुरुषों के उत्सव।
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र!
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र दूसरा प्रवचन

डूबो

पहला प्रश्नः ओशो, स्त्री तो बिना प्रेम के नहीं पहुंच सकती। स्त्री
तो सिर्फ डूबना जानती है। और आप में डूब कर ही जाना हो सकता है। मुझे डुबा लें और उबार लें।

प्रतिभा, प्रश्न स्त्री और पुरुष का नहीं है। बिना डूबे कोई भी कभी नहीं पहुंचा है, न कोई कभी पहुंचेगा।
आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है। स्त्री-पुरुष के भेद तो अत्यंत ऊपरी हैं; जैसे वस्त्रों के भेद, बस इससे ज्यादा गहरे नहीं। चमड़ी के भेद, हड्डी-मांस के भेद। तुम्हारे भीतर जो विराजमान है, वह तो स्त्री-पुरुष दोनों के अतीत है। और वह डूबे तो नाव पार लगे।
इस तरह मत सोचो कि स्त्री तो बिना प्रेम के नहीं पहुंच सकती। बिना प्रेम के कोई भी नहीं पहुंच सकता है। प्रेम परमात्मा का द्वार है। प्रेम की पराकाष्ठा ही परमात्मा की अनुभूति है। प्रेम का फूल ही जब पूरी तरह खिलता है, तो जो सुवास उठती है, उस सुवास का नाम ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं। परमात्मा अनुभूति है--तुम्हारे अंतरात्मा से उठती सुवास की। और डूबे बिना यह नहीं होगा।
डूबने का क्या अर्थ?
डूबने का अर्थ हैः अहंकार का विसर्जन। डूबने का अर्थ हैः मैं भाव को छोड़ देना। मैं भाव को जिन्होंने पकड़ा है, वे किनारे से अटके रह जाएंगे। मैं भाव को जिन्होंने पकड़ा है, वे ऐसी नावें हैं जिनकी जंजीरें किनारों से बंधी हैं। फिर तुम पतवार कितनी ही चलाओ, यात्रा नहीं होगी।
एक पूर्णिमा की रात्रि, कुछ शराबी खूब पी गए और फिर नदी-तट पर गए। मांझी तो जा चुके थे घर नावों को बांध कर जंजीरों से। एक सुंदर सी नाव उन्होंने चुनी। पतवारें उठाईं, नाव को खेना शुरू किया। धुत थे नशे में। खूब पतवारें चलाईं। सर्द रात थी, लेकिन पतवारें चला-चला कर पसीने-पसीने हो गए। जब सुबह होने के करीब आई, थोड़ी ठंडी हवा के झोंके आए, थोड़ा नशा उतरा, तो किसी एक ने कहा कि जरा उतर कर तो देखो, हम न मालूम कितनी दूर निकल आए हों! रात भर हो गई है पतवार चलाते-चलाते, एक क्षण भी तो रुके नहीं हैं कहीं। अब लौटना भी होगा। घर पत्नी-बच्चे राह भी देखते होंगे।
तो एक उनमें से उतरा किनारे पर और फिर ऐसा खिलखिला कर हंसा कि अपना पेट पकड़ कर वहीं बैठ गया। दूसरों ने पूछा, बात क्या है? उसने कहा कि तुम भी आ जाओ! बात बताने की नहीं, जानने की है। वे भी उतर कर आए। जो उतरा वही हंसा। जो उतरा उसी ने अपना पेट पकड़ लिया और लोट-पोट होने लगा। सब उतर आए तब समझ में बात आई कि जंजीर खोलना तो भूल ही गए! पतवार तो रात भर चलाई, मगर इंच भर यात्रा न हुई।
और यह कहानी सिर्फ कहानी नहीं है, यह अधिकतम लोगों के जीवन का यथार्थ है। जीवन भर दौड़ते हो, पहुंचते कहां? पतवार तो बहुत चलाते हो, यात्रा कहां होती? मंजिल तो दूर, पड़ाव भी नहीं मिलते। और कारण? कारण है अहंकार। जोर से अपने को पकड़े हो। और जो अपने को पकड़े है वह परमात्मा को नहीं पा सकता। दोनों हाथ लड्डू नहीं हैं संभव। कारण है। तुम चाहो कि कमरे में अंधेरा भी रहे और रोशनी भी, यह नहीं हो सकता। यह जीवन के गणित के खिलाफ है। अंधेरा चाहते हो तो रोशनी नहीं, रोशनी चाहते हो तो अंधेरा नहीं। कोई समझौता नहीं हो सकता। समझौते की कोई विधि नहीं है कि दोनों साथ रहें। कोई सह-अस्तित्व नहीं हो सकता।
अहंकार अंधेरा है। मैं हूं, यह उनका बोध है जिन्हें अपना बोध नहीं। मैं हूं, यह उनकी मान्यता है, जिन्हें मैं का कोई भी पता नहीं। जिन्होंने मैं को जाना वे तो कहते हैं, मैं नहीं हूं। वे तो कहते हैं, परमात्मा है, मैं कहां? बूंद नहीं, सागर है।

अज्ञानी कहता है, बूंद है, सागर नहीं। अज्ञानी कहता है, सागर कहां? मुझे सागर दिखा दो। देखूंगा तो मान लूंगा। मुझे सागर का प्रमाण दे दो। प्रमाण मिल जाएंगे तो स्वीकार कर लूंगा।
बूंद का भरोसा अपनी सीमा में है, और सागर असीम है। और जिसकी आंखें सीमा से दबी हैं, वह असीम को नहीं देख पाएगा। असीम को देखने के लिए सीमा को छोड़ना होगा। और सब से क्षुद्र सीमा अहंकार की है। इससे छोटी कोई सीमा नहीं। इससे छोटे तुम और नहीं हो सकते। अहंकारी से ज्यादा छोटे होने का कोई उपाय, कोई विधि नहीं है। अहंकार छोटे से छोटा अस्तित्व है। परमाणुओं से भी छोटे हो तुम। परमाणु का तो विभाजन भी हो जाए, तुम्हारा विभाजन भी नहीं हो सकता। तुम तो आखिरी हो।
अहंकार बस आखिरी, आत्यंतिक परमाणु है, उसके आगे फिर विभाजन नहीं। वह
सब से छोटी इकाई है। और उस छोटी इकाई को तुमने इतने जोर से पकड़ा है कि तुम विराट को कैसे देख सकोगे!
डूबने का अर्थ होता हैः धीरे-धीरे मैं को जाने दो, विदा होने दो। नमस्कार करो इसे। अलविदा कहो इसे। और अड़चन नहीं है इसे अलविदा कहने में, क्योंकि यह बिल्कुल झूठ है। झूठ को छोड़ने में कोई अड़चन होने वाली है? छोड़ना ही न चाहो तो बात और। यह बिल्कुल झूठ है। यह ऐसा है जैसे कोई नंगा कहे कि मैं नहाता नहीं, क्योंकि नहाऊंगा तो फिर निचोडूंगा कहां? नहाता नहीं, क्योंकि नहाऊंगा तो फिर कपड़े कहां सुखाऊंगा?
नंगा कहे, नहाता नहीं, क्योंकि कपड़े कहां सुखाऊंगा? तो तुम उससे क्या कहोगे कि पागल हो गए हो! कपड़े हैं कहां जिनको सुखाने की जरूरत और निचोड़ने की जरूरत पड़ेगी? तुम नंगे हो, दिल खोल कर नहाओ। जितनी बार नहाना हो उतनी बार नहाओ। तुम्हें तो कपड़े उतारने और पहनने की भी झंझट नहीं है।
मैं है ही नहीं, इसलिए छोड़ने में कोई अड़चन नहीं होती। होता तो अड़चन होती। है ही नहीं। जरा आंख भीतर मोड़ी, जरा गौर से देखा, कि मैं पाया नहीं जाता। और उस न पाने में सब पाना छिपा है--पाने का पाना छिपा है। जहां मैं नहीं पाया जाता, वहीं परमात्मा पाया जाता है। बूंद गई, सीमा गई; सागर प्रकट हुआ।
प्रतिभा, स्त्री ही प्रेम से नहीं पहुंचती, सभी प्रेम से पहुंचते हैं। यह हो सकता है, थोड़ा सा भेद हो सकता है। पुरुष पहले ध्यान करता है और ध्यान से प्रेम पर पहुंचता है। इतना फासला है, मगर पहुंचता तो प्रेम पर है। महावीर उसी प्रेम को अहिंसा कहते हैं। बुद्ध उसी प्रेम को करुणा कहते हैं। यह नाम का भेद है। और ये प्रेम से सुंदर नाम नहीं हैं, यह मैं तुमसे कह दूं। महावीर ने अलग नाम चुना। बुद्ध ने अलग नाम चुना। कारण थे। क्योंकि प्रेम के साथ बहुत कीचड़ जुड़ गई है, सदियों-सदियों की कीचड़। और हमने प्रेम के शब्द का इतना दुरुपयोग किया है, इस वजह से महावीर को नया शब्द गढ़ना पड़ा-- अहिंसा।
लेकिन अहिंसा उतना महिमाशाली शब्द नहीं है जितना प्रेम। अहिंसा में
वह रस नहीं है, न वह आनंद है, न वह विस्तार है। अहिंसा का तो अर्थ ही इतना होता हैः हिंसा नहीं, किसी को दुख नहीं पहुंचाना। प्रेम इससे बहुत ज्यादा है। प्रेम इतने पर समाप्त नहीं है कि किसी को दुख नहीं पहुंचाना; यह तो उसका अनिवार्य हिस्सा है कि किसी को दुख नहीं पहुंचाना। लेकिन प्रेम और भी कुछ ज्यादा है।
प्रेम हैः सुख पहुंचाना। अहिंसा हैः दुख न पहुंचाना। अहिंसा नकारात्मक है। वह तो शब्द से ही जाहिर हैः हिंसा नहीं। नकार है। महावीर ने नकारात्मक शब्द चुना। क्योंकि विधायक शब्द, प्रेम, सदियों-सदियों से गलत लोगों के हाथ में पड़े-पड़े गंदा हो गया था। तुम तो छोटी-मोटी चीज को ही प्रेम कहने लगते हो। कोई कहता है, मुझे आइसक्रीम से बड़ा प्रेम है! तो महावीर ने सोचा होगा कि अब क्या करना? कोई कहता है, मुझे मेरे कुत्ते से बहुत प्रेम है। और कोई कहता है, मुझे मेरे मकान से बहुत प्रेम है। लोग किस-किस चीज से प्रेम करते हैं! अगर इन सब प्रेमों पर ध्यान दिया जाए तो महावीर ने ठीक ही किया, उन्होंने सोचा कि इस शब्द को बीच में लेना उचित नहीं। इस शब्द के साथ गलत संयोग हो गए हैं।

मगर शब्द बड़ा अदभुत है! मैं तो शब्द को चुनूंगा। मैं तो कीचड़ को हटाऊंगा। कीचड़ के कारण शब्द को थोड़े ही फेंक देंगे। कीचड़ लग जाए तो कोई हीरे को फेंकता है! धो डालेंगे। प्रेम के हीरे को धोएंगे। उसी धोने में लगा हूं। मगर प्रेम को प्रेम ही कहेंगे।
बुद्ध ने थोड़ा ठीक किया। अहिंसा की जगह करुणा शब्द चुना। अहिंसा नकारात्मक है, करुणा कम से कम विधायक है। मगर करुणा में भी वे ऊंचाइयां नहीं जो प्रेम में हैं। करुणा में भी वे गौरीशंकर नहीं जो प्रेम के हैं। क्योंकि करुणा में कहीं न कहीं दया भाव है। दया भाव में कहीं न कहीं अहंकार के छिपे रहने का उपाय है। जब तुम किसी पर दया करते हो तो तुम ऊपर हो गए। जब तुम किसी पर करुणा करते हो तो वह नीचे हो गया, उसके हाथ नीचे हो गए; तुमने उसे दीन कर दिया।
करुणा शब्द कितना ही सुंदर हो, प्रेम की गरिमा और गौरव को नहीं पाता। कितना ही शुद्ध हो और कितनी ही कीचड़ उसको न छुई हो, मगर फिर भी क्या करो, कमल कीचड़ में उगते हैं! और प्रेम का कमल भी मनुष्य-जाति की बहुत-बहुत कीचड़ में से उगा है।
मैं तो प्रेम को प्रेम ही कहूंगा। अहिंसा नहीं कहूंगा, क्योंकि वह नकारात्मक हो जाता है। और नकारात्मक के खतरे हैं। खतरा यह है कि आदमी कहता है, हम दुख नहीं देंगे। हम अपने को किसी को दुख देने से बचाएंगे। लेकिन दूसरे को सुख देंगे, आनंद बांटेंगे--यह महोत्सव अहिंसा से नहीं उठता। इसलिए जैन धर्म सिकुड़ गया।
कभी-कभी छोटे-छोटे शब्द कितना महत्वपूर्ण परिणाम लाते हैं! जैन धर्म सिकुड़ गया अहिंसा शब्द के कारण। क्योंकि अहिंसा सिकोड़ सकती है, फैला नहीं सकती। चींटी न मारो, पानी छान कर पी लो, रात्रि भोजन न करो, झगड़ा नहीं, झंझट नहीं--सिकुड़ो, सिकुड़ते जाओ, बस अपने को बचा कर चलो किसी तरह। देखते हैं, जैन मुनि कैसे चलता है! अपने को बचा-बचा कर। साथ में पिच्छी लेकर चलता है; कहीं कोई चींटी इत्यादि हो, बैठे तो जल्दी से पहले साफ कर ले। पिच्छी भी बनाई जाती है भेड़ के बालों को, ताकि चींटी मर न जाए, चोट न लग जाए।
सब अच्छा है, इसको मैं बुरा नहीं कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं
कि चींटियां मारो, जहां मिल जाएं उन्हें मारो। चींटियों को बचाओ, अच्छा है। मगर चींटियों को बचाने में जहां धर्म सीमित हो जाए, वहां विस्तार नहीं हो सकता। और चींटियों को बचाने वाले के जीवन में आनंद का गीत कैसे उठेगा? इसीलिए कि तुमने एक हजार एक चींटियां बचाईं, तुम आनंद का गीत गा सकोगे? इसीलिए तुम बांसुरी बजा सकोगे कि धन्यभाग मेरे कि एक हजार एक चींटियां बचाईं?
तुम्हारी जिंदगी नकार के साथ नकार ही हो जाएगी। वही हुआ। जैन धर्म सिकुड़ गया। इसकी बड़ी क्षमता थी। इसके पास बड़ी महिमा थी। इसके पास ध्यान के गहरे सूत्र थे। मगर बुरी तरह सिकुड़ा। आज संख्या ही क्या है जैनों की--कोई तीस लाख! पच्चीस सौ साल के इतिहास में तीस लाख संख्या! अगर तीस जोड़ों ने भी महावीर से संन्यास लिया होता तो भी इतनी संख्या हो जाती पच्चीस सौ साल में।
यह क्या हुआ? महावीर जैसे अदभुत पुरुष की वाणी कहां खो गई? यह अहिंसा
के रेगिस्तान में खो गई। यह शब्द नकारात्मक था। और फिर एक शब्द नकारात्मक नहीं था, महावीर ने जो चुनाव कर लिए वे सब नकारात्मक हो गए। अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, अचौर्य--सब अ से जुड़ गए। सारे व्रत नकारात्मक हो गए। बुद्ध ने थोड़ा ठीक किया, इसलिए बुद्ध का विस्तार हुआ। बुद्ध धर्म फैला, खूब फैला, दूर-दूर तक गया। करुणा शब्द विधायक है। मगर करुणा में अहंकार डूबता नहीं। शुद्ध अहंकार हो जाता है जरूर, मिटता नहीं। और शुद्ध अहंकार ऐसा जैसे शुद्ध जहर। इसलिए बौद्ध भिक्षु खूब अकड़ा, खूब अहंकार से भरा। बुद्ध धर्म का पतन हुआ अहंकार से। जैन धर्म का पतन हुआ नकार से। बौद्ध ऐसे अकड़ गए कि पतन हो जाना बिल्कुल सुनिश्चित हो गया।
प्रेम शब्द की बड़ी खूबी है। न तो इसमें नकार है और न अहंकार है। प्रेम में तो सिर्फ डूब जाना है--बेशर्त, बिना कुछ मांगे। प्रेम तो दान ही दान

है। प्रेम तो अहर्निश दान है। प्रेम में विस्तार है और विस्तार ब्रह्म का रूप है।
विस्तीर्ण होने के लिए, प्रतिभा, बस एक शर्त पूरी करनी हैः अपने भीतर झांक कर देखो, अहंकार है या नहीं? अगर है तब तो फिर धर्म संभव नहीं। अगर अहंकार है तो परमात्मा नहीं है। लेकिन जिसने भी भीतर झांका है उसने कभी अहंकार पाया नहीं। अहंकार बाहर भटकते हुए लोगों की भ्रांति है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा ट्रेन में पकड़ गया। टिकट कलेक्टर टिकट मांग रहा है। उसने पैंट की जेब देखी, कमीज की जेब देखी, कोट की जेब देखी, सब जेबें टटोल डालीं। एक दफा, दो बार, उलटा कर देख लीं, बिल्कुल उलटा-उलटा कर कि कुछ कहीं भी छिपी टिकट रह न जाए। टिकट मिले नहीं। बिस्तर खोल डाला, सूटकेस खोल डाला, कपड़े उधेड़बुन डाले सब। टिकट कलेक्टर भी हैरान है।
टिकट कलेक्टर ने कहा कि देखो महानुभाव, और सब तो तुम कर रहे हो, यह तुम्हारी जो कोट की ऊपर की जेब है यह क्यों नहीं देखते? शायद इसमें हो! उसने कहा, वह बात ही मत उठाना। उस जेब में मैं देख ही नहीं सकता हूं।
टिकट कलेक्टर ने कहा, क्यों?
उसने कहा, उसी में मेरी सारी आशा अटकी है कि अगर कहीं नहीं होगी तो वहीं होगी। और अगर वहां भी नहीं है तो मारे गए! तो मैं उसमें तो देख ही नहीं सकता, पहले मुझे सब जगह देख डालने दो। अपने बिस्तर ही नहीं, दूसरों के भी खोलूंगा। यह पूरे डब्बे में एक चीज नहीं छोडूंगा। वह जेब तो बिल्कुल आखिर में। उसकी बात ही मत उठाओ। क्योंकि डर लगता है; अगर वहां नहीं हुई तो फिर क्या होगा! वहां की आशा है कि वहां होगी।
ऐसी हालत है आदमी की। आदमी बाहर देखता फिरता है और भीतर नहीं झांकता।
डर है उसे, भीतर अगर झांका... और डर सच्चा है, डर में सचाई है, सत्य का अंश है, कि अगर भीतर झांका और अपने को नहीं पाया, फिर क्या होगा? इसलिए भीतर झांको मत। कुर्सियां चढ़ो। धन इकट्ठा करो। अहंकार को सजाओ। इसकी फिकर ही मत करो कि अहंकार है भी या नहीं।
एक फकीर एक गांव के बाहर मेहमान हुआ। उस फकीर के पास एक बकरी थी। उस गांव के एक युवक ने उसकी बड़ी सेवा की। सुबह से सांझ तक उसकी सेवा में रत रहे। रात भी वहीं उसके झोपड़े के बाहर सो जाए। जब फकीर जाने लगा तो वह अपनी बकरी उस युवक को भेंट कर गया। कहा, यह मेरा प्रसाद।
उस झोपड़े में युवक फकीर होकर रहने लगा। और क्या कमी थी अब! बकरी भी थी--
और महात्मा की बकरी थी। झोपड़ी भी थी--महात्मा की झोपड़ी थी। इतने दिन सत्संग भी हुआ था। थोड़ी सत्संगी बातें भी सीख गया था। थोड़ी ज्ञान-चर्चा भी करने लगा था। थोड़ी आत्मा-परमात्मा की बात भी उठाने लगा था। जल्दी ही उसकी ख्याति हो गई। उसकी भी पूजा होने लगी।
कुछ वर्षों बाद फकीर वहां आया। वह तो बड़ा हैरान हुआ। झोपड़ा छोड़ गया था, वहां तो एक विशाल मंदिर बन गया था! मंदिर में वेदी थी। स्वर्ण और हीरे- जवाहरातों से खची थी। युवक, जिसको वह छोड़ गया था, वह तो उस मंदिर का महंत हो गया था। उसकी शान के तो कहने क्या! उस वेदी की बड़ी प्रतिष्ठा थी; दूर-दूर तक ख्याति पहुंच गई थी कि सब की मंशाएं पूरी हो जाती हैं।
रात जब फकीर अपने शिष्य के साथ सोया तो उसने पूछा, यह तो बता कि यह वेदी किसकी है? क्योंकि मैं जब छोड़ गया था, झोपड़ा था यहां। न कोई वेदी थी, न कोई सवाल था। कौन सी देवी की वेदी है यह? उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! वह जो बकरी आप दे गए थे, वह मर गई। मर गई, आपकी बकरी थी, तो मैंने उसे ठीक से दफनाया, वेदी बनाई। मैं तो वेदी बना रहा था, लोग पूछने लगे कि यह किसकी है? तो अब मैं क्या कहूं? कहूं कि बकरी की है तो लोग हंसेंगे, तो मैंने कहा, किसी देवी की है। ऐसे अपने को बचाने के लिए बात शुरू की थी, बात बढ़ती चली गई। बात में से बात निकलती चली गई। लोग आने लगे। वेदी पर फूल चढ़े, पैसे चढ़े, रुपये चढ़े। यह मंदिर भी बन गया। अब तो कोई पूछता ही नहीं कि यह वेदी किसकी है। आपने पूछा तो मैंने कहा।
फकीर खिलखिला कर हंसने लगा। युवक ने पूछा, आप क्यों हंसते हैं? उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि मैं जिस गांव में रहता हूं, इसी बकरी की मां की

वेदी वहां है। यह बड़ी कुलीन बकरी थी। इसकी मां जब मरी थी तो भी यही हुआ था।
मेरी भी जो प्रतिष्ठा है, इसी की मां के कारण है।
फिर कोई पूछता ही नहीं। लोग चढ़ाए जाते हैं।
अहंकार कुछ भी नहीं है, शून्य है। मगर तुम शून्य पर भी सोना चढ़ा सकते हो। और शून्य पर भी हीरे-जवाहरात टांक सकते हो। और शून्य के चारों तरफ भी महल खड़े कर सकते हो। और शून्य के आस-पास पद-प्रतिष्ठा, सत्कार-सम्मान, यश-गौरव, उपाधियां, तगमे लटका सकते हो। और फिर शून्य तो खो जाएगा, आस-पास तुमने जो लटका दिया है वही दिखाई पड़ेगा। और फिर डर भी लगेगा कि भीतर कभी जाना कि नहीं! कहीं ऐसा न हो कि भीतर जाएं और पता चले वहां कोई है ही नहीं, एक बकरी सड़ रही है!
प्रतिभा, अहंकार को डुबाने का यह अर्थ नहीं है कि अहंकार कुछ है और उसको पकड़ कर डुबाना है। अहंकार को डुबाने का केवल इतना अर्थ हैः जरा भीतर देखो, बस जरा भीतर देखो, अहंकार पाया नहीं जाता। उस न पाए जाने में अहंकार का डूब जाना है। और तब प्रेम के फव्वारे फूट उठते हैं। वही प्रेम परमात्मा है। और इसमें न पुरुष का सवाल है और न स्त्री का। यद्यपि मार्ग में थोड़े भेद होंगे। मंजिल में भेद नहीं हो सकते। न तो स्रोत में कोई भेद है और न अंतिम मंजिल में कोई भेद हो सकते हैं। न उदगम में और न अंत में। हां, यात्रा-पथ में थोड़े भेद होंगे। पुरुष ध्यान से शुरू करेगा और प्रेम पर पहुंचेगा, स्त्री प्रेम से शुरू करेगी और ध्यान पर पहुंचेगी। वे भेद कुछ बड़े मूल्य के नहीं हैं। ध्यान से शुरू करो तो प्रेम पर पहुंच जाओ। प्रेम से शुरू करो तो ध्यान पर पहुंच जाओ। क्योंकि प्रेम और ध्यान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जैसे स्त्री और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
तूने पूछाः "स्त्री तो बिना प्रेम के नहीं पहुंच सकती।"
कोई भी नहीं पहुंच सकता।
और तूने पूछाः "स्त्री तो सिर्फ डूबना जानती है।"
ऐसा हम कहते हैं। ऐसा हम मानते भी हैं। मगर न तो पुरुष डूबना चाहता है,
न स्त्री डूबना चाहती है। दोनों अकड़ते हैं। दोनों अपने को बचाने की कोशिश करते हैं। हां, पुरुष के बचाने के ढंग थोड़े स्थूल होते हैं, स्त्री के बचाने के ढंग थोड़े सूक्ष्म होते हैं। पति और पत्नियों के झगड़ों में, स्त्री-पुरुषों के संघर्षों में निरंतर यह बात दिखाई पड़ जाएगी। दोनों में से कोई झुकना नहीं चाहता।
पुरुष तो झुकना ही नहीं चाहता। उसने तो अहंकार को सदियों-सदियों तक पाला-पोसा है, उसकी मालिश की है, मरम्मत, हर तरह से सम्हाला है, साज दिया है,शृंगार दिया है। लेकिन स्त्री भी कुछ पीछे नहीं रही है। उसके पास भी अहंकार है; स्त्रैण ढंग का है, इसलिए एकदम से पकड़ में नहीं आता। स्त्री पुरुष के पैर पकड़ लेती है, कहती है, आपके चरणों की दासी! लेकिन आखिरी परिणाम क्या होता है? चरणों की दासी तो मालकिन हो जाती है और वे जो मालिक थे, चरणों के दास हो जाते हैं। तुम घर-घर में चरणों के दास देखोगे! स्त्रियां मालिक होकर बैठी हैं। इसलिए भारत में तो ठीक है, हम स्त्री को घरवाली कहते हैं। घरवाले को घरवाला नहीं कहते। स्त्री घर की मालिक है, वह घरवाली है।
पुरुषों को भलीभांति पता है कि चिट्ठी वगैरह स्त्री लिखती है मायके
से तो उसमें लिखती हैः आपके चरणों की दासी! लेकिन पुरुष को पता है कि चरणों का दास असल में कौन है!
स्त्री का रास्ता थोड़ा सूक्ष्म है। वह जीत कर नहीं जीतती, वह हार कर जीतती है। वह गर्दन पकड़ कर नहीं जीतती, वह पैर छूकर जीतती है। वह मार कर नहीं जीतती, वह मर कर जीतती है।
इसलिए पुरुष को क्रोध आ जाता है तो स्त्री की पिटाई करता है; स्त्री
को क्रोध आ जाता है तो वह खुद की पिटाई कर लेती है, खुद का सिर दीवार से मार लेती है। पुरुष को क्रोध आ जाता है तो वह हत्या कर देता है; स्त्री को क्रोध आ जाता है तो वह आत्महत्या कर लेती है। मगर ये सब एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इनमें कहीं कोई भेद नहीं है। इनमें जो भेद हैं, वे स्त्री और पुरुष के मन के हैं, मनोवैज्ञानिक हैं।

मगर स्त्री भी संघर्ष करती है, पूरा संघर्ष करती है, पूरी जद्दोजहद, इंच-इंच लड़ाई चलती है। पति और पत्नियां प्रतिपल लड़ते रहते हैं। हर छोटी- बड़ी बात पर लड़ते रहते हैं। यह कुर्सी इस जगह रखी जाए या उस जगह, यह भी झगड़े का कारण होता है। आज इस चित्र को देखने जाया जाए या उस चित्र को, यह भी झगड़े का कारण होता है।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने एक दिन पूछा कि नसरुद्दीन, क्या राज है, क्या रहस्य है? तुम में और तुम्हारी पत्नी में कभी झगड़ा नहीं होता!
हंसने लगा नसरुद्दीन और उसने कहा कि जब शादी की, बस पहला काम मैंने यही किया। क्योंकि पहले झगड़ा शुरू हो जाए तो फिर उसका अंत करना बहुत मुश्किल। मैंने पहले से ही पाबंदी की। मैंने कहा कि देख देवी, यह पहले ही हम निर्णय कर लें कि झगड़ना नहीं है। जो भी शर्त हो वह हम तय कर लें, साफ कर लें अपना समझौता। और हमने समझौता कर लिया और फिर झगड़ा नहीं हुआ।
मैंने पूछा, क्या समझौता किया? तो उसने कहा, दो समझौते किए। दोनों से बड़ा लाभ हुआ। एक समझौता तो यह किया कि छोटी-छोटी चीजों का हिसाब पत्नी रखेगी, बड़ी-बड़ी चीजों का हिसाब मैं रखूंगा। मैंने कहा, पत्नी राजी हो गई? उसने कहा, राजी हो गई। तो मैंने कहा, मुझे बताओ ठीक-ठीक छोटी चीजें कौन-कौन सी हैं? तो उसने कहा, जैसे घर में कौन सी कार खरीदनी, बच्चे को किस स्कूल में भेजना, कैसा मकान खरीदना, पैसे का बजट कैसे बनाना, सब छोटी-मोटी दुनियादारी की चीजें उसको दे दीं। और मैंने कहा, बड़ी चीजें? तो उसने कहा, जैसे ईश्वर है या नहीं? मोक्ष का क्या अर्थ? कितने स्वर्ग हैं, कितने नरक? वियतनाम में युद्ध बंद होना चाहिए कि नहीं? कश्मीर भारत में रहे कि पाकिस्तान में? ऐसे बड़े-बड़े जो प्रश्न हैं, वे सब मैं तय करता हूं। और छोटे-छोटे जो प्रश्न हैं, वे सब पत्नी तय करती है। झगड़ा हुआ नहीं।
झगड़ा होगा भी क्यों! पत्नियां होशियार हैं। ऐसे बड़े-बड़े सवाल अगर तुम्हें तय करने हैं तो वे जानती हैं मजे से करो, इनसे कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं है। असली सवाल यह है कि घर के सामने एम्बेसेडर गाड़ी खड़ी होगी कि फिएट! परमात्मा है या नहीं, तुम सोचो। हो तो ठीक, न हो तो ठीक। साड़ी कौन सी खरीदनी है, यह पत्नी सोचेगी। नरक सात हैं कि तीन, यह तुम विचार कर लो। जाना भी तुम्हें है, तुम्हीं समझो।
और मैंने पूछा, दूसरा समझौता? उसने कहा, दूसरा भी बड़े लाभ का हुआ। दूसरा समझौता यह कि अगर किसी को क्रोध आ जाए तो वह तत्क्षण बाहर निकल जाए। जब तक क्रोध शांत न हो जाए, बाहर चक्कर लगाता रहे।
नसरुद्दीन कहने लगा, इसी कारण मेरी सेहत अच्छी है। क्योंकि दिन में दस-पच्चीस दफे मुझे पूरे गांव का चक्कर लगाना पड़ता है। जब भी क्रोध आता है, निकल पड़ता हूं। मारा एक चक्कर, दो चक्कर, तीन चक्कर... जब तक क्रोध शांत न हो जाए, चक्कर मारना पड़ते हैं। इससे मैं बीमार कभी पड़ा नहीं, सिरदर्द मैंने जाना नहीं, बुखार मुझे कभी आया नहीं। लाभ ही लाभ रहा है।
स्त्रियों और पुरुषों के गणित अलग-अलग हैं, मगर गणितों का लक्ष्य एक है। स्त्री भी चाहती है पुरुष पर कब्जा हो। इसलिए स्त्री बहुत ईर्ष्यालु होती है। पुरुष भी चाहता है स्त्री पर कब्जा हो। और पुरुष सब तरह के आयोजन करता है इस कब्जे के लिए। स्त्री समाज में न जा सके, दूसरों से परिचित न हो सके, उसने स्त्री से सारा काम-धंधा छीन लिया, उसका सामाजिक जीवन छीन लिया। उसको बिल्कुल अपंग कर दिया, ताकि वह उस पर पूरी तरह निर्भर हो। निर्भर होगी तो गुलाम होगी।
मगर ध्यान रखना, जिसको तुम गुलाम बनाओगे, तुम्हें उसका गुलाम बनना पड़ेगा। उसने सब छोड़ दिया, और उसके पास सारी मालकियत करने की जो आकांक्षा है, जो सब तरफ बिखर सकती थी--धन में, पद में, प्रतिष्ठा में--वह इकट्ठी हो गई। और उसने सारी की सारी मालकियत की इच्छा पति पर लगा दी। इसलिए हर पति घर में घुसते ही कुछ और हो जाता है।
एक स्कूल में एक शिक्षिका ने पूछा कि क्या तुम उस जानवर के संबंध में बता सकते हो जो शेर की तरह आता है और फिर बिल्ली की तरह घर में प्रवेश करता है?

एक छोटे बच्चे ने कहा, पिताजी। दरवाजे तक तो बिल्कुल शेर की तरह आते हैं और घर में एकदम बिल्ली की तरह प्रवेश करते हैं।
स्त्री ने सारी राजनीति छोड़ दी, सारा उपद्रव छोड़ दिया; मगर सारी राजनीति और सारा उपद्रव संग्रहीभूत हो गया।
तो प्रतिभा, यह तो मत कह तू कि स्त्री डूबना जानती है। डूबना सीखना पड़े, बड़ी कला है! इस जगत की सर्वाधिक बड़ी कला है। उससे ऊपर कोई कला नहीं है। डूबना सीखना पड़े।
अहंकार स्त्री का भी है, और बड़ा सूक्ष्म है, और बड़ा सजा-बजा है। पुरुष
का रूखा-सूखा है। पुरुष का बिल्कुल प्रकट है। स्त्री का बहुत सूक्ष्म और छिपा है। डूबना दोनों को ही सीखना पड़ेगा। और डूबना सीखने की एक ही कुंजी है कि दोनों को अपने भीतर झांक कर देखना पड़ेगा कि मैं नहीं हूं। और यह बड़ा मंहगा सौदा है, जोखिम से भरा सौदा है। कम ही लोग कर पाते हैं। पर जो कर पाते हैं, वे बड़भागी हैं। परमात्मा उनका है।
तू कहती हैः "स्त्री तो सिर्फ डूबना जानती है। और आप में डूब कर ही जाना हो सकता है।"
डूबो! यह बात बहुत गौण है कि डूबने का बहाना क्या। सदगुरु तो सिर्फ एक बहाना है डूबने का, एक आसरा है डूबने का, एक निमित्त है डूबने का। बिना बहाने डूबना मुश्किल होता है। डूबो! जिस बहाने बन सके, डूबो! मेरा उपयोग कर लो, मुझमें डूबो। क्योंकि डूबने का परिणाम तो एक है; किसमें डूबते हो इससे फर्क नहीं पड़ता। राम में डूबो, कृष्ण में डूबो, बुद्ध में डूबो, मोहम्मद में डूबो--कहीं डूबो! किस घाट से उतरे, इससे फर्क नहीं पड़ता। उस पार जाना है। सब घाट उसके हैं। और सब घाटों से उसकी नाव छूटती है। मुझमें डूबो! मैं तो सिर्फ बहाना हूं। मुझमें डूब कर तुम पाओगे क्या? मुझमें डूब कर पाओगे कि तुम नहीं हो। मुझमें डूब कर पाओगे कि परमात्मा है। ऐसा ही कृष्ण में डूब कर पाओगे। ऐसा ही जीसस में डूब कर पाओगे।
लेकिन शायद जीसस में डूबना मुश्किल होगा; दो हजार साल का फासला हो गया। कृष्ण में डूबना मुश्किल होगा; पांच हजार साल का फासला हो गया। कृष्ण हुए भी कि नहीं, चित्त में बहुत संदेह उठेंगे। मंदिर में मूर्ति है, मगर मूर्ति का क्या भरोसा? कल्पित हो, कथा हो। और करीब-करीब कृष्ण के नाम से जो चलता है उसमें निन्यानबे प्रतिशत कथा है और कल्पना है।
मनुष्य बड़ा कल्पनाशील है। वह जिनको भी चाहता है उनके आस-पास कल्पना
के और कविताओं के बड़े जाल बुन देता है। और उन कविताओं और कल्पनाओं के जाल में सच्चे ऐतिहासिक लोग भी खोटे हो जाते हैं, झूठे हो जाते हैं। लोग तो महिमा के लिए कल्पनाओं के जाल बुनते हैं, लेकिन उनको पता नहीं, उन्हीं महिमाओं में उनके सदपुरुष डूब जाते हैं। क्योंकि उन्हीं महिमाओं के कारण वे सदपुरुष झूठे मालूम होने लगते हैं। कि कृष्ण ने अपनी अंगुली पर पर्वत उठा लिया!
अब इस तरह के झूठ तुम चलाओगे तो इससे यह मत समझना कि कृष्ण की गरिमा बढ़ती है। इससे सिर्फ इतना ही होता है कि कृष्ण भी झूठे हो जाते हैं। हां, अगर पर्वत ऐसा ही कोई रहा हो जैसा रामलीला वगैरह में होता है, जिसको हनुमान जी उठा कर लाते हैं, कागज का बना हुआ, तो बात अलग। ऐसा कोई गोवर्धन रहा हो, कागज का बना हुआ, कोई रामलीला चल रही हो और उसमें उठाया हो तो ठीक, चलेगा। लेकिन रामलीला में भी झूठ प्रकट होने में देर नहीं लगती।
एक गांव में रामलीला हुई। लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं और हनुमान जी गए हैं संजीवनी बूटी लेने। तय नहीं कर पाते कौन सी संजीवनी बूटी है, तो पूरा पहाड़ ही ले आते हैं। पहाड़ लिए चले आ रहे हैं। अब रामलीला, और गांव की रामलीला! एक रस्सी पर पहाड़ है, उसी रस्सी पर वे भी हैं। रस्सी पर कागज का पहाड़ हाथ में सम्हाले, रस्सी से बंधे, आकाश में उड़ते चले आ रहे हैं। गांव की घिर्री, भारतीय घिर्री, अटक गई। हनुमान जी अटके हैं मय पहाड़ के। रामचंद्र जी नीचे से खड़े देख रहे हैं। लक्ष्मण जी भी थोड़ी-थोड़ी आंख खोल कर देख लेते हैं कि देर क्यों लग रही है? और जनता ताली पीट रही है। और जनता ने ऐसा खेल कभी देखा भी नहीं, अब यह होगा क्या? इसका अंत क्या होगा?

आखिर मैनेजर घबड़ा गया। वह गांव का ही मामला; गांव के ही मैनेजर। वह घबड़ा कर ऊपर चढ़ा कि किसी तरह रस्सी को सरका दे, हनुमान जी उतरें पहाड़ सहित। नहीं सरकी रस्सी, गांठ खा गई। जल्दी में घबड़ाहट में कुछ और नहीं सूझा, चाकू से उसने रस्सी काट दी। तो मय पहाड़ के हनुमान जी नीचे गिरे।
मगर अब बंधा-बंधाया पाठ। तो रामचंद्र जी को तो वही कहना है। तो उन्होंने कहा कि ले आए पवनसुत, संजीवनी ले आए?
हनुमान जी ने कहा, ऐसी की तैसी पवनसुत की! पहले यह बताओ रस्सी किसने काटी? अगर उसकी मैंने अभी मरम्मत नहीं की तो मेरा नाम बलवंत सिंह नहीं। भूल ही गए कि हनुमान हैं, बलवंत सिंह! कि पहले उसको निपटाऊं, फिर लक्ष्मण जी, और सब को देख लूंगा।
रामलीला में भी तो झूठ ज्यादा देर नहीं चल सकता। वहां भी फंस जाती है रस्सी। और तुमने तो राम को भी झूठा कर दिया, कृष्ण को भी झूठा कर दिया, महावीर को झूठा कर दिया, बुद्ध को झूठा कर दिया। तुम झूठा करने में कुशल हो। हालांकि तुमने बड़ी अच्छी इच्छाओं से किया, मगर अच्छी इच्छाओं से क्या होता है? अंग्रेजी में कहावत हैः नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है। अच्छी-अच्छी आकांक्षाएं! तुमने तो यही सोचा, इससे गरिमा बढ़ेगी, लोगों में भक्ति-भाव बढ़ेगा। लोग कहेंगे, अहा, कृष्ण ने पर्वत उठा लिया-- गोवर्धनधारी! कि हनुमान जी पहाड़ उठा लाए--पवनसुत! लोगों में प्रतिष्ठा बढ़ेगी। लोगों में पूजा बढ़ेगी, अर्चना बढ़ेगी।
बढ़ती रही होगी जब तक लोगों में बुद्धि कम थी। लेकिन अब बुद्धि का विकास हुआ है। अब इन सारी बातों से काम नहीं चलेगा। अब तो तुम्हें एक सत्य समझना होगा कि झूठी कविताएं और झूठे काव्य और झूठे पुराण, जो अतीत में काम आ गए थे, अब काम नहीं आएंगे। डुबाएंगे तुम्हें बुरी तरह; पार नहीं जाने देंगे। कागज की नावें हैं, ये काम नहीं आएंगी।
सदगुरु खोजो! कहीं कोई मिल जाए जीवित व्यक्ति, जो तुम्हें इतना आकर्षित कर ले, जो तुम्हें इतना अपने हृदय के समीप ले ले, जिसके हृदय के समीप जाने को तुम्हारा हृदय नाच उठे--तो उसको निमित्त बना लो, कारण बना लो, बहाना बना लो और डूब जाओ! क्योंकि डूबोगे तो सदगुरु में, लेकिन निकलोगे परमात्मा में।
तो प्रतिभा, डूब! तू कहती है, स्त्री डूबना जानती है। चल, तू प्रमाण दे। डूब!
और तू कहती हैः "मुझे डुबा लें और उबार लें।"
मेरे किए यह नहीं होगा। तुझे ही डूबना पड़ेगा। और तू डूबेगी तो उबारना
तो अपने आप हो जाता है। मेरे किए तो कुछ भी नहीं होने वाला है। न तो डुबा सकता हूं तुझे, न उबार सकता हूं तुझे। डूबेगी तू, उबरेगी तू। जबरदस्ती किसी को डुबाओ तो वह निकलने की कोशिश करेगा, घबड़ाएगा। किसी छोटे बच्चे को कभी पानी में डुबकी लगवाई है गंगा में ले जाकर? वह एकदम घबड़ा जाएगा। डुबकाना तो दूर है, जरा लोटा भर पानी किसी बच्चे के सिर पर से डालो--और वह भागा, और वह चिल्लाया।
मैं नहीं तुझे डुबाऊंगा। हां, डूबने के लिए पूरा आयोजन कर दिया है।
घाट तैयार है। साहस के लिए पुकार दे रहा हूं, आह्वान दे रहा हूं। प्रतिपल चिल्ला रहा हूं कि आओ। डूबेगी तू, उबरेगी भी तू।
बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध तो केवल मार्ग बताते हैं, चलना तो तुम्हें पड़ता है, पहुंचना भी तुम्हें पड़ता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, सुना है श्री मोरारजी भाई को गीता पूरी कंठस्थ याद है। फिर भी वे राजनीति में इतने उत्सुक क्यों हैं?

कृष्ण वेदांत, गीता कंठस्थ याद हो, इससे क्या होगा? कंठ में ही होगी, हृदय में तो नहीं पहुंच जाएगी। गीता हृदयस्थ होनी चाहिए। और हृदयस्थ, बाहर से नहीं ले जाना पड़ता कुछ। जो गीता बाहर से जाएगी, कंठ तक ही जा सकती है, बस कंठ तक उसकी यात्रा है। जो कुरान बाहर से जाएगा, कंठ तक जा सकता है, बस कंठ तक उसकी यात्रा है। तुम्हें तोता बना देगा।

एक और गीता है, एक और गीत है, एक और कुरान है--जो तुम्हारे हृदय से उठता है; बाहर से नहीं लाना होता, भीतर जगता है। तुम्हारी अपनी ज्योति जलती है। तब तुम्हारे भीतर कृष्ण बोलते हैं, तब तुम्हारे भीतर अल्लाह की वाणी गूंजती है। तुम्हारी खुदी से खुदा जब बोलता है तब हृदयस्थ होती है गीता।
फिर उसे कुरान कहो, बाइबिल कहो, धम्मपद कहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। ये सब अलग-अलग गीत हैं, अलग-अलग गायकों ने गाए; मगर सब गीतों का स्वर एक है, संगीत एक है।
मोरारजी भाई को जरूर गीता कंठस्थ होगी। उसमें मुझे संदेह नहीं है। कंठस्थ ही हो सकती है लेकिन। और कंठस्थ गीता से राजनीति का क्या विरोध? जिसे गीता कंठस्थ है वह तो गीता में से भी राजनीति ही निकालेगा। लोकमान्य तिलक ने अपने ढंग की राजनीति निकाली गीता में से, महात्मा गांधी ने अपने ढंग की राजनीति निकाली गीता में से। मोरारजी भाई भी अपने ढंग की राजनीति निकाल लेंगे।
कंठस्थ जो है उसमें अर्थ तो तुम डालोगे; शब्द तो कृष्ण के होंगे, अर्थ तुम्हारे होंगे। तोतों जैसी दशा होगी। तोतों के कोई अर्थ थोड़े ही होते हैं। तोतों को तो जो सिखा दिया उसको दोहराए चले जाते हैं।
मैंने सुना है, किसी दुकानदार के पास एक बहुत अदभुत बिल्ली थी। पिछले जन्म में वह बिल्ली जैन साध्वी रही होगी। लेकिन कुछ छोटे-मोटे पाप किए होंगे। जैसे दंतमंजन किया होगा, या कभी चोरी-चपाटी स्पंज से स्नान कर लिया होगा। कुछ छोटे-मोटे पाप किए होंगे, सो उन पापों के कारण इस जन्म में बिल्ली हुई। मगर व्रत-नियम उपवास भी किए थे, इसलिए विशेष बिल्ली हुई--बड़ी धार्मिक, मांसाहार नहीं करती थी। सामने से चूहे निकलते रहते और वह शांत बैठी रहती। इससे भी बड़ा गुण जो उस बिल्ली में था वह यह कि मनुष्यों की भाषा में बात करती थी और बड़ी ज्ञान-चर्चा करती थी। वह पिछले जन्मों की ज्ञान-चर्चा याद थी, महावीर के वचन याद थे। दुकानदार बिल्ली को अपने पास ही दुकान में बिठाए रखता था। ग्राहक उससे बातें करके मनोरंजन भी करते। इसी मनोरंजन में दुकानदार जितनी उनकी जेब काट सकता था काट लेता था।
एक दिन बिल्ली ने एक चूहे को मार खाया--पुरानी आदत, आखिरी बिल्ली बिल्ली, स्वभाव स्वभाव। जरा दुकानदार इधर-उधर देख रहा था कि एक चूहा पास से निकलता था, भक्तिन ने अपने को सम्हाला तो बहुत लेकिन न सम्हाल पाई। दुकानदार जैन था, यह सहन न कर सका। फिर यह उसकी प्रतिष्ठा का भी सवाल था। उसने पास में ही रखी छड़ी उठाई और लगा बिल्ली को पीटने। चंद ही मिनटों में बिल्ली लहूलुहान हो गई, उसके हाथ-पैर फूल गए, ओंठ और आंखें सूज गईं, पूंछ में भी सूजन आ गई और पेट तो ऐसा फूला कि जैसे उसमें हवा भरी हो।
बिल्ली एक चूहे को खाकर बहुत पछताई। जो भी ग्राहक आता वह उसी को रो-रो
कर कहती, देखो मेरी हालत, पूरा शरीर सूज गया, मात्र एक चूहा खाने के कारण! सम्हलो, अहिंसा से रहो, अहिंसा परमो धर्मः! और तभी टुनटुन कुछ सामान खरीदने आई। इसके पहले कि दुकानदार कुछ कहे बिल्ली ने विस्मय से आंखें फाड़ कर कहा, माताजी, आपने कितने चूहे खाए थे?
बिल्ली और क्या करे? अर्थ तो उसके अपने ही होंगे।
तुम कहते होः "मोरारजी भाई को गीता कंठस्थ है।"
जरूर होगी।
"फिर राजनीति में इतनी उत्सुकता क्यों है?"
वे गीता में से राजनीति निकाल लेंगे। तुम जो निकालना चाहो धर्मशास्त्रों में से वही निकाल लोगे। इसीलिए तो एक-एक धर्मशास्त्र पर कितनी व्याख्याएं होती हैं! गीता पर एक हजार प्रसिद्ध टीकाएं हैं। अप्रसिद्ध टीकाओं की तो गिनती ही मत करो। कृष्ण का तो अर्थ एक ही रहा होगा, एक हजार अर्थ तो कृष्ण के हो ही नहीं सकते। अगर एक हजार अर्थ कृष्ण के रहे हों तो कृष्ण भी पागल थे और अर्जुन भी पागल हो जाता। उनका तो अर्थ सुनिश्चित था। फिर एक हजार अर्थ कैसे निकले?
शंकराचार्य एक अर्थ करते हैं; उसमें से वेदांत ही वेदांत निकलता है, अद्वैत निकलता है। और रामानुजाचार्य बिल्कुल उलटा अर्थ करते हैं। उसमें से द्वैत निकलता है, भक्ति-भाव निकलता है; वेदांत का पता ही नहीं चलता। और

लोकमान्य तिलक ने उसी में से कर्म निकाल लिया। जो तुम्हारी मर्जी, जो तुम्हें करना हो वह निकाल लो।
शास्त्रों से चाहो बंदूकें बना लो, चाहे तलवारें बना लो। शास्त्रों
की क्या क्षमता है तुम्हारे सामने! तुम्हारे हाथ में शास्त्रों की गर्दन है, जैसा दबाओगे वैसा ही शास्त्र बोलेंगे। शास्त्र तो मुर्दा हैं, तुम जीवित हो। शास्त्रों में तो शब्द हैं; शब्दों पर अर्थ की कलम कौन लगाएगा? मैंने सुना है एक रईस, लखनवी रईस, बीमार था बहुत। बीमारी का कारण भी साफ था; रात तीन बजे, चार बजे तक महफिल, शराब, संगीत, वेश्याएं; और फिर सोता दिन भर। चिकित्सकों ने कहा, ऐसे अब नहीं चलेगा। अब तो ठीक समय पर सोओ सांझ, और ठीक सुबह छह बजे उठो, सूरज उगने के पहले। घड़ी से ठीक छह बजे उठ आना है। उसने कहा, ठीक। उसके दरबारी तो बहुत हैरान हुए, उनको भरोसा नहीं था कि यह कर सकेगा, यह छह बजे उठ सकेगा! लेकिन उस रईस ने कहा, घबड़ाओ मत, हर नियम के बाहर निकलने की तरकीब होती है। मेरे कमरे में चारों तरफ काले पर्दे डाल दिए जाएं। जब मैं उठूं तब पर्दे सरकाए जाएं, ताकि मेरे उठने के बाद ही सूरज उगे। और जब मैं उठूं तब घड़ी में छह बजाए जाएं।
अब यह बड़ा मजेदार मामला हो गया। चिकित्सक ने कहा, घड़ी में जब छह बजें
तब उठना। रईस ने कहा कि चलो ठीक। जब मैं उठूं तब घड़ी में छह बजा दिए जाएं, इसमें है क्या मामला! अगर इतने से ही स्वास्थ्य ठीक होता है तो यही कर लेंगे।
आदमी बहुत बेईमान है। तुम गीता में से जो अर्थ निकालना चाहो निकाल लोगे। और जो अर्थ चाहोगे कि नहीं निकलना चाहिए वह उसको तुम इनकार कर दोगे। कृष्ण ने अर्जुन को कहा, युद्ध में जूझ! अब महात्मा गांधी को बड़ी अड़चन थी, क्योंकि वे अहिंसक! और युद्ध में जूझने की शिक्षा! और गीता का पूरा आधार युद्ध है, सारी शिक्षा युद्ध की है। मगर आदमी बड़ा कुशल है। महात्मा गांधी ने तरकीब निकाल ली। तरकीब क्या कि यह युद्ध वास्तविक युद्ध नहीं है, यह तो काल्पनिक युद्ध है। यह युद्ध कौरव और पांडवों के बीच नहीं है, शुभ और अशुभ के बीच है। यह तो आध्यात्मिक युद्ध का प्रतीक है--धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे! यह कोई असली कुरुक्षेत्र की बात नहीं है, यह तो भीतर के धर्मक्षेत्र की बात है।
बस तब काम ठीक हो गया। तब अर्जुन ने खून नहीं गिराया, गर्दनें नहीं काटीं, बात खत्म हो गई। और अगर महात्मा गांधी ही सच हैं तो फिर यह अर्जुन यह जो प्रश्न उठाता है कि अपने बंधु-बांधवों को मारूं, इससे तो बेहतर जंगल चला जाऊं--यह पागल रहा होगा। और कृष्ण समझाते हैं कि इन्हें मारने का तू विचार ही मत कर, ये तो तेरे मारने के पहले ही मारे जा चुके हैं, तू तो निमित्त मात्र है। इनकी मौत तो घट ही चुकी है, तुझे तो सिर्फ धक्का देना है। तू नहीं मारेगा तो कोई और मारेगा। भाग कर तू कहां जाएगा? तू अपने कर्तव्य से च्युत न हो।
लेकिन इन सब बातों पर पानी फेर दिया महात्मा गांधी ने। उन्होंने गीता
का ऐसा अर्थ किया कि जिसमें हिंसा है ही नहीं, जिसमें युद्ध है ही नहीं। युद्ध है तो काल्पनिक है, शुभ और अशुभ के बीच है।
ऐसे ही मोरारजी भाई भी अर्थ निकाल लेंगे। मोरारजी भाई भी कोई छोटे महात्मा नहीं, बड़े महात्मा हैं! अर्थ निकालना बहुत आसान है। गीता को जानना बहुत कठिन है। गीता को मानना बहुत आसान है। क्योंकि गीता को मानने में तुम अप्रत्यक्ष रूप से अपने को ही मानते हो। तुम गीता थोड़े ही मानते हो, तुम अपनी ही छवि गीता में देखते हो और उसी को मानते हो। तुम गीता थोड़े ही पूजते हो, अपने ही अर्थ गीता में रखते हो और उन्हीं को पूजते हो। तुम सब अपनी ही मूर्तियों के सामने सिर झुकाए बैठे हो। तुम अपनी ही पूजा कर रहे हो। और इस सब से अहंकार मजबूत होता है, घना होता है।
स्वभावतः, गीता कंठस्थ है तो अहंकार घना हो जाएगा। कुरान कंठस्थ है
तो अहंकार घना हो जाएगा। ये बातें कंठ की नहीं हैं। कंठ की बातें तोतों पर छोड़ दो। मगर तोतों में भी कुछ अक्ल होती है, इतनी भी अक्ल तुम्हारे तथाकथित पंडितों में नहीं होती।

मैंने सुना है, एक महिला एक तोता खरीद लाई बाजार से। महिला कोई और नहीं, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी। एक तोता खरीद लाई, बाजार में बिक रहा था। बेचने वाले ने कहा कि बाई, तू ले तो जा, मगर तोता जरा गलत जगह से आता है, एक वेश्या के घर से आता है। कुछ अंट-संट बोल दे तो हम पर नाराज मत होना, क्योंकि अंट-संट सुनता रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा, घबड़ाओ मत, अरे जब मुल्ला नसरुद्दीन को सुधार लिया तो इस तोते की क्या बिसात है? एक-दो सप्ताह, तीन सप्ताह में ठिकाने लगा दूंगी।
तीन सप्ताह तोते को ढांक कर रखा कि किसी को पता ही न चले। और तोते को बड़ी ज्ञान की बातें सिखाए जब घर में कोई न रहे। और तोता ज्ञान की बातें दोहराने भी लगा। तीन सप्ताह बाद उसने घोषणा की, पर्दा उठाया। जैसे ही पर्दा उठाया, रोशनी हुई, तोते ने अपनी मालकिन को देखा और बोला, अरे नयी मालकिन! मालकिन बहुत खुश हुई कि तोता बड़ा बुद्धिमान! तभी मुल्ला नसरुद्दीन की लड़कियां कालेज से वापस लौटीं। तोते ने कहा, अरे नयी मालकिन! नयी छोकरियां भी! और तभी मुल्ला नसरुद्दीन घर लौटा। और उसने कहा, अरे नयी मालकिन, नयी छोकरियां, मगर ग्राहक पुराना!
तोतों में भी कुछ अक्ल होती है। मगर तुम्हारे पंडितों में इतनी अक्ल
भी नहीं। पंडित से ज्यादा बुद्धिहीन व्यक्ति खोजना कठिन है। क्योंकि पंडित का भरोसा यह है कि ज्ञान बाहर से भीतर ले जाया जा सकता है। यह बुद्धिमत्ता की आखिरी सीमा से गिर जाना है। इससे ज्यादा नीचे गिरना नहीं हो सकता।
ज्ञान भीतर से आता है, बाहर से नहीं। बाहर से जो आती है बस सूचना मात्र है, शब्द मात्र। ज्ञान ध्यान की उत्पत्ति है, अध्ययन-मनन की नहीं। ज्ञान ध्यान की छाया है। जिसके भीतर ध्यान परिपक्व होता है, उसके भीतर ज्ञान के फल और फूल लगते हैं।
मोरारजी भाई को ध्यान का क्या पता है? दस वर्ष पहले मुझसे पूछा था, कैसे ध्यान करूं? तो मैंने उन्हें ध्यान का मार्ग बताया। उन्होंने कहा कि यह तो बड़ा कठिन है। और अब इस बुढ़ापे में क्या हो सकेगा? मैंने कहा, इस बुढ़ापे में राजनीति हो सकती है, इस बुढ़ापे में प्रधानमंत्री बनने की चेष्टा हो सकती है, और ध्यान नहीं हो सकता? करना न हो तो सब बहाने हैं। जरा सोचो, इस बुढ़ापे में राजनीति की इतनी छीछालेदर हो सकती है, कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है, कोई गर्दन ही ले भागा। कोई जूता चला रहा है, कोई पत्थर मार रहा है, कोई काला झंडा दिखा रहा है, कोई जिंदाबाद कोई मुर्दाबाद कर रहा है। यह सब चल रहा है! यह सब चल सकता है। जेल जाना हो सकता है, उपवास करना हो सकता है पद पाने के लिए! सब तरह के राजनैतिक दांव-पेंच, धोखाधड़ी, बेईमानी, सब हो सकता है। सब तरह की जालसाजियां, शड्यंत्र हो सकते हैं। ध्यान नहीं हो सकता! कि इस वृद्धावस्था में अब जरा मुश्किल होगा, आप जो ध्यान कहते हैं, यह मुझसे न हो सकेगा।
करना न हो... । बड़ा मजा है! जवान से कहो तो वह कहता है, अभी जवान हूं, बुढ़ापे में ध्यान करेंगे। ध्यान इत्यादि तो बुढ़ापे के लिए हैं। कहा ही है शास्त्रों में--पचहत्तर वर्ष के बाद संन्यास, ध्यान, समाधि। और बूढ़े से कहो तो वह कहता है, अब बूढ़े हो गए, अब क्या होगा! और स्वभावतः बच्चों को तो क्षमा करना ही पड़ेगा। बच्चे तो बच्चे हैं, ये क्या ध्यान समझेंगे! बच्चे ध्यान समझ नहीं सकते; जवान कर नहीं सकते, अभी जवान हैं; बूढ़े कर नहीं सकते, क्योंकि बूढ़े हो गए। तो ध्यान करना किसको है? मुर्दों को? मोरारजी भाई देसाई नहीं करेंगे, फिर क्या मुर्दा भाई देसाई करेंगे? कौन करेगा?
लेकिन ज्ञान सस्ता मिल जाता है, ध्यान मंहगा है। ध्यान के लिए कीमत चुकानी पड़ती है--अहंकार की कीमत। और राजनीतिज्ञ अहंकार की कीमत नहीं चुका सकता, उसका तो सारा खेल ही अहंकार है।
और गीता तो यहां सभी को आनी चाहिए। हर राजनीतिज्ञ को कंठस्थ होनी चाहिए। न हो कंठस्थ तो भी कम से कम कुछ तो गीता का पता होना चाहिए। क्योंकि गीता मानने वाला बड़ा वर्ग है, उसका वोट लेना है। तो थोड़े शब्द उछाल देना आना चाहिए धर्मशास्त्रों के। यहां के राजनीतिज्ञ को थोड़े इसलाम के वचन भी

आने चाहिए, थोड़े महावीर के वचन भी, थोड़े बुद्ध के वचन भी, थोड़े गीता, उपनिषद, वेद भी। यह यहां की राजनीति का आवश्यक अंग है। क्योंकि जिनसे वोट लेने हैं उनके अहंकारों को मक्खन लगाने का और कोई उपाय नहीं है। हिंदू से कह दो कि गीता महान ग्रंथ। बस हिंदू खुश हुआ, राजी हुआ तुम से। जैन को कह दो कि महावीर तीर्थंकर, भगवान, अदभुत, ऐसा व्यक्ति कभी हुआ नहीं। और जैन खुश! और मजा यह है कि जैनों ने कृष्ण को नरक में डाला है, क्योंकि महावीर के हिसाब से अगर कृष्ण ने युद्ध करवाया तो महाहिंसा करवाई। और हिंदुओं ने महावीर को किसी शास्त्र में भगवान का अवतार नहीं माना है। मगर राजनीतिज्ञ को क्या लेना-देना है! उसे हिंदू को भी फुसला लेना है, तब हिंदू की खुशामद कर लेता है; जब जैन को फुसलाना है, जैन की खुशामद कर लेता है; जब मुसलमान को फुसलाना है, मुसलमान की खुशामद कर लेता है। वह सब की खुशामद करता फिरता है। उसका सारा धंधा खुशामद का है। उसे अगर सत्ता में जाना है तो सिवाय इसके कोई उपाय नहीं है।
तो उसको तो आना ही चाहिए--अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान! सिर्फ उसको भर न दे। उतना वह भीतर-भीतर कहता रहता है कि भगवान, मुझको भर मत देना। सबको सन्मति देना, ताकि सब मुझे वोट दें। मुझे सन्मति मत देना, नहीं तो मैं संन्यास ले लूं। मुझे सन्मति मत देना। अभी मेरी रोकना। अभी मुझे थोड़ा राज्य कर लेने दो।
इन राजनेताओं की जिंदगी तो देखो। इनके प्रवचन, इनके व्याख्यान, इनके उपदेश--और इनकी जिंदगी!
एक स्कूल में अध्यापक ने छात्रों से कहा, अच्छा, और किसी को कुछ पूछना
तो नहीं है?
एक छात्र खड़ा हुआ। उसने कहा, सर, मुझे पूछना है। यह आपने न जाने क्या लिख दिया है मेरी कापी पर। मैं इसे पढ़ नहीं पा रहा हूं। जरा बता दें कि आपने क्या लिखा है।
अध्यापक क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने कहा, अरे उल्लू के पट्ठे! इतना
भी नहीं पढ़ सकता? साफ तो लिखा है कि सुंदर अक्षर लिखने की आदत डालो।
खुद के अक्षर की किसी को कोई चिंता नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में अकेला ही पढ़ा-लिखा आदमी। तो गांव के लोग उसी से चिट्ठी-पत्री लिखवाते। एक दिन एक आदमी चिट्ठी-पत्री लिखवाने आया। बोलता गया, मुल्ला लिखता गया। जब पूरी चिट्ठी हो गई तो उस गांव के आदमी ने कहा कि भैया, अब जरा पूरी पढ़ कर सुना दो कि कुछ छूट तो नहीं गया। मुल्ला ने कहा, यह मुसीबत की बात है। मेरा काम लिखना है, पढ़ना नहीं। फिर यह गैर-कानूनी भी है। उस आदमी ने कहा, मतलब? उसने कहा, गैर-कानूनी इसलिए कि चिट्ठी मेरे नाम है ही नहीं और मैं पढूं!
गांव का आदमी भी राजी हुआ। उसने कहा, यह बात तो सच है कि चिट्ठी तुम्हारे नाम नहीं। असली बात यह थी कि मुल्ला अपना लिखा हुआ ही पढ़ नहीं सकता है। या अगर पढ़े भी तो बड़ी मुसीबत हो जाती है।
एक और मैंने कहानी सुनी है कि एक दफा और दूसरा आदमी आया। उसने कहा, भैया चिट्ठी लिख दो, बड़ी जरूरी है।
मुल्ला ने कहा, नहीं, मेरे पैर में दर्द है।
अरे, उसने कहा, तुम्हारे पैर में दर्द है तो इससे चिट्ठी लिखने में क्या बाधा आ रही है?
उसने कहा, तुम छोड़ो भैया, मेरे पैर में ज्यादा दर्द है।
पर उसने कहा, चिट्ठी हाथ से लिखनी है। चार लकीरें लिखनी हैं। दो ही लकीरें लिख दो। मगर वह राह देखता होगा।
मुल्ला ने कहा, तुम समझे नहीं जी। जब मैं चिट्ठी लिखता हूं तो फिर मुझे दूसरे गांव पढ़ने भी जाना पड़ता है, और पैर में मेरे दर्द है। मेरा लिखा और पढ़े कौन?
शास्त्र जिन्होंने लिखे हैं, दो तरह के लोग हैं उनमें। एक तो पंडित हैं, जिन्होंने और शास्त्रों के आधार पर शास्त्र लिखे हैं। और एक ध्यानी हैं, जिन्होंने भीतर के शास्त्र के खुल जाने से शास्त्र लिखे हैं। गीता, कुरान, बाइबिल, धम्मपद, ऐसे परम शास्त्र हैं, जो भीतर प्रकाश के हो जाने पर

आविर्भूत होते हैं; इनका इलहाम होता है, इनका अवतरण होता है। ये कोई साधारण रचनाएं नहीं हैं कि तुमने कंठस्थ कर लीं, कि तुम्हें भाषा आती है तो बस तुमने समझा कि सब आ गया।
मोरारजी देसाई को जरूर गीता कंठस्थ होगी, मगर कंठस्थ ही। हृदयस्थ तो
तब हो जब हृदय से उठे। और मजा यह है कि हृदय से तभी गीता उठ सकती है जब बाहर से सीखी गई सारी बातें छोड़ने की सामर्थ्य हो।
श्री रमण को किसी ने पूछा कि मैं बहुत दूर से आया हूं सत्य के संबंध में कुछ सीखने।
रमण ने कहा, अगर सत्य के संबंध में सीखना है तो कहीं और जाओ, और अगर सत्य सीखना हो तो यहां रुको। लेकिन सत्य सीखने की शर्त जानते हो? सत्य सीखने की शर्त यह है कि जो अब तक सीखा है, सब अनसीखा करना होगा।
शास्त्रों से मुक्त होना पड़ता है, तब भीतर का शास्त्र जन्मता है। पांडित्य से मुक्त होना पड़ता है, तब प्रज्ञा की ज्योति जलती है। विचारों से मुक्त होना पड़ता है, तब निर्विचार की निर्धूम शिखा उपलब्ध होती है। मन जब विदा हो जाता है, विलीन हो जाता है, अ-मन की दशा में, उन्मनी दशा में तुम्हारे भीतर जो भी उदघोष होता है वही भगवद्गीता है।
लेकिन शास्त्रों के साथ बड़ी आसानी है। न करो ध्यान, न करो आत्मा की शोध, न करो खोज। पढ़ लो किताब, दोहराते रहो रोज सुबह उठ कर।
और मोरारजी देसाई को आसान, रोज सुबह उठ कर चरखा कात लिया तीन घंटे, पढ़
ली घंटे भर गीता। यंत्रवत चरखा कतता रहता, यंत्रवत गीता कंठस्थ होती रहती। दोहराते-दोहराते चौरासी साल की उम्र हो गई, याद न हो जाए गीता तो क्या हो! मगर उसमें से अर्थ क्या निकलेंगे? उसमें से सुगंध नहीं उठ सकती। उसमें से राजनीति की दुर्गंध ही उठेगी।
एक पंडित बड़ी मुश्किल में पड़ा था। उसकी पंडिताई न चलती थी। गांव में
और नये-नये पंडित आ गए थे और उनकी पंडिताई चल निकली थी। तो मजबूरी में उसे नौकरी करनी पड़ी। एक दिन उसने बड़े रुष्ट स्वर में अपनी मालकिन से कहा, बीबी जी, यह मेरा त्यागपत्र लीजिए, मैं काम छोड़ कर जा रहा हूं।
महिला ने कहा, क्यों? आखिर बात क्या है?
पंडित ने कहा, आपको मालूम होना चाहिए कि मैं कोई छोटा-मोटा नौकर नहीं, पंडित हूं। गीता मुझे कंठस्थ! यह तो भाग्य का मारा कि आपके घर में बुहारी लगानी पड़ रही है। यह कलियुग कि आपके घर में बर्तन मलने पड़ रहे हैं। यह मेरा भाग्य, यह विधाता ने लिखा होगा। लेकिन आदमी मैं ईमानदार हूं। और आप मुझे बेईमान समझती हैं!
महिला तो एकदम हैरान हो गई, उसने कहा कि यह तुम कैसे कह रहे हो कि मैं तुम्हें बेईमान समझती हूं? मेरा तो तुम पर पूरा-पूरा विश्वास है। यह देखो विश्वास का प्रमाण, तिजोड़ी की सारी चाबियां भी यहां अलमारी में पड़ी रहती हैं। मैं घर के बाहर भी जाती हूं तो तिजोड़ी की चाबियां नहीं ले जाती। पंडित ने कहा, पड़ी तो रहती हैं, वह मुझे भी मालूम है। मगर उनमें से एक
भी तिजोड़ी में लगती कहां है?
पांडित्य और सारी ईमानदारी और सारी धार्मिकता, सब ऊपर-ऊपर है। ये सब राम-नाम चदरिया ओढ़ कर बैठ गए लोग हैं। ये सब ऐसे लोग हैं जो सौ-सौ चूहे खाए हज की यात्रा को जा रहे हैं!
कृष्ण वेदांत, सावधान रहना पंडितों से! क्योंकि जितना उन्होंने संसार को भरमाया, भटकाया है, उतना किसी और ने नहीं। बच कर चलना पंडितों से, क्योंकि वे ही लुटेरे हैं, वे ही बटमार हैं। डाकू लूटेंगे तो क्या लूटेंगे? धन, पैसा। लेकिन पंडितों ने तुम्हारी आत्माएं लूट ली हैं। ये कंठस्थ हैं जिनको वेद और पुराण और गीता और कुरान, इनसे जरा बच कर निकलना, इनकी छाया भी तुम पर न पड़े। क्योंकि यही हैं जिनके कारण जगत वेद, कुरान और गीता से खाली हो गया है। यही हैं जिनके कारण अब उपनिषद पैदा नहीं होते। यही हैं जिनके कारण सत्संग के दीये बुझ गए हैं। और अगर कहीं कोई सत्संग का दीया जले तो ये सारे लोग उसे बुझाने के लिए तत्पर हो जाते हैं।
श्री मोरारजी देसाई कितनी चेष्टा में संलग्न हैं कि यह आश्रम बिल्कुल नष्ट हो जाए, बिल्कुल समाप्त हो जाए, यहां कोई एक व्यक्ति न आ सके। उनकी

पूरी चेष्टा यह है कि इतना परेशान करें संन्यासियों को कि मुझे अंततः यह देश छोड़ देना पड़े। इसकी खबरें मेरे पास आती हैं, विश्वस्त सूत्रों से खबरें आती हैं--कि सारी चेष्टा यह है कि किसी भी तरह मैं यह देश छोड़ दूं। क्या अड़चन होती होगी? यहां मैं कोई लोगों को अणु-बम बनाना नहीं सिखा रहा हूं, न लोगों को कोई बंदूक और तलवारों की शिक्षा दी जा रही है, न लोगों को हत्या करने के पाठ पढ़ाए जा रहे हैं। यहां एक और ही ढंग का काम हो रहा है जिससे इनको क्या विरोध हो सकता है? लोग नाच रहे हैं, लोग गा रहे हैं, लोग मस्त हो रहे हैं।
मगर इसी से विरोध है। जितनी मस्ती होगी, जितने लोग आनंदित होंगे, जितने लोगों के भीतर के झरने बहने लगेंगे--उतने ही पंडित-पुरोहितों और राजनीतिज्ञों का प्रभाव कम हो जाएगा। क्योंकि जितना भीतर की रोशनी उपलब्ध होगी, उतने ही तुम बाहर के नेताओं का पीछा छोड़ दोगे।
पंडित नाराज है मुझसे; क्योंकि अगर तुम्हारी प्रज्ञा जग गई तो तुम उसकी क्यों सुनोगे? नेता नाराज है मुझसे; क्योंकि अगर तुम में थोड़ा होश आ गया तो तुम इन अंधे नेताओं के पीछे चलोगे? अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत! तो तुम झंडे उठा-उठा कर मोरारजी भाई देसाई का जय-जयकार करोगे? अगर तुम में थोड़ी भी समझ आ गई, अगर तुम में एक किरण भी फूट गई प्रकाश की, तो पंडित और नेता दोनों गए। इससे घबड़ाहट है। और यह घबड़ाहट नयी नहीं है, बड़ी पुरानी है, सनातन है!
और उनको दूसरा भी डर है कि अगर मैं सही हूं तो उनकी कंठस्थ गीता का क्या होगा? अगर मैं सही हूं तो महावीर और बुद्ध पर वे जो बिना समझे-बूझे वक्तव्य देते रहते हैं उनका क्या होगा? उन वक्तव्यों की क्या कीमत रह जाएगी?
अर्थशास्त्र का एक नियम है कि खोटे सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं; करने की कोशिश तो कम से कम करते ही हैं। यह नियम बिल्कुल साफ-सुथरा है। तुम्हें भी पता होगा। अगर तुम्हारी जेब में दो नोट हैं--एक दस का असली नोट और एक दस का नकली नोट--तो तुम पहले नकली नोट को चलाने की कोशिश करोगे। स्वभावतः, असली तो कभी भी चल जाएगा, पहले नकली को चलाओ। अगर नकली नोट बाजार में बहुत हों तो सभी लोग नकलियों को चलाने की कोशिश में लगे रहते हैं; असली को दबाते हैं। असली तिजोड़ियों में पड़ जाते हैं, नकली बाजार में चलने लगते हैं।
वही हालत सत्य के जगत में भी है। सत्य के असली सिक्के जब भी प्रकट होंगे, नकली सिक्के बहुत मुश्किल में पड़ जाते हैं, क्योंकि उनके चलन का क्या होगा? उनको कौन पूछेगा? उनकी क्या कीमत रह जाएगी? वे असली सिक्कों को हटा देना चाहते हैं, दबा देना चाहते हैं। असली सिक्के की मौजूदगी उनके लिए बहुत प्राणघाती है।
इसलिए गीता तो कंठस्थ है मोरारजी भाई को। रामायण पर प्रवचन देते हैं।
और राजनीति के सारे दांव-पेंच--क्षुद्र, ओछे, अमानवीय--वे सब खेलने को भी राजी हैं! सच पूछो तो यह गीता और रामायण भी उसी राजनीति के बड़े खेल का एक हिस्सा है, उसी शड्यंत्र का एक हिस्सा है। इस देश को धार्मिक होने का भ्रम है। इसलिए इस देश के नेताओं को धर्मग्रंथ कंठस्थ करने पड़ते हैं। जहां जैसा भ्रम हो वहां के राजनेताओं को वही करना पड़ता है।
तुमने ख्याल किया, अमरीका में अमरीकी प्रेसीडेंट को अक्सर दौड़ते हुए, सुबह घूमते हुए, साइकिल चलाते हुए चित्र छपवाने पड़ते हैं, व्यायाम करते हुए... । क्योंकि अमरीका में यह धारणा है कि प्रेसीडेंट को सबल, स्वस्थ, जवान होना चाहिए। तो उसको अपनी जवानी का प्रदर्शन करते रहना पड़ता है। अगर जरा भी लोगों को शक हो जाए कि वह जरा दुर्बल हो गया है या बूढ़ा होने लगा है या उसके हाथ-पैर कंपने लगे हैं, तो उसका पद गया। तो अमरीका में अगर प्रेसीडेंट बीमार हो तो उसकी बीमारी की खबर अखबारों में नहीं छपती। अडोल्फ हिटलर न मालूम कितनी बीमारियों से परेशान था, लेकिन उसके मरने
तक एक बीमारी की खबर जर्मनी में नहीं छपी। चिकित्सकों के मुंह पर सील बंद कर दिए गए थे। उसको बहुत बीमारियां थीं। वह थोड़ा विक्षिप्त भी था। लेकिन

ये सारी बातें छिपाई गईं। क्योंकि अगर जर्मनी में यह पता चल जाए कि नेता बीमार है, तो नेता गया। जर्मनी भरोसा करता है जवानी पर, शक्ति पर।
भारत की हालत उलटी है। यहां जितना आदमी बूढ़ा हो उतना कीमती है। लोग यहां उम्र बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं।
एक साधु के पास बड़ी भीड़ लगी थी। और वह साधु किसी से कह रहा था, बच्चा,
तू जानता है मेरी उम्र कितनी है? सात सौ साल!
एक विदेशी पर्यटक भी भीड़ में खड़ा था, उसे भरोसा न आया--सात सौ साल! उसने सुना तो है कि डेढ़ सौ साल तक के भी लोग कभी-कभी पाए जाते हैं रूस में, जार्जिया में। लेकिन सात सौ साल तो सुना ही नहीं कभी। उसी साधु के पास, जो ज्यादा से ज्यादा सत्तर साल का मालूम होता था, एक पच्चीस साल का जवान भी बैठा है जो उसकी चिलम भरने का काम करता है। उसने उस जवान को पास बुलाया, पांच का नोट हाथ में दिया और कहा कि भाई, तू तो साधु महाराज के पास सदा रहता है, सच-सच बता उम्र कितनी है?
उसने कहा, भाई, मुझसे न पूछो। मैं तो सिर्फ तीन सौ साल से उनके साथ हूं।
इस देश में उम्र को बड़ा करके बताने का प्रभाव है। जितनी ज्यादा उम्र, उतने तुम अनुभवी, उतने ज्ञानी। इस देश में धार्मिकता दिखलानी पड़ेगी। अमरीका में प्रेसीडेंट को टेनिस खेलते हुए, फुटबाल खेलते हुए, हाकी खेलते हुए दिखलाना पड़ता है। इस देश में पूजा करते हुए, शंकराचार्य के चरण-प्रक्षालन करते हुए, गंगा मैया में स्नान करते हुए... । परसों ही मैंने मोरारजी भाई का चित्र देखा, गंगासागर में डुबकी ले रहे हैं!
देश धार्मिक है तो देश के लोगों की आंखों पर पट्टी बांधने के लिए धर्म
का सब तरह का उपचार करना पड़ता है। सब औपचारिकता निभानी पड़ती है--मंदिर जाओ, काशी जाओ। जहां भी जाओ वहां जाकर धर्म को तो श्रद्धा के दो फूल चढ़ा दो, लोग तुम्हारे पीछे रहेंगे।
ये सब गीता और रामायण सरासर धोखे हैं!
गीता और रामायण उनके जीवन में पैदा होती हैं जो समाधि को उपलब्ध होते हैं। समाधि के पहले सब धोखा है। समाधि एकमात्र समाधान है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मेरी होने वाली पत्नी मुझे छोड़ना चाहती है। यह बात ही मुझे कटार की भांति चुभती है। मैं उसे प्रेम करता हूं और जीते जी कभी छोड़ नहीं सकता हूं। वह किसी और के प्रेम में है। कृपया आप ऐसा कुछ करें कि वह मुझे छोड़े नहीं। मैं उसके डर के कारण अपना नाम भी नहीं लिख रहा हूं।

भाई मेरे, योग्यता तो तुम्हारी बिल्कुल पति होने के लायक है! जब अभी
से डर रहे हो--अभी पत्नी पत्नी हुई नहीं, होने वाली है--जब अभी से उससे इतना डर रहे हो तो वह बड़ी नासमझ है जो तुम्हें छोड़ कर जा रही है! मुफ्त के लिए जिंदगी भर के लिए सेवक मिल रहा है, काहे को छोड़ रही है!
लेकिन अगर तुम मेरी सलाह मांगते हो तो मैं तुमसे कहूंगा कि अगर जाती
है छोड़ कर तो चली ही जाने दो। जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए! उसकी बड़ी कृपा है कि वह किसी और के प्रेम में पड़ी है, तो किसी और को ही फंसने दो।
एक मनोवैज्ञानिक पागलखाना देखने गया था। एक आदमी पहले ही पिंजड़े में बंद था, सिर पीट रहा था। और हाथ में एक तस्वीर लिए हुए था, गंदी सी पुरानी तस्वीर, और छाती से लगाता और चिल्लाताः लैला! लैला! मनोवैज्ञानिक ने पूछा सुपरिनटेंडेंट को, इस आदमी को क्या हो गया?
उसने कहा, यह इस लड़की के प्रेम में था। यह इतने प्रेम में था कि यह अपने को मजनूं समझता, उसको लैला समझता। लेकिन वह इसे छोड़ कर चली गई, उसने दूसरे युवक से शादी कर ली। तब से यह पागल हो गया। बस तब से इसका काम ही यह है--सिर पीटना, उसकी तस्वीर छाती से लगाना और लैला-लैला चिल्लाना।
वे आगे बढ़े। दूसरे कटघरे में एक दूसरा आदमी बंद था, वह भी सिर पीट रहा
था और चिल्ला रहा थाः हे भगवान, बचाओ मुझे! बचाओ! मनोवैज्ञानिक ने पूछा, और

इस बेचारे को क्या हो गया? सुपरिनटेंडेंट ने कहा, अब आप न पूछें तो अच्छा, यह वह दूसरा युवक है जिससे उस महिला ने शादी की।
अब तुम मुझसे पूछ रहे हो कि कृपया आप ऐसा कुछ करें कि वह मुझे छोड़े नहीं।
अगर सच में तुम मेरा आशीष चाहते हो तो मैं तो कहूंगा, जाने भी दो। धन्यवादपूर्वक। जब कोई और मुसीबत लेने को तैयार है तो तुम नाहक क्यों अपनी गर्दन फांसी में लगाते हो! और अगर तुम्हें फांसी लगानी ही है तो और फंदे मिल जाएंगे, ऐसी क्या जल्दी है? कोई इसी फंदे में मरने का सोचा है? कहते होः "मेरी होने वाली पत्नी मुझे छोड़ना चाहती है।"
दयावान है। महाकरुणा है उसके हृदय में।
और तुम कहते होः "यह बात ही मुझे कटार की भांति चुभती है।"
यह प्रेम तो नहीं; यह प्रेम के नाम पर कुछ और है। उसे तुमसे प्रेम नहीं; तुम्हें भी उससे प्रेम नहीं, याद रखना। वह कम से कम ईमानदार है कि वह कहती है, उसे तुमसे प्रेम नहीं, किसी और से प्रेम है। उससे भी है या नहीं, अब यह तो वह जब आएगा तब पता चले। लेकिन तुम जो कहते हो कि मुझे उससे प्रेम है, वह झूठ है। क्योंकि प्रेम तो स्वतंत्रता देता है। प्रेम का तो अनिवार्य लक्षण है--बांधता नहीं, मुक्त करता है। अगर वह मुक्त होना चाहती है तो प्रेम मुक्त करेगा। चाहे आंसुओं से भरी हुई विदा क्यों न देनी पड़े, लेकिन प्रेम विदा देगा।
प्रेम पिंजड़ा नहीं बनता, प्रेम आकाश है। ठीक है, तुमने उसे चाहा। लेकिन अगर तुम उसे चाहते हो तो उसकी जो खुशी है वही तुम्हारी खुशी होनी चाहिए। चाह का और क्या अर्थ होता है? चाह का अर्थ--शोषण? चाह का अर्थ-- मालकियत? चाह का अर्थ--उसकी गर्दन पर सवार हो जाना?
चाह का अर्थ होता है उसे मुक्त करो। अगर वह किसी और के साथ ज्यादा खुश
हो सकती है बजाय तुम्हारे साथ, तो ठीक है, ऐसा ही हो। ऐसा ही होने दो। सहयोग करो। प्रेम अगर है तो दूसरे की खुशी अपनी खुशी से ज्यादा मूल्यवान होनी चाहिए। कहो उससे--
चलो इक बार फिर से अजनबी बन जाएं हम दोनों
न मैं तुमसे कोई उम्मीद रखूं दिलनवाजी की
न तुम मेरी तरफ देखो गलतअंदाज नजरों से
न मेरे दिल की धड़कन लड़खड़ाए मेरी बातों से
न जाहिर हो तुम्हारी कशमकश का राज नजरों से
चलो इक बार फिर से अजनबी बन जाएं हम दोनों तुम्हें भी कोई उलझन रोकती है पेश कदमी से मुझे भी लोग कहते हैं कि ये जल्वे पराए हैं मेरे हमराह भी रुसवाइयां हैं मेरे माजी की तुम्हारे साथ भी गुजरी हुई रातों के साए हैं चलो इक बार फिर से अजनबी बन जाएं हम दोनों
तअर्रुफ रोग हो जाए तो उसको भूलना बेहतर
तअल्लुक बोझ बन जाए तो उसको तोड़ना अच्छा
वह अफसाना जिसे तकमील तक लाना न हो मुमकिन
उसे एक खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा
चलो इक बार फिर से अजनबी बन जाएं हम दोनों
प्रेम है तो कितनी ही पीड़ा हो, पीड़ा तुम्हारी समस्या है। लेकिन तुम्हारी पीड़ा के कारण तुम दूसरे को बंधन में मत डालो। जाने दो। मुक्त करो। वह तुम्हारी अनुगृहीत रहेगी। और शायद किसी दिन जानेगी कि तुमने उसे चाहा था और प्रेम किया था। शायद किसी दिन तुम्हारे प्रेम का उसे अनुभव होगा। मगर उसके पैरों में जंजीरें न डालना। जंजीरें डालने वाला प्रेम प्रेम नहीं है।
पहलुए-शाह में यह दुख्तरे-जम्हूर की कब्र
कितने गुमगश्तः फसानों का पता देती है
कितने खूंरेज हकायक से उठाती है नकाब
कितनी कुचली हुई जानों का पता देती है

कैसे मगरूर शहनशाहों की तस्कीं के लिए सालहा-साल हसीनाओं के बाजार लगे
कैसे बहकी हुई नजरों के तअय्युश के लिए सुर्ख महलों में जवां जिस्मों के अंबार लगे कैसे हर शाख से मुंहबंद महकती कलियां नोंच ली जाती थीं तजईने-हरम की खातिर
और मुर्झाके भी आजाद न हो सकती थीं जिल्ले-सुबहान की उल्फत की भरम की खातिर कैसे इक फर्द के ओंठों की जरा सी जुंबिश सर्द कर सकती थी बेलौस वफाओं के चिराग लूट सकती थी दमकते हुए माथों का सुहाग तोड़ सकती थी मये-इश्क से लबरेज अयाग सहमी-सहमी सी फिजाओं में यह वीरां मरकद इतनी खामोश है फरियाद कुनां हो जैसे सर्द शाखों में हवा चीख रही है ऐसे रूहे-तकदीसो-वफा मर्सियाख्वां हो जैसे
तू मेरी जान! मुझे हैरतो-हसरत से न देख
हम में कोई भी जहांनूरो-जहांगीर नहीं
तू मुझे छोड़ के ठुकरा के भी जा सकती है
तेरे हाथों मेरे हाथ हैं, जंजीर नहीं
प्रेम अगर है तो इतनी कहने की सामर्थ्य होनी चाहिए--
तू मुझे छोड़ के ठुकरा के भी जा सकती है
तेरे हाथों मेरे हाथ हैं, जंजीर नहीं
और अगर इतना प्रेम तुम प्रकट कर सको, तो पत्नी मिले या न मिले, तुम्हारे जीवन में प्रेम का एक फूल खिलेगा। पत्नियों के मिलने से ही कहां फूल खिल जाते हैं? नहीं तो घर-घर में प्रेम के फूल खिले होते। लेकिन इतना अगर बड़ा दिल तुम कर सको, इतना उदार अगर दिल तुम कर सको, तो पत्नी न भी मिली तो कोई फिकर नहीं, तुम्हारे जीवन में प्रेम का एक फूल खिलेगा, तुम्हारे जीवन में प्रार्थना की संभावना उमगेगी।
मैं तो यही प्रार्थना कर सकता हूं तुम्हारे लिए, यही आशीष दे सकता हूं
कि तुम्हारा प्रेम बड़ा हो, उदार हो, मुक्तिदायी हो, कि तुम्हारा प्रेम किसी दिन प्रार्थना बने। और ये हैं मौके प्रेम की कसौटी के। ये हैं अवसर चुनौती के। इन अवसरों को जो स्वीकार कर लेता है, उसकी कीमत, उसकी इज्जत परमात्मा की आंखों में बहुत बढ़ जाती है। रोना मत, दुखी मत होना। कसौटी पर कसे जाना है। आग है--गुजरना है, निखरना है। सौभाग्य है यह भी।
और ये जो तुम बातें कर रहे हो कि यह बात ही मुझे कटार की भांति चुभती है। मैं उसे प्रेम करता हूं और जीते जी कभी छोड़ नहीं सकता हूं।
इस तरह की बातें करोगे तो छोटे हो जाओगे। और अगर इस तरह की बातें करते
ही रहे तो वह तुम्हें न भी छोड़ना चाहती होगी तो छोड़ भागेगी। ऐसे आदमी के पास कौन टिकेगा कि जीते जी छोड़ ही नहीं सकते! कि मरोगे कि मारोगे!
नहीं, किसी के पैर की जंजीर नहीं बनना जीवन में। किसी के भी पैर की जंजीर नहीं बनना--न पत्नी की, न भाई की, न बहन की, न बच्चों की, न मित्रों की।
तू मेरी जान! मुझे हैरतो-हसरत से न देख
हम में कोई भी जहांनूरो-जहांगीर नहीं
तू मुझे छोड़ के ठुकरा के भी जा सकती है
तेरे हाथों में मेरे हाथ हैं, जंजीर नहीं

आखिरी सवालः मैं कौन हूं? ओशो, क्या आप बता सकते हैं?

जहां तक मैं समझता हूं--वही सज्जन, जिन्होंने पिछला सवाल पूछा। इससे ज्यादा और क्या बताऊं? मैं कोई ज्योतिषी नहीं। यहां कोई चमत्कार नहीं

करता, कोई ताबीज नहीं निकालता, कोई विभूति नहीं निकालता, कोई स्विस घड़ियां नहीं प्रकट करता। तुम गलत जगह आ गए।
अनुमान करता हूं कि तुम वही सज्जन हो जो डर के मारे नाम नहीं लिख पाए;
अब तुमने दूसरा प्रश्न पूछा कि मैं कौन हूं? यह कोई आत्मिक प्रश्न नहीं है।
एक नवविवाहित जोड़े को उपहार में अनेक सामग्रियां प्राप्त हुईं। उन्हीं उपहारों में एक नयी पिक्चर के फर्स्ट क्लास के दो टिकट भी थे। साथ ही साथ उन टिकटों के साथ एक चिट भी लगी थी कि जरा बताइए कि मैं कौन हूं? पति-पत्नी दोनों ने बहुत सोचा-विचारा, बहुत माथापच्ची की, मगर उन्हें कुछ याद न आया कि आखिर ये टिकट किसने भेजे हैं।
पत्नी बोली, खैर, अब जिसने भी भेजे हों, समय खराब न करो। शो का समय हुआ जाता है। हमें इससे क्या, वैसे भी इस पिक्चर के टिकट आसानी से नहीं मिल रहे हैं। चलो पिक्चर ही देख आएं; मनोरंजन भी हो जाएगा और समय भी कट जाएगा। और सोचना ही है तो फिर बाद में सोच लेंगे कि किसने भेजे।
दोनों जब सिनेमाघर से वापस घर लौटे तो देखा, घर का अधिकांश सामान टेपरिकार्डर, रेडियोग्राम, टेलीविजन, घड़ी, पंखा इत्यादि सब गायब हैं। साथ ही एक दूसरी चिट बीचों-बीच टेबल पर उन्हीं अक्षरों में लिखी रखी है--शायद अब आप पहचान गए होंगे कि मैं कौन हूं।
मैं भी पहचान गया कि आप कौन हैं। आप वही हैं जो होने वाली पत्नी के डर
के मारे अपना नाम नहीं लिखे!
इतना डर क्या? इतना भय क्या? ऐसे भयभीत कहीं जीवन में कोई विकास हो सकता है? छोड़ो भय। और मेरे देखे, जहां प्रेम है वहां भय नहीं होता और जहां भय है वहां प्रेम नहीं होता। भय और प्रेम साथ-साथ नहीं होते। तुम इतने भयभीत हो कि प्रेम क्या खाक होगा! तुम प्रेम से भरो कि भय तिरोहित हो जाए। लेकिन तुमने बड़ी होशियारी की! मुझे धोखा देना आसान नहीं है।
एक पहलवान ने होटल में अपना कोट टांगा, तथा चोरी न चला जाए, इस डर से उस
पर एक पर्ची भी लगा दी कि कृपया कोट न चुराएं! --मुक्केबाजी में विश्व-चैंपियन।
जब खाना खाने के बाद लौटे तो देखा कोट गायब था और दूसरी पर्ची वहां रखी थीः कृपया पीछा न करें! --दौड़ में विश्व-चैंपियन।
तुम्हारी पर्चियां काम न आएंगी। पर्चियों के उत्तर मैं दे सकता हूं।
एक हिप्पी-कट युवक नाई की दुकान पर पहुंचा और उसने मजाक में नाई से पूछा, भाई साहब, क्या कभी आपने किसी गधे की हजामत बनाई है?
नाई ने संजीदगी से कहा, बनाई तो नहीं भइया, मगर बैठो, कोशिश करके देखता हूं।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र तीसरा प्रवचन

प्राण के ओ दीप मेरे

पहला प्रश्नः ओशो, परमात्मा जिनका अनुभव नहीं बना है, उनकी प्रार्थना क्या हो? उनका भजन क्या हो?

आनंद मैत्रेय, परमात्मा अनुभव नहीं तो प्रार्थना संभव नहीं। जिसके पास आंख नहीं उसके पास प्रकाश की क्या धारणा होगी? वह प्रकाश के गीत भी गाना चाहे तो कैसे गाएगा? और जो गाएगा भी तो झूठ होंगे। और जो गाएगा भी तो प्रकाश के नहीं होंगे। यह तो असंभव है।
परमात्मा का अनुभव ही तुम्हारे पोर-पोर में प्रार्थना बन कर उठता है। प्रार्थना परमात्मा को पाने की विधि नहीं है, प्रार्थना परमात्मा को पा लिए गए व्यक्ति की अभिव्यक्ति है। परमात्मा सुवास है। तुम्हारे नासापुट जब उससे भर जाएंगे तो तुम मगन होकर नाचोगे; वह मगनता प्रार्थना है। परमात्मा ऐसे है जैसे आषाढ़ में मेघ घिर गए और मोर नाचे। परमात्मा के मेघ घिरेंगे तुम्हारे चित्ताकाश में, तो तुम्हारे प्राणों के मोर नाचेंगे; वह नृत्य प्रार्थना है। वही नृत्य भजन है।
इसलिए यह तो संभव नहीं है, किसी तरह संभव नहीं है कि तुम परमात्मा के अनुभव के बिना प्रार्थना कर सको, भजन कर सको।
तुम्हें बहुत हैरानी भी होगी, तुम्हें बहुत चिंता भी होगी कि फिर परमात्मा का अनुभव कैसे होगा?
जब तक परमात्मा का अनुभव नहीं है तब तक ध्यान संभव है, प्रार्थना नहीं। ध्यान विधि है, प्रार्थना परिणाम है। ध्यान से परमात्मा का कोई संबंध नहीं है। इसलिए जिन धर्मों ने ध्यान को केंद्र माना उन्होंने परमात्मा की बात ही नहीं उठाई। जैन धर्म, बौद्ध धर्म; इनमें परमात्मा की कोई जगह नहीं है। ऐसा नहीं है कि जिनों ने परमात्मा को नहीं जाना, कि बुद्धों ने परमात्मा को नहीं जाना। जाना, जरूर जाना, मगर उसकी बात उठाने की जरूरत नहीं आई। उनका मार्ग तो ध्यान का था।
ध्यान का संबंध तुमसे है, परमात्मा का संबंध तुमसे अभी नहीं है, तो प्रार्थना का भी तुमसे कोई संबंध नहीं हो सकता। प्रार्थना का संबंध परमात्मा से है, ध्यान का संबंध स्वयं से है। ध्यान का अर्थ है अपने को निखारो। ध्यान का अर्थ है अपने को निर्विचार करो। ध्यान का अर्थ है अपने को शून्य में ले चलो। ध्यान का अर्थ है अपने को मिटाओ, गलाओ, बह जाने दो। ध्यान का अर्थ है तुम न रह जाओ। और जब तुम न रह जाओगे तो परमात्मा की प्रतीति होगी। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होता है।
और आया परमात्मा कि प्रार्थना भी आएगी, जरूर आएगी। प्रार्थना उसकी छाया की तरह आती है। प्रार्थना उसके पैरों की पगध्वनि है। और अगर तुमने अभी प्रार्थना की तो प्रार्थना झूठी होगी। और झूठ से कोई सत्य तक कैसे पहुंचेगा? झूठ से तो और बड़े झूठ ही निष्पन्न होते हैं।
अभी तुमने प्रार्थना की तो विश्वास होगा, श्रद्धा नहीं; मान्यता होगी, प्रतीति नहीं। मान्यता से तुम कैसे जानने तक पहुंचोगे? मान्यता की सीढ़ियां जानने के मंदिर तक जाती ही नहीं। मानने की सीढ़ियां तो और-और अंधविश्वासों में ले जाएंगी। अगर आज तुमने एक बात मानी तो कल तुम्हें और भी बड़ी बात माननी पड़ेगी, परसों और बड़ी बात माननी पड़ेगी।
एक झूठ को सम्हालने के लिए दस झूठ बोलने पड़ते हैं। और एक झूठ को पकड़ रखने के लिए दस झूठों की बैसाखियां इकट्ठी करनी पड़ती हैं, टेकें इकट्ठी करनी पड़ती हैं। परमात्मा अनुभव नहीं तो प्रार्थना तो झूठ होगी। मुंह से दोहरा सकोगे। लेकिन मुंह से दोहराई गई प्रार्थना का क्या मूल्य है? प्राणों से कैसे उठेगी? अंतरात्मा में कैसे जगेगी? तुम्हारा रोआं-रोआं कैसे पुलकित होगा?
यह तो ऐसे ही होगा जैसे कि कोई बिना शराब पीए और डगमगा कर चले। चल सकता
है डगमगा कर। अभिनेता चलते हैं, हाथ में खाली बोतल ले लेते हैं, या पानी

भरी बोतल, लेबल भर शराब का होता है। लड़खड़ाने लगते हैं, मुंह से लार टपकाने लगते हैं, गिर-गिर पड़ते हैं। मगर तुम जानते हो कि सब झूठ! न बोतल में सच्ची शराब है, न शराबी शराब के नशे में है। गिरता है तो भी सम्हल कर गिरता है--कि कहीं चोट न खाए। फिर एक शराबी का गिरना है, वह बात और।
लाओत्सु ने कहा हैः एक बार मैं एक गाड़ी में यात्रा करता था। चार जन थे; तीन तो ठीक-ठाक थे, एक पीए बैठा था, डट कर पी थी। गाड़ी उलट गई। तीन ने तो बड़ी चोट खाईं, मगर उस एक को पता ही नहीं चला। तीनों की तो हड्डी-पसली चकनाचूर हो गई और जब वह चौथा होश में आया तो उसने कहा कि मामला क्या है! लाओत्सु ने कहा, उसे चोट भी नहीं लगी। कारण?
तो लाओत्सु ने एक बहुत अदभुत सिद्धांत उस अनुभव से निकाला। वह सिद्धांत समझने जैसा है। शराबी को चोट नहीं लगी, क्योंकि चोट गिरने से नहीं लगती, लाओत्सु ने कहा। अगर गिरने से लगती होती तो उसको भी लगती। चोट तो बचने के प्रयास से लगती है। जब तुम गिरने लगते हो तो तुम बचने का महत प्रयास करते हो कि गिर न जाओ! अकड़ जाते हो, तनावग्रस्त हो जाते हो; तुम्हारा शरीर विश्राम की दशा भूल जाता है, कड़ा हो जाता है। बचने के लिए तुम लोहे जैसे हो जाते हो। और जब लोहे जैसी चीज जमीन पर गिरेगी तो टूटेगी। और शराबी तो ऐसे गिर जाता है जैसे भुस भरा हुआ थैला गिर गया हो। इसीलिए तो छोटे बच्चे रोज गिरते हैं और हड्डी चकनाचूर नहीं होती। तुम जरा गिर कर देखो।
तो लाओत्सु ने कहा, शराबी को चोट नहीं लगी, इससे एक बात तय हुई कि चोट गिरने से नहीं लगती, चोट बचने की चेष्टा से लगती है।
यह बहुत महत्वपूर्ण बात उसने खोज निकाली। जिनके पास देखने की दृष्टि
है वे हर अनुभव में से कुछ निचोड़ निकाल लेते हैं।
तुम शराबी की तरह बन कर चल सकते हो। और ऐसे ही लोग तुम्हें मंदिरों और मस्जिदों, गिरजों-गुरुद्वारों में मिलेंगे, जो बिना पीए डोल रहे हैं। जिनके डोलना झूठ है, क्योंकि भीतर मस्ती नहीं है। जो डोल रहे हैं--दिखावा है, प्रदर्शन है, तमाशा है। भीतर? भीतर कोई नहीं डोल रहा है। शराब ही नहीं पी अभी।
परमात्मा शराब है। हां, शराब जब पी लोगे तो तुम्हारे जीवन में जो अलमस्ती होगी, प्रार्थना उसी अलमस्ती का एक रंग है। नृत्य होगा, गीत होगा; वे सब उसी अलमस्ती से निकलेंगे। वे उसी अलमस्ती की धाराएं हैं। अलमस्ती की गंगोत्री से प्रार्थना की गंगा पैदा होती है।
मीरा को हुई। लोग सोचते हैं, मीरा ने गा-गा कर परमात्मा को पा लिया। गलत सोचते हैं, बिल्कुल गलत सोचते हैं! उन्हें जीवन का गणित आता ही नहीं। मीरा ने परमात्मा को पाया, इसलिए गाया। गा सकी--इसलिए नहीं कि परमात्मा को गा-गा कर पाया जा सकता है; लेकिन परमात्मा को पा लो तो बिना गाए नहीं रहा जा सकता। अगर गाने से परमात्मा मिलता हो तो लता मंगेशकर को मीरा से पहले मिल जाए। लता मंगेशकर को पीएचड़ी. की उपाधि मिल सकती है, परमात्मा नहीं। यह गीत कंठ तक है। कंठ जिनके सुमधुर हैं, उनको कोकिल-कंठी कहो ठीक। और मीरा का हो सकता है गीत इतना सुमधुर न भी रहा हो, होश कहां! मात्रा-छंद की भूल होती हो, होश कहां!
मीरा ने कहा ही हैः सब लोक लाज खोई! मीरा सड़कों पर नाचने लगी; राजघराने
की महिला थी, रानी थी। प्रियजन-परिजन चिंतित हुए, बदनामी हो रही थी। जहर भेजा। कहानी कहती है कि मीरा जहर पी गई और मरी नहीं। अगर यह बात सच हो कि मीरा जहर पीकर मरी नहीं तो वैसे ही समझ लेना जैसा लाओत्सु का शराबी गाड़ी से गिरा और चोट नहीं खाया। बस वही बात है। पी गई होगी शराब, पी गई होगी जहर, जो भी भेजा होगा पी गई होगी; लेकिन उसे ख्याल ही नहीं होगा, बचाव ही नहीं होगा। बचने वाला तो जा ही चुका; वह अहंकार तो कभी का विदा हो चुका है। अब तो परमात्मा था। और परमात्मा जहर पीए तो मरे? अब तो प्रार्थना थी। और प्रार्थना से तो जहर भी जुड़े तो अमृत हो जाए। और प्रार्थना के साथ तो अंधेरे का भी संग-साथ हो जाए तो रोशन हो जाए।
नहीं, मैं ऐसा कहता हूं कि मीरा ने परमात्मा को पाया, इसलिए गा सकी।

प्रार्थना आत्यंतिक फूल है। पहले वृक्ष तो लगने दो परमात्मा के अनुभव का।
इसलिए आनंद मैत्रेय, तुम पूछते होः "परमात्मा जिनका अनुभव नहीं बना, उनकी प्रार्थना क्या हो? उनका भजन क्या हो?"
उनकी न तो प्रार्थना हो सकती है, न भजन हो सकता है, न होना चाहिए। और चूंकि वही हो रहा है इसलिए पृथ्वी परमात्मा से रिक्त की रिक्त पड़ी है, खाली की खाली पड़ी है। जहां परमात्मा की हरियाली हो सकती थी वहां थोथे पांडित्य, थोथे मंदिर-मस्जिदों, कोरी बकवास का रेगिस्तान फैला हुआ है। और कारण? सबसे बड़ा कारण यही है कि हमने प्रार्थना को पहले रख लिया है
और परमात्मा को पीछे। हम छाया को पहले रख लिए हैं और मूल को पीछे। और छाया को पकड़ने चले हैं और मूल पकड़ में आता नहीं।
स्वामी राम ने एक संस्मरण लिखा कि मैं भीख मांगता एक द्वार के सामने जाकर खड़ा हुआ था। इसके पहले कि मैं भीख मांगूं, सुबह थी सर्द, धूप में घर का बच्चा खेल रहा था और अपनी छाया को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। झपट्टा मारता था अपनी छाया पर और छाया पकड़ में नहीं आती थी तो रोता था, चिल्लाता था, फिर झपट्टा मारता था। उसकी मां उसे बहुत समझा रही थी कि बेटा, छाया पकड़ में नहीं आती! मगर वह मानता नहीं था। छाया सामने दिखाई पड़ रही, पकड़ में क्यों नहीं आएगी! यह रही हाथ भर की दूरी पर। तो फिर सरकता, फिर पकड़ने की कोशिश करता। लेकिन तुम जितने सरकोगे, छाया भी सरक जाती।
राम हंसने लगे। राम ने उस स्त्री को कहा, यह तेरे वश की बात नहीं, यह हमारा धंधा है। यह तू न समझा सकेगी। क्या मैं अंदर आ सकता हूं? क्या मैं समझा सकता हूं इस बच्चे को? यही हमारा धंधा है, बच्चों को समझाना ही हमारा धंधा है। और यही हमारा काम है और यही हमारा प्रश्न है।
मां तो थक गई थी। उसने कहा, जरूर आइए, भीतर आइए, स्वागत है! इसको समझाइए, रो रहा है, परेशान हो रहा है। सुबह से मुझे भी परेशान किए है, काम भी नहीं करने देता। छाया पकड़ना चाहता है! छाया कहीं पकड़ी जाती है?
राम ने कहा, पकड़ी जाती है, पकड़ने का ढंग होता है। बच्चे का हाथ लिया और खुद बच्चे के सिर पर रख दिया। इधर बच्चे का हाथ सिर पर गया उधर छाया भी हाथ की पकड़ में आ गई। बच्चा खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहा कि मुझे पता था, जरूर कोई तरकीब होगी।
अपने को पकड़ने से छाया पकड़ में आ गई। मूल को पकड़ा तो छाया पकड़ में आ गई।
राम ने ठीक कहाः यही मेरा धंधा है। यही मैं तुमसे कहता हूंः यही मेरा धंधा है। तुम ध्यान करो। ध्यान से स्वयं पकड़ में आ जाओगे। और जिसने स्वयं को पकड़ लिया उसके लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। फिर परमात्मा सहज ही अनुभव बनता है।
परमात्मा है क्या? तुम्हारी निर-अहंकार भाव की दशा का नाम! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं। परमात्मा कोई आकाश में स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान जगत का शासक नहीं। परमात्मा है तुम्हारी वह परम अनुभूति, जब अहंकार की जरा सी भी मात्रा शेष नहीं रह जाती, होमियोपैथिक मात्रा भी शेष नहीं रह जाती; जब अहंकार की लकीर भी शेष नहीं रह जाती; जब अहंकार कहीं भी मौजूद नहीं रह जाता।
तुमने देखा, शुद्ध कांच हो तो उसकी छाया नहीं बनती। सारी दुनिया के पुराणों में ऐसी कहानियां हैं कि आकाश में देवता चलते हैं तो उनकी छाया नहीं बनती। वे कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं, अर्थपूर्ण हैं। नहीं कि कहीं कोई स्वर्ग है और कहीं कोई देवता चलते हैं; बल्कि पुराण तो कहानियों के माध्यम से सत्यों को कहते हैं। देवता वह, जो इतना शुद्ध हो गया है, जिसका अहंकार इतना गल गया है कि जिसके भीतर जरा भी खोट नहीं रह गई मैं की। वही देवता। वही भगवत्ता को उपलब्ध। उसकी छाया नहीं बनती। शुद्धि की छाया नहीं बनती। किरणें आर-पार हो जाती हैं, बीच में कोई रुकावट ही नहीं पड़ती।
जिस दिन तुम्हारे आर-पार परमात्मा ऐसे बहने लगता है जैसे वृक्षों में
से हवा बहती है और पहाड़ों में से गंगा बहती है; जिस दिन तुम्हारे भीतर कोई अवरोध नहीं रहता, कोई चट्टान नहीं रहती, तुम परमात्मा को आर-पार जाने देते

हो, आने देते हो; जिस दिन जीवन-ऊर्जा तुम्हारे भीतर लहरें लेती है और तुम्हारी तरफ से कोई रुकावट, कोई व्यवधान नहीं होता--उस परम अनुभूति का नाम परमात्मा है। कहो निर्वाण, कहो मोक्ष, कैवल्य, जो तुम्हारी मर्जी हो कहो। परमात्मा शब्द में मत उलझ जाना। परमात्मा शब्द से ऐसी भ्रांति होती है कि कोई व्यक्ति। लेकिन तुम जरा शब्द पर गौर करो। परमात्मा का अर्थ व्यक्ति नहीं है--परम आत्मा। तुम्हारी आत्मा की परम शुद्ध अवस्था।
कैसे तुम्हारी आत्मा शुद्ध हो, यह पूछो। प्रार्थना कैसे हो, यह मत पूछो। यह मत पूछो कि फूल कैसे उगें; यह पूछो कि बीज कैसे बोए जाएं। यह मत पूछो कि फूलों में सुगंध कैसे आएगी; यह पूछो कि पौधे कैसे सम्हाले जाएं। तुम बीज बोओ, तुम खाद डालो, तुम पौधे सम्हालो, तुम बागुड़ लगाओ--फूल तो जब आने हैं समय पर आ जाएंगे, तुम उनकी चिंता ही छोड़ दो। कलियां तो जब खिलनी हैं खिल जाएंगी; तुम जबरदस्ती कलियों को खोलने की कोशिश मत करना। कहीं असमय में कलियां खोल लीं तो फूल तो खुल जाएगा मगर सुगंध उपलब्ध न होगी। सुगंध को पकने के लिए समय चाहिए।
प्रार्थना तो तुम्हारे प्राणों की पकी हुई सुगंध है। जब तुम्हारे प्राणों का कमल खुलता है सहजता से तो प्रार्थना उठती है। प्रार्थना परिपूर्णता है। प्रार्थना घर लौट आई आत्मा का आनंद है, अहोभाव है।
इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता कि प्रार्थना सीखो। मैं तुमसे कहता हूं, ध्यान सीखो। और ध्यान की दिशा बिल्कुल अलग है।
ऐसा समझो, तुम चिकित्सक के पास जाते हो, तुम बीमार हो। तुम उससे यह नहीं कहते कि मुझे स्वास्थ्य की टिकियाएं दे दें, मुझे ऐसी दवा दे दें कि जिससे मैं तत्क्षण स्वस्थ हो जाऊं। क्योंकि स्वास्थ्य की कोई दवा होती ही नहीं। तुम उससे कहते हो कि मेरी बीमारी का निदान करें, पहचानें कि मैं किस बीमारी से परेशान हूं और मुझे ऐसी दवा दें कि बीमारी कट जाए। हालांकि जब बीमारी कट जाती है तो जो शेष रह जाता है उसका नाम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की कोई दवा नहीं होती, दवा बीमारी की होती है।
अहंकार बीमारी है; ध्यान उसकी दवा है, औषधि है। ध्यान से अहंकार कट जाएगा, फिर जो शेष रह जाता है वह परमात्मा है, वह प्रार्थना है। फिर जरूर तुम गाओगे। जरूर तुम्हारे कंठ से कोयल फूटेगी, पपीहा बोलेगा। जरूर तुम्हारे प्राणों से उपनिषद जगेंगे, कुरान अवतरित होगी। मगर यह सब अपने से होता है। ध्यान मनुष्य के हाथ के भीतर है; प्रार्थना प्रसाद है। ध्यान प्रयास है; प्रार्थना प्रसाद है।
प्राण के ओ दीप मेरे!
ज्योति है कर्तव्य तेरा;
स्नेह है अधिकार तेरा।
पर, असंयत स्नेह-भिक्षा
तू न घर-घर मांगने जा!
स्नेह पाता पात्र
अपनी परिधि में चुपचाप,
अपने आप।
भिक्षा मत मांगो। प्रार्थना के लिए झोली मत फैलाओ। मंदिरों-मस्जिदों में चढ़ौती मत चढ़ाओ।
प्राण के ओ दीप मेरे!
ज्योति है कर्तव्य तेरा;
स्नेह है अधिकार तेरा।
पर, असंयत स्नेह-भिक्षा
तू न घर-घर मांगने जा!
स्नेह पाता पात्र
अपनी परिधि में चुपचाप,
अपने आप।
मौन से, एकांत में जो शांत, अविचलित, अविभक्त
चिरविश्वास का फल,

एक भी लोचन न तेरी ओर होगा।
पूर्णता, कृतकृत्य, सार्थक विनय लेकर
और निज अस्तित्व की ले मौन लघुता,
मग्न विस्मृति में, उपेक्षा में जगत की,
शांति से सोना, सफल होकर, सवेरे!
प्राण के ओ दीप मेरे!
दीया तुम्हारे भीतर है, उसे खोजो। मत टटोलो कहीं और। दीया तुम्हारे भीतर है। परदे हटाओ। विचारों के परदे हैं, स्मृतियों के परदे हैं, कल्पनाओं-कामनाओं के परदे हैं। परदे हटाओ! परदों में छिपी है ज्योति। और एक बार ये सारे परदे हट जाएं, तो इन सारे परदों के इकट्ठे होने का नाम अहंकार है, ये परदे गए तो अहंकार गया।
और चिंता न करो, अगर छोटी-छोटी किरण भी फूटती हो शुरू में तो घबड़ाना मत
और साहस मत खो देना।
यत्न से तू स्नेह को अपने संजोकर,
वर्तिका की नोक से उत्सर्ग करके
ज्योति-किरणों का, भले लघु हों, निरंतर
तिमिर पर आघात कर, कर साधना यह।
अभी तो ध्यान साधो। प्रार्थना आएगी समय पर। जब वसंत आएगा, प्रार्थना आएगी, फूल खिलेंगे। अभी तो अपने को जगाओ।
पूर्णता वह मुक्तिका होगी जगत की,
ज्योति-प्लावन में दिवाकर के सभी जब
डूब जाएगा तिमिर का, रात का।
फिर भले ही छोड़कर
पतवार अपनी साधना की,
प्राप्त कर निर्वाण, तू भी डूब जाना
दिवस के उस ज्योति पारावार में।
तब तक संघर्ष करो। तब तक साधना करो। तब तक ध्यान को प्रज्वलित करो। जब ध्यान का दीया जल जाए तो छोड़ देना उसे भी ज्योति के उस असीम पारावार में। प्राप्त कर निर्वाण, तू भी डूब जाना
ज्योति के उस पारावार में
नयन सब तब कर उठेंगे वंदनाएं
भुवनभास्कर के महत्तम तेज की!
यह समझना। तब तुम्हारा दीया डूबने लगेगा उस महाज्योति में, तो जो भी देख सकेंगे, जो भी अनुभव कर सकेंगे...
नयन सब तब कर उठेंगे वंदनाएं
भुवनभास्कर के महत्तम तेज की;
एक भी लोचन न तेरी ओर होगा।
तुम तो होओगे ही नहीं। तुम्हारा अहंकार तो पहले ही गया। तुम्हारी तरफ
तो एक भी आंख न उठेगी।
इसीलिए तो हमने बुद्धों को भगवान कहा। बुद्ध तो मिट गए, अब उनकी तरफ
तो आंख भी नहीं उठती। कांच इतना शुद्ध हो गया कि अब छाया भी नहीं बनती। अब तो उनमें जो भी देखने जाएगा, भगवान को ही पाएगा। उस क्षण भुवनभास्कर के महत्तम तेज की प्रशंसाएं होंगी, वंदनाएं होंगी।
पूर्णता, कृतकृत्य, सार्थक विनय लेकर
और निज अस्तित्व की ले मौन लघुता,
मग्न विस्मृति में, उपेक्षा में जगत की,
शांति से सोना, सफल होकर, सवेरे!
प्राण के ओ दीप मेरे!
ज्योति है कर्तव्य तेरा;
स्नेह है अधिकार तेरा।
पर, असंयत स्नेह-भिक्षा
तू न घर-घर मांगने जा!
स्नेह पाता पात्र

अपनी परिधि में चुपचाप
अपने आप।

दूसरा प्रश्नः ओशो, चार्वाक-दर्शन की ग्रंथ-संपदा को क्यों नष्ट किया गया? चार्वाक के बारे में आपके क्या विचार हैं?

वैराले, चार्वाक-दर्शन की ग्रंथ-संपदा खतरनाक थी पंडित-पुरोहितों के लिए। उनकी मृत्यु थी उसमें छिपी। अपने को बचाने के लिए उसे नष्ट करना पड़ा। चार्वाक ग्रंथ-संपदा नास्तिकता की आत्यंतिक अभिव्यक्ति थी। और नास्तिकता की आत्यंतिक अभिव्यक्ति को परम आस्तिक ही आलिंगन कर सकता है, छोटे-मोटे, झूठे-मूठे आस्तिक नहीं। झूठे-मूठे आस्तिक तो घबड़ा जाएंगे, उनके तो पैर के नीचे की जमीन खिसक जाएगी।
ये झूठे आस्तिकों के ग्रंथ तुमसे कहते हैं कि अगर कोई ईश्वर के खिलाफ बोले तो कानों में अंगुली डाल लेना। कहीं ईश्वर के विपरीत कोई वचन सुनना मत।
क्यों? क्योंकि तुम्हारा ईश्वर बड़ा कच्चा। तुम्हारी मान्यता बड़ी थोथी। तुम्हें डर है कि कहीं ईश्वर के विपरीत कोई कुछ बोले और मेरा संदेह न जग जाए! संदेह तो है ही तुम्हारे भीतर, कोई उकसा न दे।
लेकिन कोई उकसाए या न उकसाए, अगर संदेह भीतर है तो भीतर है। अच्छा तो यही होगा कि कोई उकसा दे, ताकि तुम्हें पता चल जाए। तुम धन्यवाद करना उसका कि उसने तुम्हारे संदेह को तुम्हारे सामने ला दिया। दुश्मन सामने हो तो शुभ, दुश्मन पीछे छिपा हो तो खतरनाक, ज्यादा खतरनाक!
फिर नास्तिकता आस्तिकता की सीढ़ी है। बिना नास्तिक हुए इस दुनिया में कोई ठीक-ठीक आस्तिक न कभी हुआ है, न हो सकता है। यह तो नास्तिक की ही सामर्थ्य है कि एक दिन आस्तिक हो। जिसने नहीं कहने की कला ही नहीं सीखी, उसे हां कहने का राज कभी समझ में न आएगा। जो कांटों से परिचित नहीं है, फूल से उसकी पहचान नहीं होगी। और जिसने रात नहीं देखी, सुबह का क्या स्वागत करेगा?
लेकिन पंडित और पुरोहित झूठी आस्तिकता पर जी रहे हैं। उनका सारा व्यवसाय झूठी आस्तिकता पर ठहरा हुआ है। झूठी आस्तिकता से मेरा अर्थ है-- मानी हुई आस्तिकता। तुम्हें पता तो नहीं है, लोग कहते हैं, सुना है, तो मान लिया है। मां-बाप कहते हैं, परिवार कहता है, समाज कहता है, शिक्षक कहते हैं, भीड़-भाड़ कहती है। सदियों से बात कही जा रही है सो मान लिया है। जो लोग कहते हैं वही तुम माने बैठे हो। तुमने स्वयं तो कुछ जाना नहीं है। तुम्हारा अपना तो कोई अनुभव नहीं है।
मजे की बात तो यह है, तुम्हारा संदेह स्वाभाविक है और तुम्हारी श्रद्धा उधार। हर छोटा बच्चा संदेह लेकर पैदा होता है। इसलिए छोटे बच्चे इतने प्रश्न पूछते हैं कि तुम्हें बेचैन कर देते हैं। प्रश्नों से प्रश्न उठाए जाते हैं। तुम लाख उनको कहो कि बड़े होकर सब समझ में आ जाएगा, मगर वे फिर-फिर प्रश्न उठाते हैं। जो चीज दिखाई पड़ती है उसी से प्रश्न उठाते हैं। छोटे बच्चे ऐसे प्रश्न उठाते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान उनका उत्तर न दे सकें।
संदेह प्रत्येक बच्चे के प्राण में जन्म के साथ आता है। परमात्मा ने संदेह की संपदा दी है। जरूर इसमें कुछ राज होगा। संदेह बीज है, इसी में छिपा हुआ गूदा है श्रद्धा का। संदेह खोल है, यह गल जाए भूमि में तो इसी में से अंकुर निकले, अंकुरण होगा। इसी में से विकास होगा श्रद्धा का। संदेह श्रद्धा का दुश्मन नहीं है। लेकिन साधारणतया लोग समझते हैं संदेह श्रद्धा का दुश्मन है; इसलिए संदेह मत करो, श्रद्धा करो।
तो तुम्हारी श्रद्धा नपुंसक होगी। जिसने संदेह नहीं किया और श्रद्धा
कर ली, उसकी श्रद्धा ऊपर-ऊपर है, लीपापोती है। जैसे चेहरे पर कोई रंग लगा लिया। ऐसे ही जैसे किसी नीग्रो के ऊपर तुम सफेद पेंट कर दो, तो वे गोरे हो गए! या किसी गोरे के ऊपर कालिख पोत दो, कोलतार पोत दो, तो वे काले हो गए! बस ऐसी तुम्हारी श्रद्धा हैः भीतर संदेह, ऊपर एक मुखौटा लगा लिया--हिंदू हो

गए, मुसलमान हो गए, ईसाई हो गए--और बड़े अकड़ कर चलने लगे! पांच दफे नमाज पढ़ने लगे, कि कुरान कंठस्थ कर लिया, कि गीता याद कर ली, कि दोहराने लगे गायत्री, नमोकार, हो गए तोते और सोचने लगे कि पा ली श्रद्धा। ऐसे नहीं मिलेगी श्रद्धा। यह लंगड़ी है श्रद्धा। इसमें कोई प्राण नहीं; इसमें श्वास नहीं चलती; इसमें हृदय नहीं धड़कता।
श्रद्धा मंहगा सौदा है। संदेह की लंबी यात्राओं से उपलब्ध होती है। संदेह इतना करता है जो कि संदेह पर सब दांव पर लगा देता है, उसको श्रद्धा उपलब्ध होती है। संदेह करते-करते एक क्षण ऐसा आता है कि संदेह स्वयं पर ही संदेह बन जाता है; वह संदेह की पराकाष्ठा है--संदेह पर संदेह। और जब संदेह स्वयं पर संदेह बन जाता है तो आत्महत्या हो जाती है। संदेह आत्मघात कर लेता है, फांसी लगा लेता है। और जहां संदेह तिरोहित हो जाता है आत्मघात करके, अपने पर ही संदेह करके जहां संदेह मिट जाता है, वहां जो शेष रह जाता है, वह निरभ्र आकाश, वह तारों से मंडित ज्योतिर्मय आकाश, वही श्रद्धा है! तुम पूछते हो वैरालेः "चार्वाक-दर्शन की ग्रंथ-संपदा को क्यों नष्ट किया गया?"
पंडित-पुरोहित न करते तो क्या करते! क्योंकि पंडित-पुरोहितों का तो पूरा व्यवसाय झूठी आस्तिकता पर है। और अगर चार्वाक सही है तो झूठी आस्तिकता तो खंड-खंड हो जाएगी। इसकी तो जड़ें कट जाएंगी। इन मंदिरों में कौन जाए? मस्जिदों में कौन जाए? ये यज्ञ-हवन कौन करवाए? ये करोड़ों रुपये कौन मूढ़ता से फूंके यज्ञों में? ये हवनकुंड कौन खुदवाए? ये थोथे पंडित-पुजारियों की लंबी जमात को कौन पाले, कौन पोसे? ये लाखों आवारा तथाकथित संन्यासी, साधु, मुनि, इनका बोझ कौन ढोए? चार्वाक ग्रंथ-संपदा को नष्ट करके ही यह धंधा बचाया जा सकता था।
हम कहते हैं कि यह देश बड़ा उदार है। इतना उदार नहीं जितना हम कहते हैं। इसकी उदारता भी बड़ी थोथी और ऊपरी है; भीतर बहुत अनुदार है। यूनान में एपिक्युरस के ग्रंथ नष्ट नहीं किए गए। एपिक्युरस यूनान का चार्वाक है। उसकी ग्रंथ-संपदा बचाई गई। यूनानियों ने ज्यादा सम्मान दिया। लेकिन इस देश ने तो बहुत सा कुछ नष्ट किया है। और फिर भी हम अकड़ कर बैठे रहते हैं इस भाव से कि हम बड़े उदार हैं, बड़े सहिष्णु हैं! अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान! यह कहते रहते हैं और छुरी पर धार रखते रहते हैं। और जरा ही मौका आ जाए तो अल्लाह-ईश्वर को ऐसा लड़वाते हैं! फिर चाहे वे अलीगढ़ में लड़ें, चाहे हैदराबाद में--जहां लड़वाओ, अल्लाह-ईश्वर लड़ने को तैयार हैं। इस देश में जितना पाखंड है शायद पृथ्वी के किसी और देश में नहीं है।
और कारण है, क्योंकि इस देश में जितनी पंडित-पुरोहितों की लंबी परंपरा है उतनी दुनिया में कहीं और नहीं।
चार्वाक ने कहा क्या? पहली तो बात ख्याल रखना, चार्वाक कोई व्यक्ति का नाम नहीं है, चार्वाक पूरी दर्शन-परंपरा का नाम है--नास्तिकता का। यह शब्द बड़ा प्यारा है। हालांकि पंडितों ने इसके भी बड़े गलत अर्थ किए। चार्वाक बनता है चारु-वाक से। चार्वाक का अर्थ होता है--मधुर वचन वाले लोग, जिनके वचन बड़े मधुर थे। और चार्वाकों ने बड़ी मधुर बात कही थी। चार्वाकों ने कहा थाः यही पृथ्वी सब कुछ है, कहीं कोई और स्वर्ग नहीं। यही जीवन सब कुछ है, कहीं कोई और जीवन नहीं। इसे भोगो! इसे आनंद-उत्सव बनाओ! नाचो, गाओ! इसके पार कुछ भी नहीं है। और कोई परमात्मा नहीं है, यही जीवन सब कुछ है।
बड़ी मीठी बात कही थी। चारु-वाक का अर्थ होता है--मधुर, मिष्ठ संदेश देने वाले लोग। दूसरा नाम इस दर्शन का है--लोकायत। लोकायत का भी अर्थ होता है--जो लोक को पसंद पड़ा; जो अनंत-अनंत लोगों की समझ में आया।
घबड़ा गए होंगे पंडित-पुरोहित कि अगर लोगों की बात यह समझ में आ जाए कि कोई परलोक नहीं है। तो पंडित तो परलोक के आधार से जीता है। पंडित तुम्हारा शोषण करता है परलोक के आधार पर। वह कहता है, यहां तुम मुझे दो, वहां परमात्मा तुम्हें देगा। वह कहता है, यहां तुम एक दोगे, स्वर्ग में करोड़ गुना पाओगे। और यहां किसको दो? ब्राह्मण को दो! यहां पंडित को दो। यहां ब्राह्मण की पूजा करो। यहां उसके चरणों में सिर रखो। क्योंकि उसका सीधा संबंध है परमात्मा से, सिफारिश कर देगा। वह तुम्हारा नाम पहुंचवा देगा कि

इनका जरा ख्याल रखना--वी.वी.आई.पी.। बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं ये जो आ रहे हैं, इन्होंने करोड़ों रुपये लगवा कर यज्ञ करवाया था।
और कैसी-कैसी मूढ़ताएं पंडित ने करवाईं! अश्वमेध करवाए जिनमें घोड़े मारे जाते। और आज जो पंडित और पुजारी गऊ-हत्या रोकने के लिए शोरगुल मचा रहे हैं, आचार्य विनोबा भावे, जो गऊ-हत्या के लिए रुकावट हो जाए इसके लिए आमरण अनशन पर उतर गए थे, इन सब से कोई पूछे कि तुम्हारी परंपरा कुछ और ही कहती है, यहां गऊमेध यज्ञ भी होते थे! यहां गऊएं भी यज्ञ में मारी जाती थीं। और इतना ही नहीं, यहां नरमेध यज्ञों की भी चर्चा है, जहां मनुष्य भी मारे जाते थे।
पंडितों ने, पुरोहितों ने मनुष्य से क्या-क्या नहीं करवा लिया है! सब करवा लिए, सब पाप--इस आशा में कि परलोक में पुण्य मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, स्वर्ग की अप्सराएं मिलेंगी। कल्पवृक्ष के नीचे बैठ कर फिर आनंद ही आनंद है।
तो एक तो पंडित-पुरोहित ने शोषण किया। चार्वाक की बात अगर फैलती तो यह शोषण बंद हो जाता। दूसरे, पंडित-पुरोहित ने एक और बड़ा काम किया। उसने इस जगत में जो शोषण चलता है, उसको सुरक्षा दी। उसने कहा, यह तुम्हारे कर्मों का फल है। तुम अगर गरीब हो तो इसलिए नहीं कि अमीर तुम्हें चूस रहे हैं; तुम अगर गरीब हो तो इसलिए कि पिछले जन्म में तुमने पाप किए थे। और अमीर इसलिए अमीर नहीं है कि वह शोषण कर रहा है, बल्कि इसलिए अमीर है कि उसने पिछले जन्मों में पुण्य किए थे। तो पंडित-पुरोहित अमीरों का रक्षक हो गया, गरीबों का भक्षक हो गया। इस देश में क्रांति नहीं होने दी उसने। यह अकेला देश है जहां पांच हजार साल में कोई क्रांति नहीं हुई! कौन रोक सका क्रांति को इस देश में? इतने गरीब देश में, इतने दीन देश में कौन इन दरिद्रों को रोक सका? कैसी इनको अफीम पिलाई गई? बड़े-बड़े सिद्धांतों के जाल--पिछला जन्म!
अब यह जरा मजा देखना। अगला जन्म लोभ के लिए कि तुम्हें बांधे रखा जाए, तुम्हारी लार टपकती रहे। और पिछला जन्म तुम्हारे यहां संतुष्ट रहने के लिए कि जो भी है हालत संतुष्ट रहो। इसमें जरा भी बेचैनी जाहिर करोगे, अगला जन्म भी बिगड़ जाएगा। यह तो बिगड़ ही गया, इसके तो सुधरने का अब कोई उपाय है नहीं; अब अगर शांति रखी, शोरगुल न मचाया, बगावत न की, विरोध न किया, तो अगला सुधर जाएगा। अगले की आशा में इसको भी सह लो। और पीछे पाप किए थे इसलिए दुख भोग रहे हो। कोई तुम्हें दुख दे नहीं रहा है, तुम्हारे ही पापों का दुख भोग रहे हो। और धनी, शक्तिशाली, राजे-महाराजे, वे पिछले जन्मों का पुण्य भोग रहे हैं।
तो यह बात न्यस्त स्वार्थों के भी पक्ष में थी। चार्वाक दोनों ही स्थितियों को तोड़ देने को तैयार हो गया था--न कोई पिछला जन्म है, न कोई अगला जन्म। यह तो बड़ी खतरनाक बात थी। अगर पिछला जन्म नहीं है तो फिर क्रांति होकर रहेगी। फिर तुम गरीब को कैसे जहर पिला कर सुलाओगे? कैसे उसे अफीम खिलाओगे? फिर कैसे तुम उसे सांत्वना दोगे? फिर तुम उसके दुख की क्या व्याख्या करोगे? अगर पिछला कोई जन्म नहीं है तो बात खत्म हो गई, फिर दुख है तो यहां है और सुख है तो यहां है। और अगला भी कोई जन्म नहीं है। तो पंडित-पुजारी किस आधार पर शोषण करेगा!
इसलिए पंडितों-पुजारियों, धनियों, राजाओं-महाराजाओं सब के बीच एक सांठ-गांठ हो गई, एक शड्यंत्र हो गया। उस शड्यंत्र ने मिल कर चार्वाक-दर्शन की सारी ग्रंथ-संपदा को नष्ट कर दिया।
यह भारत का एक अति दुर्भाग्यपूर्ण क्षण था। क्योंकि अगर चार्वाक की ग्रंथ-संपदा शेष रहती तो जो विज्ञान पश्चिम में पैदा हुआ वह भारत में पैदा होता। उसे पश्चिम में पैदा होने की कोई जरूरत नहीं थी। क्योंकि हम पश्चिम से बहुत पहले भौतिकवादी दृष्टि को समझने में समर्थ हो गए थे। चार्वाक ने द्वार खोल दिए थे प्रकृति के। परलोक समाप्त होता है तो प्रकृति के द्वार खुलते हैं। हमने आइंस्टीन पैदा किए होते, हमने डार्विन पैदा किए होते। और हम केवल कचरा-कूड़ा पैदा कर पाए। हम न डार्विन पैदा कर पाए, न कैपलर,
न गैलीलियो, न आइंस्टीन। हम ये महत्वपूर्ण व्यक्ति पैदा नहीं कर पाए। अगर

चार्वाक की छाया थोड़ी बनी रहती तो उस छाया में ये सारे पौधे पनपते, ये बड़े होते। हमने बहुत पहले आइंस्टीन पैदा कर लिया होता, क्योंकि आइंस्टीन ने जिस सापेक्षवाद का सिद्धांत दिया वह महावीर ने ढाई हजार साल पहले इस देश को दिया था। लेकिन उसके लिए भूमिका नहीं थी, परिप्रेक्ष्य नहीं था, ठीक संदर्भ नहीं था। वह ठीक संदर्भ तो चार्वाक से मिल सकता था, पदार्थवादी दृष्टिकोण से मिल सकता था।
और मैं तुमसे यह भी कह दूं कि अगर चार्वाक की ग्रंथ-संपदा शेष रही होती और चार्वाक का विचार फैल सका होता, तो यह देश न तो दीन होता, न दरिद्र होता; यह समृद्ध होता। यह इस पृथ्वी की सोने की चिड़िया आज भी होता। क्योंकि इस देश के पास इतनी संपदा पड़ी है, इतनी संपदा, प्राकृतिक इतनी सुविधा होने के बाद भी दीन, भिखमंगों की तरह हम दुनिया में हैं आज। उसका सबसे बड़ा कारण हमारे पंडित-पुरोहित हैं। उसका सबसे बड़ा कारण चार्वाक की दर्शन-संपदा का नष्ट करना है।
और अगर यह देश समृद्ध होता, धनी होता, तो धार्मिक भी होता। यह मेरी अपनी प्रस्तावना है कि सिर्फ धार्मिक समाज तभी संभव हो सकता है जब उसके पहले समृद्धि की एक भूमिका पैदा हो गई हो। गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता, समृद्ध समाज ही धार्मिक हो सकता है। अगर चार्वाक की नास्तिकता फैलने दी गई होती तो हम अब तक आस्तिक हो गए होते।
यह तुम्हें बड़ी उलटी बात लगेगी। मेरी बातें इसीलिए उलटी लगती हैं लोगों को, क्योंकि लोग एक धारणा से बंध गए हैं और उस धारणा के ऊपर उठ कर सोचने की उनकी क्षमता भी खो गई है। लोगों में सोचने के संबंध में बड़ी नपुंसकता पैदा हो गई है। यह बात उलटी नहीं है! अगर हमने ठीक-ठीक नास्तिकता को अंगीकार किया होता तो उसी नास्तिकता से आस्तिकता का जन्म होता। क्योंकि आस्तिकता के बिना जिज्ञासा शांत ही नहीं होती। नास्तिकता शुरू करती है यात्रा, अंत नहीं कर सकती। चार्वाक से शुरू करो, बुद्ध पर पूर्णता है। जो बीच में अटक जाएगा वह तड़पेगा।
तुम आज देखते नहीं हो यह बात इतने प्रत्यक्ष रूप से, कि पश्चिम में आज धर्म के संबंध में जितनी जिज्ञासा है उतनी पूरब में नहीं है! तुम देखते नहीं हो, यहां मेरे पास सारी दुनिया से, कम से कम तीस देशों से लोग आते हैं, भारतीय को इतनी उत्सुकता नहीं मालूम होती! उसे तो ख्याल है उसे पता ही है कि धर्म क्या है। यह सारी दुनिया में धर्म के प्रति इतनी तीव्र जिज्ञासा क्यों पैदा हो रही है? क्योंकि सारी दुनिया समृद्धि की ऊंचाइयों पर उठने लगी है और सारी दुनिया में नास्तिकता फैल गई है। पश्चिम नास्तिक है। और नास्तिकता में तृप्ति नहीं है; नास्तिकता में तृप्ति हो ही नहीं सकती। नहीं से कोई तृप्त हो सकता है? नहीं से कहीं पेट भर सकता है? नहीं से कहीं रक्त बन सकता है? नहीं से कहीं प्यास बुझ सकती है? नहीं से तो कुछ भी नहीं हो सकता। नकार में जीना संभव ही नहीं है। जीना तो होता है विधेय में। आस्तिकता का अर्थ है विधेय; नास्तिकता का अर्थ है नकार। आस्तिकता का अर्थ हैः जगत को हां कहने की क्षमता। नास्तिकता का अर्थ हैः डर, भय, नहीं, संकोच, इनकार।
पश्चिम नास्तिक हुआ है तीन सौ सालों में और उसका परिणाम अब यह हो रहा
है कि पश्चिम आस्तिकता की तरफ मुड़ रहा है। पश्चिम के सबसे बड़े विचारशील लोग आज आस्तिकता की बड़ी तलाश में लगे हैं। आइंस्टीन ने मरते समय कहा कि मेरे जीवन भर की निष्पत्ति यह है कि जितना मैंने विज्ञान को समझा, उतना ही मुझे लगा कि जीवन एक अपरिसीम रहस्य है। और इस रहस्य को हम कभी हल न कर पाएंगे।
यह रहस्य ही तो परमात्मा है। जीवन की रहस्यमयता का अनुभव ही परमात्मा है।
एडिंग्टन ने भी अपने संस्मरणों में लिखा कि पहले मैं सोचता था जगत केवल वस्तुओं का जोड़ है। लेकिन जितनी मेरी समझ बढ़ी वस्तुओं के संबंध में, मैं जितना पदार्थवाद की गहराइयों में उतरा, उतना ही मैंने अनुभव किया कि जगत वस्तुओं का जोड़ नहीं, चैतन्य का संघट है।

चैतन्य का संघट! यह तो परमात्मा का ही दूसरा नाम हो गया। चैतन्य का सागर! और परमात्मा के लिए बेहतर व्याख्या क्या होगी? पश्चिम नास्तिक हुआ, भौतिक हुआ, समृद्ध हुआ। और समृद्धि, नास्तिकता, भौतिकता इस सबका अंतिम परिणाम तुम देख रहे हो, क्या हुआ! पश्चिम का मंदिर बन गया है, अब कलश चढ़ने की देर है--स्वर्ण-कलश आस्तिकता का।
काश, हमने चार्वाक की दर्शन-संपदा को बचाया होता तो पंडित तो गए होते, पुजारी तो गए होते, ब्राह्मण की जो ताकत है वह तो गई होती, राजनेता और धनियों का जो बल है इस देश में वह तो गया होता, लेकिन एक सूर्योदय होता। हम पृथ्वी पर सबसे पहले लोग होते जो समृद्ध होते, सबसे पहले लोग होते जो वैज्ञानिक होते और सबसे पहले लोग होते जो प्रभु के मंदिर पर कलश चढ़ाने का सौभाग्य पाते। वह हम चूक गए। और वह हम अभी भी चूके चले जाएंगे, क्योंकि अभी भी पंडितों का शिकंजा हमारी गर्दन पर बहुत गहरा है। अभी भी यज्ञ हो रहे हैं! अभी भी करोड़ों रुपये का घी और अन्न अग्नि में फेंका जा रहा है! अभी भी घर-घर में सत्यनारायण की कथा हो रही है, जिस कथा में न तो सत्य है कुछ और न नारायण है कुछ। अभी भी लोग बैठे हैं, मालाएं फेर रहे हैं--मुर्दों की भांति, यंत्रवत।
तुमने पूछा वैरालेः "चार्वाक के बारे में आपके क्या विचार हैं?"
चार्वाक वैसे ही है जैसे मंदिर की बुनियाद। बुनियाद में मजबूत पत्थर रखने होते हैं। बुनियाद पदार्थवादी होनी चाहिए। किसी भी सुसंयत समाज की बुनियाद पदार्थवादी होनी चाहिए। हां, शिखर चढ़ेगा मंदिर का, कलश चढ़ेगा, स्वर्ण का बनाएंगे, मोतियों से सजाएंगे, हीरे-जवाहरात जड़ेंगे, मगर हीरे- जवाहरात कोई बुनियाद में नहीं भरने पड़ते। बुनियाद बन सके ऐसी क्षमता चार्वाक की है। और चार्वाक ने भौतिकवाद के सारे सूत्र खोज लिए थे, जो पश्चिम में एपिक्युरस, दिदरो, मार्क्स, एंजिल्स और दूसरे लोगों ने खोजे। और हजारों साल बाद खोजे। चार्वाक ने सारे भौतिकता के सूत्र खोज लिए थे। चार्वाक, फिर याद दिला दूं, किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, बहुत से व्यक्तियों की धारा का नाम है। जो पहला व्यक्ति हुआ, जिसने नास्तिकता की इस देश में चर्चा की, उसका नाम है बृहस्पति। बृहस्पति की गिनती मैं देश के महानतम ऋषियों में करता हूं, क्योंकि उस आदमी ने बुनियाद रखने की चेष्टा की थी। बुनियादें तो छिप जाती हैं जमीन के भीतर, उनका पता नहीं चलता। मगर उनके बिना कोई मंदिर खड़े नहीं होते।
मैं आज फिर वही कोशिश कर रहा हूं। मुझे दोहरा काम करना है। इसलिए मैं सबको दुश्मन बना लूंगा। मुझे चार्वाक का उपयोग करना है मंदिर की बुनियाद के लिए, इसलिए मैं धार्मिक को विरोधी कर लूंगा, दुश्मन कर लूंगा। क्योंकि वह कहेगा, चार्वाक! तो यह आदमी तो नास्तिक है, अनीश्वरवादी है, भौतिकवादी है। और मैं चार्वाकवादियों को भी नाराज कर रहा हूं। कम्युनिस्ट हैं, सोशलिस्ट हैं, वे भी मुझसे नाराज हैं। वे नाराज हैं, क्योंकि वे कहते हैं, यह आदमी लोगों को ध्यान सिखा रहा है, जब कि सवाल है कि लोग तलवारों पर धार रखें। जब कि सवाल है कि लोग झंडों पर परचम चढ़ा लें लाल रंग के; और यह आदमी लोगों को लाल कपड़े पहना रहा है। लाल झंडा चाहिए!
कम्युनिस्ट पार्टी मेरे खिलाफ है, पुरी के शंकराचार्य मेरे खिलाफ हैं; यह बड़े मजे की बात है। पुरी के शंकराचार्य और कम्युनिस्ट पार्टी में क्या संबंध! ये दुश्मन दोनों एक साथ मेरे खिलाफ क्यों हैं? करपात्री महाराज मेरे खिलाफ हैं, आचार्य तुलसी मेरे खिलाफ हैं, आचार्य श्रीराम शर्मा मेरे खिलाफ हैं, कानजी स्वामी मेरे खिलाफ हैं, सारे जगतगुरु मेरे खिलाफ हैं, कम्युनिस्ट पार्टी भी मेरे खिलाफ है; तब तो बड़े आश्चर्य की बात है!
कारण साफ हैः मैं एक ऐसे समन्वय की बात कर रहा हूं जिसकी कल्पना भी उन्होंने नहीं की। मैं भौतिकता और धर्म के बीच समन्वय का सेतु बना रहा हूं। मैं चाहता हूं, यह देश समृद्ध भी हो और शांत भी। मैं चाहता हूं, यह देश धनी भी हो और ध्यानी भी। मैं चाहता हूं, यह देश पदार्थ का भी मालिक हो और परमात्मा को भी आमंत्रण दे। क्यों न हम दोनों को सम्हालें! ये दोनों

दुनियाएं उसकी हैं, क्यों न ये दोनों दुनियाएं हमारी भी हों! आखिर हम भी उसके हैं। हम आधा क्यों करें?
और जब भी हम आधा करते हैं तब मुसीबत खड़ी होती है। नास्तिक कहता है सिर्फ शरीर, और आत्मा की उपेक्षा कर जाता है। और आस्तिक कहता है सिर्फ आत्मा, और शरीर की उपेक्षा कर जाता है। और तुम दोनों हो। और तुमने एक की भी उपेक्षा की तो तुम अधूरे रह जाओगे, अपंग रह जाओगे, लंगड़े-लूले हो जाओगे, तुम्हारे जीवन में कभी पूर्णता नहीं होगी। और जहां पूर्णता नहीं है वहां पूर्ण ब्रह्म को कैसे जगह बन सकेगी! पूर्ण होना होगा, पूर्ण को पुकारना है तो।
तो मैं एक अभिनव बात कह रहा हूं जो सदियों पहले कही जानी चाहिए थी, नहीं कही गई; मजबूरी में मुझे कहनी पड़ रही है। मैं चार्वाक और बुद्ध के बीच सेतु बना रहा हूं। मेरा संन्यासी चार्वाकवादी होगा और मेरा संन्यासी बुद्धवादी होगा। मेरा संन्यासी शरीर का सम्मान करेगा, इसीलिए सम्मान करेगा कि यह शरीर के भीतर आत्मा विराजमान है। मेरा संन्यासी जगत को प्रतिष्ठा देगा, क्योंकि जगत परमात्मा का है और परमात्मा जगत के कण-कण में व्याप्त है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आप ऐसी भाषा में क्यों नहीं बोलते जो मेरी समझ में
आ सके? आपको सुनता हूं, रोता हूं, लेकिन कुछ समझ में नहीं आता है!

समझ और समझ--दो तरह की समझें हैं। एक समझ है बुद्धि की, शब्दों की, विचार की, तर्क की। और एक समझ है हृदय की। तुम आनंदित होते हो, तुम रोते हो, आनंद-अश्रु बहते हैं; यह ज्यादा गहरी समझ है। क्या करोगे बुद्धि की समझ का?
और तुम कहते होः "आप ऐसी भाषा में क्यों नहीं बोलते जो मेरी समझ में आ सके?"
भाषा और सरल हो सकती है? मैं तो बोलचाल की भाषा में बोल रहा हूं। यह कठिनाई भाषा की नहीं है। यह कठिनाई मेरे उस महत समन्वय की है जो तुम्हारी पकड़ में नहीं आ पाता। यह कठिनाई भाषा की नहीं है। भाषा तो बिल्कुल सीधी- साफ है। और क्या सीधी-साफ भाषा हो सकती है! संस्कृत मैं जानता नहीं, पाली- प्राकृत मैं जानता नहीं; हिंदी भी टूटी-फूटी, बस काम चल जाए इतनी। भाषा की कठिनाई नहीं है। कठिनाई है, मैं जो जीवन-दर्शन दे रहा हूं, उसकी। क्योंकि तुम्हारे पास बंधी हुई धारणाएं हैं।
तुमने कभी सुना ही नहीं कि चार्वाक और बुद्ध साथ-साथ खड़े हो सकते हैं।
और यहां मैं दोनों साथ-साथ हूं। अगर मैं नंगा सड़क पर खड़ा हो जाऊं, तुम्हें मेरी भाषा एकदम समझ में आ जाएगी--यही भाषा, जो मैं बोल रहा हूं, बिल्कुल समझ में आ जाएगी। तुम कहोगे, यह है त्याग! त्याग की भाषा से तुम परिचित हो। या मैं ध्यान की, प्रार्थना की, परमात्मा की बात बंद कर दूं और शुद्ध भोग की बात लोगों को समझाने लगूं, तो भी तुम्हारी बात समझ में आ जाएगी। तुम कहोगे कि ठीक है, यह आदमी नास्तिक है, चार्वाकवादी, बात खत्म हो गई।
तुम्हारी अड़चन यह है कि मैं तुम्हें निष्कर्ष नहीं लेने देता, मैं तुम्हारी दुविधा नहीं मिटने देता। मैं सड़क पर नग्न खड़ा नहीं होता, उपवास नहीं करता, धूप-धाप में खड़ा नहीं होता। तुम्हें बड़ी अड़चन रहती है। ध्यानियों से तुम यह अपेक्षा करते हो। ध्यानियों से तुम्हारी अपेक्षा मैं पूरी नहीं करता। इसलिए तुम कैसे मुझे ध्यानी मानो! कैसे तुम मुझे वीतराग मानो!
किसी मित्र ने पूछा है कि कानजी स्वामी और उनके शिष्य यही कहते हैं कि सम्यक-दृष्टि व्यक्ति राग-रंग में कैसे रह सकता है? आपके खिलाफ बोलते हैं।
और मैं कहता हूं, सम्यक-दृष्टि व्यक्ति ही जानता है कि राग क्या है और रंग क्या है। बाकी अंधे क्या राग जानेंगे, क्या रंग जानेंगे! जिसके पास सम्यक-दृष्टि है वही जानता हैः जीवन महोत्सव है!

सम्यक-दृष्टि की लेकिन बंधी हुई धारणा है जैनों के पास। कानजी स्वामी
के पास जो सुनने जाते होंगे वे जैन होंगे। उनकी बंधी धारणा है कि सम्यक-दृष्टि को कैसे होना चाहिए। उसको एक बार भोजन लेना चाहिए; खड़े होकर भोजन लेना चाहिए, बैठ कर भी नहीं, उतना आराम भी नहीं। नग्न रहना चाहिए। गांव-गांव भटकना चाहिए, पैदल चलना चाहिए, जूता भी नहीं पहनना चाहिए। और शरीर को गलाए, सुखाए, शरीर का दमन करे, तो सम्यक-दृष्टि!
और जिसको वे सम्यक-दृष्टि कहते हैं उसको मैं कहता हूं स्व-दुखवादी, मैसोचिस्ट। मैं उसको कहता हूं मानसिक रूप से बीमार। नहीं तो कोई क्यों अपने को सताए! कोई क्यों भूखा मरे! भूख प्राकृतिक है। न ज्यादा खाओ, न कम। कम खाओ तो अप्रकृति होती है, ज्यादा खाओ तो अप्रकृति होती है। मैं संतुलन सिखाता हूं। और सम्यक-दृष्टि का अर्थ अगर ठीक-ठीक करो तो संतुलन होता है। सम्यक का अर्थ होता है संतुलित। जब धूप पड़ रही हो तब धूप में खड़े होना असम्यक-दृष्टि है, तब छाया में बैठना चाहिए। और जब ठंड लग रही हो तब छाया में बैठे रहना असम्यक-दृष्टि है, तब धूप में बैठना चाहिए।
सम्यक जिसकी दृष्टि है वह तो स्वाभाविक होता है, वह स्वभाव के अनुकूल जीता है। मैं तो अपने स्वभाव के अनुकूल जी रहा हूं। महावीर की महावीर जानें। अगर उनको नग्न होना स्वभाव के अनुकूल था, उनकी मौज। अगर उन्हें पैदल चलना स्वभाव के अनुकूल था, उनकी मौज। मैं कुछ एतराज नहीं करता। व्यक्तियों को इतनी स्वतंत्रता तो होनी ही चाहिए। कोई भी व्यक्ति दूसरे की कार्बन-कापी नहीं है। न मैं चाहता हूं कि मैं उनकी कार्बन-कापी होऊं, न मैं चाहता हूं कि वे मेरी कार्बन-कापी हों। मैं मैं हूं, वे वे हैं।
तो कानजी स्वामी के शिष्यों को तकलीफ होती होगी कि सम्यक-दृष्टि और राग-रंग की बात करे, यह तो हो ही नहीं सकता; उसको तो वैराग्य की बात करनी चाहिए। और मैं मानता हूं कि वैराग्य की बात तो सिर्फ मूढ़ करते हैं। असली राग तो ध्यानी ही जानता है। असली राग में वैराग्य छिपा है।
असली राग का क्या अर्थ है? प्रेम, प्रीति, करुणा, अहिंसा। असली राग का क्या अर्थ है? कि जीवन को शिकायत की तरह न लेना, एक अनुग्रह की तरह लेना। असली राग का अर्थ हैः प्रभु के प्रति धन्यवाद से भरे होना, कि तूने इतना दिया, इतना दिया, जिसकी मुझे पात्रता भी न थी!
मेरी भाषा तो सीधी-साफ है। लेकिन मेरा जो दृष्टिकोण है, मेरी तरफ से
तो वह भी सीधा-साफ है, लेकिन तुम्हारी बंधी हुई धारणाओं के कारण मुश्किल है। मेरे पास कम्युनिस्ट आते थे। तो वे कहते थे, आपकी बातें ठीक लगती हैं कि समृद्धि होनी चाहिए, टेक्नॉलॉजी बढ़नी चाहिए, उद्योग बढ़ने चाहिए; यह चरखा और यह तकली और ये बेवकूफियां बंद होनी चाहिए। आपकी बात बिल्कुल ठीक है। गांधीवाद से छुटकारा होना चाहिए। मगर आप यह ध्यान क्यों जोड़ देते हो? वहां हमें संदेह पैदा हो जाता है।
उसको भी मेरी भाषा कठिन नहीं मालूम हो रही, उसको भी अड़चन यह हो रही है
कि उसकी अपेक्षा के मैं अनुकूल नहीं पड़ रहा हूं।
मैं किसी की अपेक्षा के अनुकूल नहीं पड़ रहा हूं और पडूंगा भी नहीं। मैं यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने को नहीं हूं। मैं किसी का गुलाम नहीं हूं। मैं अपने ढंग से जीऊंगा। मेरे जीने से तुम कुछ सीखना हो तो सीख लेना, नहीं सीखना हो मत सीखना। सीख लोगे, तुम्हारा भाग्य; नहीं सीखोगे, तुम्हारा दुर्भाग्य। उससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।
लेकिन यह प्रश्न भाषा का नहीं है। और मैं भाषा भी बदल दूं तो क्या फर्क पड़ता है? मैं कहूंगा तो यही, चाहे पाली में बोलूं, चाहे संस्कृत में, चाहे प्राकृत में, चाहे हिंदी में, चाहे उर्दू में, चाहे अंग्रेजी में, चाहे मराठी में। कहूंगा तो यहीः संभोगातून समाधि कड़े! कहूंगा तो मैं यही। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।
एक लड़के ने अपने गणित के मास्टर से कहा, मास्टर जी, यहां अंग्रेजी के अध्यापक अंग्रेजी में, हिंदी के अध्यापक हिंदी में और संस्कृत के अध्यापक संस्कृत में पढ़ाते हैं। फिर आप गणित के अध्यापक होकर गणित की भाषा में क्यों नहीं पढ़ाते?

अध्यापक ने कहा, अबे साले, चार सौ बीस! ज्यादा तीन-पांच तो मत कर, जल्दी
नौ दो ग्यारह हो जा यहां से।
गणित की भाषा हो गई। मगर भाषा से क्या फर्क पड़ेगा?
भाषा तो मेरी बिल्कुल सीधी-साफ है। अड़चन कहीं और है। राधाकृष्ण, यह भाषा का प्रश्न नहीं। और तुम्हें भी समझ में आना शुरू हुआ है, नहीं तो आंसू न बहते। आंसू कह रहे हैं कि चाहे बुद्धि न पकड़ पाती हो, मगर हृदय आंदोलित हुआ है। चाहे बुद्धि इनकार करती हो, मगर हृदय तक आवाज पहुंचने लगी है। और वही असली बात है। बुद्धि तो तरकीबें निकाल लेती है। समझ भी ले तो भी न समझने की तरकीबें निकाल लेती है। बुद्धि तो इतनी चालबाज है कि जिसका हिसाब नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करता है, गूढ़ तथ्यों की व्याख्या--कुंडलिनी का जागरण, सप्तचक्र, इत्यादि-इत्यादि; और जीवन तथा मृत्यु के रहस्य, भूत-प्रेत, स्वर्ग-नरक... । मुल्ला नसरुद्दीन की प्रेयसी उससे बहुत परेशान थी, कि प्रेम की तो बात का मौका ही न आए, यह गूढ़ चर्चा में ही सारी बात चली जाए, सारी रात चली जाए। एक दिन दोनों नदी के किनारे बैठे थे, सुहावना मौसम, सूरज ढल चुका और पूर्णिमा का चांद निकल रहा! ऐसा मौका मुल्ला चूक जाए! छेड़ी उसने आध्यात्मिक चर्चा। प्रेयसी ऊब चुकी थी बहुत। और पूर्णिमा की रात भी फिर वही अध्यात्म!
आखिर उसने कहा, नसरुद्दीन, आज तो बकवास बंद करो! मगर नसरुद्दीन ने न सुना, वह तो अपनी दार्शनिक चर्चा में मशगूल था सो मशगूल रहा। वह तो अपना व्याख्यान देता ही रहा। प्रेयसी ने कई बार कोशिश की, मगर हर बार हारी। अंततः मामला झगड़े की सीमा तक पहुंच गया। प्रेयसी के बार-बार बाधा डालने पर नसरुद्दीन ने उत्तेजित होकर कहा, जो मैं कह रहा हूं, क्या वह बकवास है? क्या तुम मुझे पहले नंबर का गधा समझती हो?
गधा तो नहीं समझती--प्रेयसी ने कहा--मगर भगवान के वास्ते अब यह रेंकना बंद करो।
बुद्धि बहुत चालबाज है। एक दरवाजा बंद करोगे, दूसरा खोल लेगी। भेद नहीं पड़ेगा।
समझ--असली समझ--हार्दिक होती है, बौद्धिक नहीं होती। असली समझ प्रेम
की होती है। और वह घट रही है। राधाकृष्ण, तुम न भाषा की फिकर करो, न अपनी बुद्धि की। आंसू आ रहे हैं, इन्हें रोकना मत, इन्हें बहने दो, इन्हें बरसने दो। ये तुम्हें हलका करेंगे। ये तुम्हें स्वच्छ करेंगे। ये तुम्हारे दर्पण को साफ करेंगे। और धीरे-धीरे, मैं क्या कह रहा हूं, वही नहीं; मैं क्या हूं, वह तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। और वही मूल्यवान है। मैं क्या कह रहा हूं, इसकी फिकर छोड़ो। मैं क्या हूं, इसकी चिंता लो। और इसकी चिंता तो हृदय से ही हो सकती है।
लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क में भरी होंगी बहुत सी धारणाएं, शास्त्र, सीखी हुई बातें। तुम उनसे तालमेल बिठालने की कोशिश कर रहे होओगे। तालमेल नहीं बैठ रहा होगा और तुम जरा बिगूचन में पड़ गए होओगे।
मेरे पास आए सभी लोगों को प्राथमिक रूप से ऐसी ही किंकर्तव्यविमूढ़ की दशा पैदा होती है। एक तरह की जीवन-दृष्टि लेकर वे आते हैं और मैं यहां ठीक कुछ और ही कह रहा हूं, कुछ और ही प्रयोग करवा रहा हूं। सब अस्तव्यस्त हो जाता है।
एक जेबकतरे ने अपने हमपेशा मित्र से पूछा, तुम हमेशा ये फैशन वाली पत्रिकाएं ही क्यों पढ़ते रहते हो? दूसरे जेबकतरे ने तपाक से उत्तर दिया, अरे अगर इन्हें नहीं पढूंगा तो पता कैसे चलेगा कि लोग किस मौसम में जेब कहां लगवा रहे हैं?
तो अपनी-अपनी दुनिया है। तुम जिन पंडित-पुरोहितों की बातें सुन कर आए
हो उनकी अपनी दुनिया है। यह किसी पंडित की चर्चा नहीं है। यह किसी पुरोहित का मंदिर नहीं है। यह मधुशाला है--दीवानों की, मस्तों की। यहां चार्वाक और यहां बुद्ध की जीवन-ऊर्जा का मिलन हो रहा है। यहां चार्वाक प्रबुद्ध हो रहे हैं, यहां बुद्ध चार्वाक हो रहे हैं। ऐसा कभी पृथ्वी पर अनूठा प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए इसके लिए कोई बंधी-बंधाई भाषा उपलब्ध नहीं है।

मुझे जो कहना है वह तो कहना है, उसके लिए भाषा भी धीरे-धीरे निर्मित करनी है। कह-कह कर उसके लिए भाषा निर्मित कर रहा हूं। तुम अपनी पुरानी धारणाओं को अगर छोड़ने को राजी हो जाओ तो देर न लगेगी समझने में। लेकिन धारणाएं आदमी छोड़ता नहीं।
मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि सुना, कल आपने अपने बच्चे पिंटू
की बहुत पिटाई की। भला ऐसी क्या गलती हो गई थी बेचारे से?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि बात दरअसल यह है कि पिंटू का रिजल्ट चार दिन बाद आने वाला है और मैं आज ही एक महीने के लिए बंबई जा रहा हूं।
पहले से ही माने बैठे हैं कि पिंटू फेल तो होंगे ही, सो पिटाई तो कर ही लो।
मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में और एक प्रसिद्ध घटना है। पढ़ाता था स्कूल में, एक छोटा सा मदरसा गांव का। एक बच्चे को कहा, गर्मी के दिन, कि ले जा यह मटकी और कुएं से पानी भर ला। और जैसे ही उसने मटकी उठाई, उसको पास बुला कर उसके कान खींचे और दो चपत उसको लगाए। वह बच्चा आंसू टपकाता हुआ, मटकी लेकर चला गया। एक आदमी यह सब देख रहा था। उसने कहा, यह तो हद हो गई! न उसने कोई कसूर किया, न कोई भूल की, न कोई चूक की, और तुमने उसको दो चांटे मारे और कान भी खींचे और बेचारे को पानी लेने भी भेजा मटकी भर कर!
मुल्ला ने कहा कि मैं उसको ज्यादा समझता हूं तुम्हारी बजाय। मैं अपने बच्चों को ज्यादा समझता हूं तुम्हारी बजाय। तुम बीच में न पड़ो! मटकी फोड़ लाए, फिर मारने में फायदा क्या! पहले ही ठिकाने लगा दिया मैंने उसको। होश से भी जाएगा और अब अगर मटकी फोड़ भी लाए तो भी मैंने सावधान कर दिया था। और फिर पीछे मारने से फायदा भी क्या है! फिर तो व्यर्थ है सब बात।
कुछ लोग पहले से ही निर्णय लिए बैठे हैं। कुछ लोग क्यों, अधिक लोग। तुम जब यहां आते हो तो तुम खाली तो नहीं आते, तुम्हारे सिर में न मालूम कितनी बातों के बवंडर उठते रहते हैं! उन्हीं बवंडरों के बीच तुम मेरी बातें सुनते हो। अगर वे तुम्हारे अनुकूल पड़ जाएं तब तो ठीक। मगर वे अनुकूल पड़ नहीं सकतीं। और एकाध पड़ जाए अनुकूल तो दूसरी प्रतिकूल पड़ जाती है। तुम खींचातानी में आ जाते हो।
यह भाषा की अड़चन नहीं है। राधाकृष्ण, चित्त को खाली करो। चित्त को कूड़े-कर्कट से मुक्त करो। यहां जो हम बगीचा लगा रहे हैं, इसमें हृदय के फूल खिलाने हैं। यहां कोई बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े शास्त्री और वेदज्ञ पैदा नहीं करने हैं। बहुत हो चुके पैदा वेद के जानने वाले और देश उनसे काफी पीड़ित हो चुका।
एक सज्जन मुझे पत्र लिखते थे। वे त्रिवेदी थे। भूल से मैंने पत्र में उत्तर उनको जो लिखा तो पते में द्विवेदी लिख दिया। नाराज हो गए। त्रिवेदी और द्विवेदी कर दो, तो स्वभावतः उनको बड़ा धक्का लगा। पत्र मुझे लिखा कि मैं त्रिवेदी हूं, आपने मुझे द्विवेदी लिखा। तो मैंने उनको चतुर्वेदी लिख दिया। उनका पत्र आया कि आप भी हद के आदमी हैं! आप ठीक कभी लिखेंगे ही नहीं। मैंने कहा, भई मैं पुरानी भूल के लिए, एक चूक हो गई थी उसको पूरा करने के लिए पश्चात्ताप की दृष्टि से चतुर्वेदी लिख दिया। दोनों को मिला कर अब तुम त्रिवेदी हो गए।
वेदों को जानने वाले भरे पड़े हैं। उन वेदों के जानने वालों के कारण ही
यह देश मरा, मर रहा है, सड़ रहा है। मैं तुम्हें यहां कुछ और सिखा रहा हूं। मैं सिखा रहा हूं तुम्हारा अंतर-वेद। तुम्हारी अंतरात्मा को जगाने की चेष्टा चल रही है। मैं तुम्हें वेद पढ़ना नहीं सिखाना चाहता, मैं चाहता हूं तुम्हारा वेद पैदा हो। मैं तुम्हें ऋषि बनाना चाहता हूं, पंडित नहीं। तुम्हारा उदघोष उठे! और निश्चित ही यह कठिन काम है। यह वैसा ही कठिन है जैसे कोई मूर्तिकार छैनी और हथौड़ी लेकर पत्थर को तोड़ता है वर्षों तक, तब कहीं प्रतिमा उभर आती है। जो राजी हैं टूटने को, छैनी और हथौड़े को झेलने को, वे ही केवल मेरे पास टिक सकते हैं।
राधाकृष्ण, तुम्हारा हृदय तो राजी हो रहा है। तुम्हारे आंसू उसकी खबर
दे रहे हैं। अपनी बुद्धि की सुन कर भाग मत जाना। बुद्धि बहुत कायर है, ख्याल रखना। हृदय साहसी है, दुस्साहसी है। बुद्धि तो शूद्र है, हृदय

ब्राह्मण है। सुनो भीतर की! ब्राह्मण कहता हूं हृदय को, क्योंकि वहीं ब्रह्म का वास है।
कबीर ने कहा हैः वही हमारे साथ चल सकता है जो सिर काट कर रख दे।
क्या कबीर कह रहे हैं कि यह तुम्हारा सिर सच में ही काट कर रख दो? सिर काटने से मतलब हैः बुद्धि को हटाओ, तो हमारे साथ चल सकते हो।
कबीर ने कहा हैः जो घर बारे आपना, चलै हमारे साथ।
क्या वे यह कह रहे हैं कि तुम अपने घर में आग लगा दो और बच्चे-पत्नी को भून डालो? नहीं, वे यह कह रहे हैं कि तुमने अब तक जो अपनी सुरक्षा का घर बनाया है--सिद्धांतों का, शास्त्रों का--उसे आग लगा दो। आओ हमारे साथ! हम तुम्हें एक नये घर की खबर दें, एक नये घर का द्वार खोलें!
और नये घर में थोड़ी तो देर अड़चन होगी--पुराने घर की याद। पुराने दरवाजे से निकलना चाहोगे, नये घर में वहां दीवाल होगी। तो कभी-कभी अड़चन होगी, कभी-कभी भूल-चूक होगी।
मैंने सुना है, एक स्त्री ने मनोवैज्ञानिक से पूछा--अपने मनोवैज्ञानिक से, जिससे वह चिकित्सा ले रही थी--कि मैं क्या करूं? मेरे पति और मेरी बनती ही नहीं। बनाने के लाख उपाय करती हूं, टूट-टूट जाती है बात, बिगड़-बिगड़ जाती है, बनते-बनते बिगड़ जाती है। रोज कलह, रोज मार-पीट की नौबत। और पति भी पीकर आते हैं और पिटाई करते हैं। और कसूर मेरा नहीं है, ऐसा भी नहीं। क्योंकि मैं भी चुप नहीं रह सकती और मैं भी कुछ-कुछ कहती हूं, अंट-संट बोलती हूं, बस बात बिगड़ जाती है।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, आज प्रयोग के लिए, सिर्फ प्रयोग के लिए, सारा व्यवहार बदल दो। जब पति द्वार पर आए तो मत पूछना कहां से आ रहे, जैसा तू रोज पूछती है। एकदम गले लग जाना। फूलमाला पहनाना। जूते उतारना, पैर धोना, पति को बिस्तर पर लिटाना, कपड़े बदलना, भोजन ले आना बिस्तर पर ही, भोजन करवाना, हाथ-पैर दबाना।
पत्नी ने कहा, होगा तो बहुत मुश्किल। मगर एक ही दिन अगर करना है तो ठीक है, कर लेंगे। एक साधना समझ कर कर लेंगे। होगा तो बहुत मुश्किल। उस दुष्ट के पैर धोऊं, फूलमाला पहनाऊं, जिसने सिवाय जूतियों के मुझे कभी और किसी चीज से पीटा नहीं! पैर दबाऊं उसके, बिस्तर पर लिटा कर भोजन करवाऊं हाथ से! जहर खिला देने की तबियत होती है उसको! मगर अब आप कहते हैं तो आज तो करके देखूंगी, शायद कुछ हो जाए।
उसने वही किया। खूब सजी-धजी, साड़ी पहनी, नहाया-धोया; नहीं तो स्त्रियां घर में तो महाचंडी का रूप रखे रहती हैं। घर के बाहर जब जाती हैं तब जरा बाल-वाल ढंग के लगा-लगू कर, काजल इत्यादि करके, गहने इत्यादि बांध कर दूसरों को भरमाने चलीं! और पति जानता है उनका असली रूप कि अगर असली देखना हो उनको तो घर में देखो, जहां वे महाचंडी के रूप में प्रकट होती हैं। तो उस दिन उसने अपना महाचंडी का रूप छोड़ा, सजी-बजी, अच्छे से अच्छे कपड़े पहने, इंटीमेट परफ्यूम! गुलाब के फूलों की माला बनाई, द्वार पर बंदनवार बांधा!
पति आया। पीए था, पीए बिना घर आ ही नहीं सकता था, क्योंकि पीए बिना इस पत्नी को सहना ही मुश्किल था। पीकर ही किसी तरह गुजारा चल रहा था। बंदनवार देखा, कुछ समझ में नहीं आया। शक हुआ। फिर जब पत्नी ने दरवाजा खोला तो और हैरान हुआ--इंटीमेट की सुगंध! और पत्नी ने जब गले में उसके गुलाब की माला डाली तो उसने कहा, अरे, मर-मरा तो नहीं गया! स्वर्ग में तो नहीं आ गया! यह हो क्या रहा है! आंखें फाड़-फाड़ कर देखा कि कहीं उर्वशी तो नहीं है। बिस्तर सजा था। उसने कहा कि हद हो गई, शराब ने बहुत-बहुत चमत्कार दिखलाए हैं, मगर ऐसा चमत्कार! यह दुकानदार दिखता है अब तक ठर्रा पिलाता रहा, आज असली चीज दी है। पत्नी एकदम पैर धोने लगी। उसने कभी राम-राम नहीं जपा था, उसने कहा, हे राम! सोचा नहीं था कभी ऐसा सौभाग्य अपने ऊपर भी आएगा। पत्नी ने लिटाया, भोजन कराने लगी। उसने कहा कि गजब! चौंक-चौंक कर देख रहा है सब। भोजन करा कर पत्नी सिर दबाने लगी।
पत्नी ने पूछा, कैसे लग रहा है? तो उसने कहा, बहुत अच्छा लग रहा है।
जितनी देर चल जाए उतना अच्छा, फिर घर जाकर तो नरक भोगना ही है।

वह यह तो मान ही नहीं सकता कि यह घर है। घर जाकर तो नरक भोगना ही है! महाचंडी राह देख रही होगी। और रोज से भी आज ज्यादा देर हुई जा रही है। अब जो घर होगा होगा, अभी तो जितनी देर सुख मिल रहा है ले लो।
तुम जब नये जीवन-आयाम में प्रवेश करोगे तब भी पुरानी आदतें, पुराने संस्कार, पुरानी धारणाएं एकदम नहीं छूट जाते; घिसटते रहते हैं पीछे, चिपक गए हैं तुमसे, तुम्हारे मांस-मज्जा के हिस्से हो गए हैं। उनके कारण तुम्हें मेरी बातें समझने में अड़चन होती होगी।
यह भाषा का प्रश्न नहीं है। भाषा इससे ज्यादा सरल हो ही नहीं सकती। बिल्कुल बोलचाल की भाषा बोल रहा हूं। मैं कोई वक्ता थोड़े ही हूं; सिर्फ बोलचाल की भाषा बोल रहा हूं। जो मेरे हृदय में है वह तुमसे सीधा-सीधा निवेदन कर रहा हूं। मगर जो कह रहा हूं वह हृदय से आ रहा है और तुम भी हृदय से ही लोगे तो समझ पाओगे। यह हृदय और हृदय के बीच की घटना है; बुद्धि अगर अड़ंगा डाली तो समझना असंभव है।
मगर तुम्हारे आंसू बड़ा शुभ लक्षण है, सौभाग्य है। उन आंसुओं को बहने दो। उन आंसुओं को साथ दो, सहयोग दो। विचार से नहीं होगी यह यात्रा, आंसुओं से होगी--प्रीति के, आनंद के, अनुग्रह के।

चौथा प्रश्नः ओशो, आपको सुनता हूं तो परमात्मा के लिए बहुत तड़फ उठती है, विरह का अनुभव होता है। रोता हूं, बहुत रोता हूं! अब आगे क्या होगा?

आगे की इतनी चिंता न करो। आगे की चिंता मन का फैलाव है। आगे का विचार वर्तमान में व्याघात है। न तो पीछे की सोचो, न आगे की। अभी, इस क्षण जो हो रहा है, उसमें आत्मलीन हो जाओ।
तुम कहते होः "आपको सुनता हूं तो परमात्मा के लिए तड़फ उठती है।"
तड़फ बन जाओ! एक प्रज्वलित अभीप्सा! एक पतंगे बन जाओ कि परमात्मा की ज्योति पर जल मरना है।
अभी की सोचो, आगे की मत पूछो। क्योंकि मन की ये चालबाजियां हैं। मन कहता है, आगे की तो सोचो, आगे क्या होगा? और आगे की सोचने में तुम चूक जाओगे। क्योंकि जो है अभी है, जो है वर्तमान है। परमात्मा अभी है, कल नहीं। न कल था, न कल होगा। परमात्मा हमेशा आज है। उसका एक ही समय है--आज, अभी। उसका एक ही ढंग है होने का।
परमात्मा के जगत में कोई कल नहीं होता। यह तो हमारी संकीर्ण दृष्टि है, जिसके कारण हमने दो कलों के बीच में आज कर लिया है। दोनों कल झूठे! और दो कलों के बीच में सच्चा आज कैसे हो सकता है? दो कलों के बीच में हमारा आज भी झूठा। दो कलों की पाटों के बीच में हमारा आज पिसा जा रहा है, वर्तमान का छोटा सा क्षण मरा जा रहा है। और वही क्षण सब कुछ है--संपदाओं की संपदा, स्वर्गों का स्वर्ग!
तुम आगे की मत पूछो, नारायण। आगे जो होगा होगा। अभी इतना आनंद हो रहा
है तो इसी आनंद में से आगे भी और आनंद होगा। अभी इतनी तड़फ हो रही है तो आगे और तड़फ होगी। अभी इतने आंसू आ रहे तो आगे और वर्षा घनी होगी। आने वाला क्षण इसी क्षण से निकलेगा न! आने वाला कल आज की ही संतति होगी न! आने वाला कल आज का ही सिलसिला है।
मगर मन कहता है, पहले सोच लो आगे की। मन कई बार बहुत आगे की सोचने लगता है। तुमने शेखचिल्लियों की कहानियां सुनी हैं न, वे सब मन की प्रतीक हैं। एक शेखचिल्ली जा रहा है बाजार दूध बेचने। सिर पर मटकी है। रास्ते में ख्याल आने लगे। तुमको भी आते हैं, सबको आते हैं। जब तक मन है तब तक शेखचिल्ली है। मन का नाम शेखचिल्ली है। सोचने लगा, आज दूध बेच कर चार आने मिलेंगे, दो आने तो खर्च करूंगा और एक बार आज उपवास कर जाऊंगा, एक बार भोजन न करूंगा। एकादशी समझो। दो आने बचा लूंगा। ऐसे दो-चार-छह दिन पैसे बचा कर मुर्गी खरीद लूंगा। मुर्गी खरीदी कि अंडे ही अंडे। और अंडे और बिक्री, देर न लगेगी गाय खरीदने में। और फिर भैंस आने में कितनी देर लगती है! और फिर अपना ही खेत होगा, खेतीबाड़ी होगी, धन-धान्य होगा। तभी ख्याल आया कि खेतीबाड़ी और धन-धान्य होगा तो बड़ा इंतजाम करना पड़ेगा, आजकल चोरी बहुत हो

रही है। लोग खेतों में घुस जाते हैं, फसलें काट ले जाते हैं। तो कहा, अरे, देख लेंगे, कौन मेरी फसलें काट सकता है! लट्ठ लेकर खड़ा रहूंगा खेत के बीच में और चिल्लाता रहूंगा--जागरूक! सावधान!
जो जोर से कहा सावधान हाथ उठा कर, मटकी छूट गई! मटकी गिरी; मटकी क्या गिरी, सारा संसार गिर गया, सब चकनाचूर हो गया!
मन शेखचिल्ली है। मन जल्दी आगे सरक जाता है। वह कहता है, कल की सोच लो,
कल की तय कर लो।
कल जब आएगा तब हम होंगे तो कल को कल देखेंगे। कल जब आएगा तब जागरूकता
से कल का साक्षात्कार करेंगे। नारायण, अभी न पूछो। "आपको सुनता हूं, परमात्मा के लिए बहुत तड़फ उठती है।" उठने दो! तड़फ ही रह जाओ। "विरह का अनुभव होता है।" विरह ही बन जाओ! "रोता हूं, बहुत रोता हूं।" रुदन ही हो जाओ! "अब आगे क्या होगा?" अब आगे शुभ ही शुभ होगा। लेकिन आगे की तुम सोचो मत।
रात हुई, प्रियतम नहीं आए, बदरा गारी दे।
सोने सी अलसाईं आंखें,
सुधि में भीग गईं रस पांखें,
झरे कुसुम मन की अंजलि से
सूख गईं सरगम की शाखें,
राख रमा धुनि गड़ी राह पर चिंता तारी दे। मधु के मीत सौत घर वासी,
केवल देते आए फांसी,
उनकी हंसी गिराती बिजली
जीवन भर को सत्यानाशी।
मैं विश्वासी गुनती रहती गम की मारी रे।
रात हुई, प्रियतम नहीं आए, बदरा गारी दे।
अभी तो पुकारो प्यारे को! अभी तो विरह को प्रज्वलित होने दो। अगर विरह पैदा हो रहा है तो प्रार्थना बहुत दूर नहीं।
आनंद मैत्रेय ने पूछा हैः "परमात्मा का साक्षात्कार न हो, अनुभव न हो,
तो कैसे प्रार्थना?"
नारायण, तुम्हारे लिए वह बात लागू नहीं होगी। तुम्हारे भीतर विरह पैदा हो रहा है। विरह का अर्थ होता है कहीं आस-पास परमात्मा की मौजूदगी अनुभव होने लगी। वह है, तब तो उसे पाने की आकांक्षा पैदा होती है। स्पष्ट नहीं है, धुंधला-धुंधला है, अभी भोर है, सूरज नहीं निकला है, धुंधलका छाया है। मगर धुंधलके में कुछ-कुछ झलक आने लगी। प्राची लाली होने लगी।
आनंद मैत्रेय का जो प्रश्न है वह तुम्हारा प्रश्न नहीं है। तुम्हें ध्यान की जरूरत नहीं है। तुम तो विरह में उतरो। तुम तो रोओ, जी भर कर रोओ। जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर परमात्मा के स्पर्श उतरने लगे, प्रार्थना उठने लगी, जगने लगी। विरह से घबड़ाना मत, क्योंकि विरह पीड़ा देगा। वह पीड़ा कीमत है जो प्रार्थना पाने के लिए चुकानी पड़ती है। रोने से डरना मत। रोओगे तो ऐसा लगेगाः क्या पागल हो रहा हूं? दूसरे भी कहेंगे कि क्या पागल हुए जा रहे हो? मगर एक ऐसा पागलपन भी है जो बुद्धिमानी से भी ज्यादा बुद्धिमान। एक ऐसा पागलपन भी है परमात्मा के मार्ग में, परमात्मा की राह में, जिसके सामने सब बुद्धिमानियां फीकी हो जाती हैं।
रामकृष्ण जैसे पागल होना ज्यादा बेहतर है, तथाकथित बुद्धिमानों जैसे बुद्धिमान होने से। चैतन्य जैसे पागल होना बेहतर है, तथाकथित बुद्धिमानों जैसे बुद्धिमान होने से। एक पागलपन की भी गरिमा है। परमात्मा के साथ पागलपन भी जुड़ जाता है तो अमृत है। और जगत के साथ, क्षुद्र के साथ, बड़ी बुद्धिमत्ता भी जोड़ दो तो दो कौड़ी की है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, पत्नी संन्यास लेने से रोकती है। उसे दुख भी नहीं देना चाहता हूं और संन्यास भी लेना ही है। अब आपने ही उलझाया, आप ही सुलझावें।

कृष्णदत्त, जल्दी न करो। पत्नी रोकती है, उसका भी कारण है। पत्नी ने पुराने संन्यास के संबंध में ही जाना और सुना है। और पुराना संन्यास बहुत हिंसक संन्यास था, हत्यारा संन्यास था। पुराना संन्यास मृत्युवादी था। पुराना संन्यास बहुत पत्थर जैसा था। पुराने संन्यास ने बहुत पत्नियों को विधवा कर दिया। और पुराने संन्यास ने बहुत बच्चों को अनाथ कर दिया। और पुराने संन्यास ने बहुत घर बरबाद किए हैं। पुराने संन्यास के नाम पर काफी कलंक है।
इसलिए पत्नी अगर डर जाती हो तो आश्चर्य नहीं है, भय खाती हो तो आश्चर्य नहीं है। उसे मेरे संन्यास का पता ही नहीं होगा। पुराना संन्यास भगोड़ा था, पलायनवादी था। मैं एक नये ही संन्यास का सूत्रपात कर रहा हूं। यह भगोड़ा नहीं है, पलायनवादी नहीं है।
मेरा संन्यास प्रेम में विश्वास करता है। मेरा संन्यास गार्हस्थ्य
के विपरीत नहीं है। मेरा संन्यास गार्हस्थ्य में ही खिलता है। मेरा संन्यास कीचड़ में कमल की तरह है। भागना कहां है? जाना कहां है? और भागना हमेशा आसान है। कायर भी कर सकते हैं, बुद्धू भी कर सकते हैं। भागने के लिए न तो बुद्धिमत्ता चाहिए, न साहस चाहिए।
चंदूलाल अपने मित्र को छत पर खड़े होकर बता रहे थे रास्ते पर कि देखते हो, वे सज्जन कौन हैं? वे ढब्बू जी हैं! कल उनकी पत्नी घर छोड़ कर चली गई, भाग ही गई, उसका पता ही नहीं चल रहा है। और आज वे भी घर छोड़ कर निकल भागे। मित्र ने पूछा, क्यों? जब पत्नी ही चली गई तो अब निकल कर भागने की जरूरत क्या?
तो चंदूलाल ने कहा, इस डर से कि कहीं पत्नी वापस न लौट आए!
जिम्मेवारियों से भाग जाना कौन नहीं चाहेगा! पत्नी जिम्मेवारी है, बच्चे जिम्मेवारी हैं। चिंताएं हैं, हजार उपद्रव हैं, समस्याएं हैं। कौन नहीं भाग जाना चाहेगा! लगा ली धूनी, पहुंच गए कंबली वाले बाबा के आश्रम में। मिल गया एक कंबल, एक दफा रोटी भी मिल गई। और अगर थोड़ी-बहुत ब्रह्मचर्चा करनी आती हो... जो किसको नहीं आती! पान की दुकान जो करता है वह भी ब्रह्मचर्चा करता है, रिक्शा वाला भी ब्रह्मज्ञान जानता है। यहां ब्रह्मज्ञान किसको नहीं आता! इस देश में ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसको ब्रह्मज्ञान न आता हो। थोड़ा अगर ब्रह्मज्ञान की चर्चा आ गई तो फिर तो कहना ही क्या, दो-चार शिष्य भी इकट्ठे हो जाएंगे, चिलम भी भर लाएंगे, पैर भी दबाएंगे, धूनी भी सम्हालेंगे, मजा ही मजा है। झंझट मिटी!
यही अब तक संन्यास समझा जाता रहा है। ऐसे संन्यास के दिन लद गए। ऐसे संन्यास का अब कोई भविष्य नहीं है। तुम्हारी पत्नी को मैं गलत नहीं कह सकता हूं; सदियों का अनुभव स्त्रियों के हृदय को बहुत कंपा गया है।
मैं तुमसे यही कहूंगा कृष्णदत्त, उसे यहां लाओ। जल्दी मत करो। अभी संन्यास लेने की इतनी कोई जल्दी मत करो। उसे यहां लाओ। उसे मुझे सुनने दो, समझने दो। वह स्वयं ही संन्यासिनी बनेगी, घबड़ाते क्यों हो! पहले उसे संन्यासिनी बना लेंगे, फिर तुम्हें बना लेंगे। और वही ज्यादा ठीक रास्ता है।
विवाह करते हैं न तो पति को पहले चलाते हैं, भांवर जब डालते हैं, पत्नी पीछे चलती है। यह मामला उलटा है, यह संन्यास का है। यहां पत्नी को पहले चला देते हैं, पति को पीछे चलाते हैं। तब भांवर खुलती है। खोलना हो तो उलटा ही चलना पड़ेगा।
तुम जरा रुको। तुम पत्नी को यहां ले आओ। इतना ही कर सको तो पर्याप्त है। तुमने अगर जल्दी की तो तुम अपने को भी नुकसान पहुंचाओगे, पत्नी को भी नुकसान पहुंचाओगे, परिवार को भी नुकसान पहुंचाओगे। और तुम जो संन्यास लोगे वह मेरा संन्यास नहीं होगा।
तुम कहतेः "पत्नी संन्यास लेने से रोकती है। उसे दुख भी नहीं देना चाहता हूं।"
यह तो बात अच्छी है। दुख तो किसी को भी नहीं देना। पत्नी को तो देना ही नहीं। उसे ऐसे ही तुमने पत्नी बना कर बहुत दुख दे दिया है, अब और क्या दुख

देना! पत्नी बना कर उसे तुमने कारागृह में ऐसे ही डाल दिया है, अब और उसे क्या सताना! उसकी सारी स्वतंत्रता छीन ली, उसके पंख काट दिए, उसको आर्थिक रूप से पंगु कर दिया। और हर साल बच्चे देते गए होओगे उसको। सो जवानी आई ही नहीं होगी, बुढ़ापा आ गया होगा। और अब बच्चों की गिचड़-पिचड़ में तुमने उसे डाल दिया और अब चले तुम संन्यास लेने!
नहीं, ऐसा नहीं! ले आओ उसे। उसे राजी कर लेंगे। संन्यास नाराजगी से नहीं होना चाहिए, राजी से होना चाहिए, तो उसमें सुगंध होती है, सौंदर्य होता है।
अब मेरी सौगंध तुम्हें है
देखो, मत पतवार सम्हालो!
यह आंधी है, ये लहरें हैं,
दुर्दिन बेला, नभ में घन हैं,
साध उठी है जरा देख लूं
कितना प्राणवान यह मन है; छोड़ मुझे दो तिमिर चक्र में देखो, तुम घर-बार सम्हालो। दांव-पेंच से अगर नियति के बच पाया यदि मैं हंस जीता, तो नर का इतिहास बनेगा,
नया, लिखूंगा जीवन गीता;
आमंत्रण है महाकाल का
नव अक्षत से थाल सजा लो!
मैं न चाहता तुम्हें छू सके
मेरे रहते तम की छाया,
मैंने तुमसे भी पाई है,
श्री, सुहाग ने जीवन पाया;
आऊंगा घबरा मत जाना
जाता हूं उठ हृदय लगा लो।
अब तक संन्यासी ऐसा पत्नियों से कहता रहा है कि स्वागत करो। जाता हूं
तो भी स्वागत करो। जाता हूं तो भी मेरे चरणों पर फूल चढ़ाओ। और पत्नियां रोती रही हैं हृदय में और बाहर फूल चढ़ाती रही हैं। और पत्नियां जार-जार होती रहीं, भीतर टूटती रहीं, खंड-खंड होती रहीं, और फिर भी पति का सम्मान करती रहीं, क्योंकि पति संन्यासी हो रहे हैं, त्यागी हो रहे हैं, मुनि हो रहे हैं।
नहीं, मैं तुमसे ऐसा नहीं कहूंगा। कहीं जाना नहीं है। तुम जहां हो वहीं संन्यास घटित हो सकता है। तुम जहां हो वहीं परमात्मा अवतरित हो सकता है। क्योंकि परमात्मा सब जगह है। उसके अतिरिक्त कोई और नहीं है। ऐसी कोई जगह नहीं जहां वह न हो।
तो कहां खोजने जाते हो? तुम्हारी पत्नी में भी वही विराजमान है। तुम्हारी पत्नी अगर रोक रही है तो वही रोक रहा है।
तुमसे मेरी सिर्फ इतनी ही प्रार्थना है, कृष्णदत्त, पत्नी को यहां ले आओ। और तुम अगर संन्यास लोगे तो फिर पत्नी यहां कभी न आ सकेगी। तुम्हारा संन्यास मेरे और उसके बीच दीवाल बन जाएगा। तुम जरा रुको। तुम पत्नी और मेरे बीच दीवाल न बनो।
और मैं तुम्हें एक बात साफ कह दूं, स्त्रियां मेरी भाषा जल्दी समझ लेती हैं पुरुषों की बजाय। और ऐसा आज ही नहीं है, ऐसा सदा से है। महावीर के संन्यासियों में तीस हजार भिक्षुणियां थीं और दस हजार भिक्षु। और यही अनुपात बुद्ध का था--तीन स्त्रियां और एक पुरुष। और यही अनुपात मेरे संन्यासियों का है। यह अनुपात शाश्वत है। और उसका कारण है, क्योंकि स्त्री हृदय की भाषा समझ लेती है। और स्त्री एक अर्थ में धन्यभागी है, क्योंकि पंडितों ने उसके सिर को खराब नहीं किया है--न द्विवेदी, न त्रिवेदी, न चतुर्वेदी। स्त्री का मस्तिष्क स्वच्छ है और उसका हृदय ज्यादा उन्मुक्त है। वह भाव को पकड़ लेती है। वह डाल-डाल पात-पात नहीं जाती,

वह जड़ को पकड़ लेती है। उसकी समझ बौद्धिक नहीं है, उसकी समझ हार्दिक है, आत्मिक है।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
चौथा प्रवचन

सरस राग रस गंध भरो

पहला प्रश्नः ओशो, आनंद क्या है? उत्सव क्या है?

कबीर, आनंद तो अपरिभाष्य है, अव्याख्य है, गूंगे का गुड़ है। स्वाद तो
ले सकते हो, जान तो सकते हो, जी तो सकते हो; मगर जना न सकोगे, बता न सकोगे। हृदय के अंतरतम में एक गीत तो उठेगा, मगर ओंठों तक ला न सकोगे।
अनगाया ही रह जाता है आनंद का गीत। अनकही ही रह जाती है आनंद की अनुभूति। और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने कहने की चेष्टा न की हो। सदियों- सदियों में, सनातन से सतत जानने वाले चेष्टा करते रहे हैं कि जतला सकें उनको जिनकी आंखें अभी बंद हैं; कि याद दिला सकें उनको जो दुख के गड्ढों में डूबे हुए हैं; कि बता सकें उन्हें कि जीवन में जहर ही जहर नहीं, अमृत भी है। मगर नहीं बतला सके। बताया ही नहीं जा सकता।
आनंद का स्वभाव शब्दातीत है। इशारे किए जा सकते हैं; जैसे कोई चांद की तरफ अंगुली उठाए। अंगुली चांद नहीं है। अंगुली से चांद का क्या लेना-देना! और कोई नासमझ हो तो अंगुली को पकड़ कर बैठ जाए कि यही चांद है। और ऐसे नासमझ बहुत हैं, जिन्होंने मील के पत्थरों को मंजिल समझ कर पूजा करनी शुरू कर दी है; जो सत्यों को तो भूल गए और शब्दों को छाती से लगा कर बैठ गए हैं; जिन्होंने बुद्धों का तो विस्मरण कर दिया, लेकिन उनके वचनों को सिर पर सदियों से ढो रहे हैं। उन वचनों का वजन इतना है हिमालय जैसा कि लोगों का चलना भी मुश्किल हो गया है; बोझ के नीचे दबे हैं। ज्ञान के बोझ के नीचे मर रहे हैं, सड़ रहे हैं।
नासमझ हैं लोग। इशारे पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारे किए जाते हैं,
उस तरफ आंख ही नहीं उठाते। उस तरफ आंख उठाना जरा मंहगा सौदा भी है। आनंद को जानना है तो दुख को खोने की तैयारी दिखानी होगी। और तुम कहोगे, यह भी कोई मंहगी बात है! हम सभी तो दुख खोने को तैयार हैं। नहीं, जरा भी नहीं, हजार बार नहीं। तुम कहते हो कि दुख खोने को तैयार हो, मगर दुख तुम खोना नहीं चाहते। दुख को तुम पकड़े हो, जोर से पकड़े हो। तुम्हारी दुविधा यही है। तुम ऐसा ही अनुभव करते हो कि दुख से मुक्त होने की तुम्हारी बड़ी प्रबल आकांक्षा है। और भीतर-भीतर तुम दुख के बीज बोते हो, दुख के जाल बुनते हो। क्योंकि तुम्हारे दुख में तुम्हारे बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। तुम्हारे दुख के बिना तुम्हारा अहंकार कैसे बचेगा?
आनंद में अहंकार तिरोहित हो जाता है, जैसे कपूर उड़ जाए बस ऐसे। दुख में अहंकार रहता है। और जिसको भी अपने अहंकार को बचाना है, उसे अपने दुख को बचाना होगा। बचाना ही नहीं, रोज-रोज बढ़ाना होगा, सजाना होगा, संवारना होगा। उसे नरकों पर नरक खड़े करने पड़ेंगे।
एक सज्जन मुझसे पूछते थे, कितने नरक हैं?
मैंने कहा, जितने खड़े करना चाहो उतने हैं। किन्हीं का एक से काम चल जाता है; किन्हीं का दो से नहीं चलता; किन्हीं का तीन से नहीं चलता। व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर है। कितना बड़ा अहंकार चाहते हो, उतने ही नरक खड़े करने पड़ेंगे। नरक अहंकार की सीढ़ियां हैं।
स्वर्ग चाहते हो? तो एक बात पक्की समझ लेना--मिटना होगा; अहंकार को विदा देनी होगी; ना-कुछ होने की तैयारी दिखानी होगी।
फकीरों ने सदा से कहा हैः जब तक मैं था तब तक परमात्मा नहीं; और जब मैं
न रहा तब परमात्मा हुआ!
यह "मैं" सिर्फ दुख में ही जी सकता है। दुख इसका भोजन है। और आनंद में इसकी मृत्यु हो जाती है। जैसे प्रकाश आ जाए और अंधेरा मर जाए, ऐसे ही आनंद आए तो अहंकार मर जाता है।
तो आनंद की तरफ पहला इशारा कि वहां कोई अहंकार नहीं पाया जाता; किसी भांति की अस्मिता नहीं पाई जाती; मैं हूं, यह भाव नहीं पाया जाता।
परमात्मा है, लेकिन मैं नहीं। सागर है, लेकिन बूंद नहीं।

दूसरी बात... पर याद रखना इशारे हैं ये, परिभाषाएं नहीं। इंगित! समझो
तो बड़े काम आ जाएं। समझो तो हजारों काम हल हो जाएं। दूसरा इंगितः आनंद तुम्हारा स्वभाव है। दुख अर्जित करना होता है बाहर से। दुख के लिए झोली फैलानी होती है। दुख मांगना पड़ता है। कोई दे तो मिले। आनंद--किसी से मांगे नहीं मिलता। कोई लाख देना चाहे तो भी नहीं दे सकता और तुम लाख मांगो तो भी मिल नहीं सकता।
दुख भिखमंगों की दुनिया का हिस्सा है; आनंद सम्राटों की। आनंद के लिए झोली नहीं फैलानी होती। आनंद किसी से मांगना नहीं होता। आनंद किसी से मिलता ही नहीं। आनंद तो तुम्हारी निजता है। आनंद तो तुम्हारा स्वभाव है। आनंद तो तुम लेकर ही आए हो। अभी भी जब तुम दुख से भरे हो, जब तुम्हारे चारों तरफ दुख की छायाएं खड़ी हैं, दुख के दंश, दुख के कांटे तुम्हारे प्राणों में छिदे हैं, जब दुख की फांसी लगी है--तब भी तुम्हारे अंतरतम में आनंद का झरना ही बह रहा है। उससे छूटने का कोई उपाय ही नहीं है। स्वभाव से कोई कैसे छूट सकता है! भूल सकते हो स्वभाव को, विस्मृत कर सकते हो स्वभाव को--विनष्ट नहीं।
आनंद भीतर जाने से मिलता है; दुख बाहर जाने से। दुख बहिर्यात्रा है; आनंद अंतर्यात्रा। दुख पर-निर्भर है; आनंद स्व-निर्भर।
ज्यां पाल सार्त्र का वचन महत्वपूर्ण है। उसने कहा है, दूसरा नरक है।
दि अदर इ.ज हेल।
इसमें सच्चाई का एक बहुत गहरा अंश है। दूसरा नरक है! लेकिन सिर्फ अंश
ही है सच्चाई का। और महत्वपूर्ण अंश नहीं, गैर-महत्वपूर्ण अंश है।
महत्वपूर्ण अंश तो जीसस के वचन में हैः दि किंगडम ऑफ गॉड इ.ज विदिन यू।
परमात्मा का राज्य तुम्हारे भीतर है। ये दो हिस्से हुए एक ही सिक्के के।
दूसरा दुख है, स्वयं का होना सुख है। दूसरा नरक है तो स्वयं का होना स्वर्ग है।
दुख के लिए मन के बड़े आयोजन चाहिए। मन इंतजाम करे, मन खूब आयोजन करे,
तो दुख मिल सकता है। मन अर्थात तुम्हारी सारी वासनाएं, आकांक्षाएं, अपेक्षाएं। मन अर्थात तुम्हारी सारी कामनाएं, इच्छाएं, अभिलाषाएं। मन यानी तुम्हारी सारी बहिर्गामी दौड़--विचार की, कल्पना की, स्मृति की। यह जो मन है, यह दुख का मूल उदगम है। इसी मन के केंद्र पर अहंकार है और परिधि पर सारी वासनाओं का जाल है।
आनंद अमनी दशा है; या जैसा कि संतों ने कहा, उन्मनी दशा है। जैसा झेन फकीर कहते हैं, ए स्टेट ऑफ नो माइंड। मन-शून्य अवस्था, चित्त-रहित अवस्था। पतंजलि ने कहा है, चित्त-वृत्ति-निरोध! योग की परिभाषा, कि जहां चित्त की सारी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। जहां चित्त की कोई वृत्ति नहीं रह जाती, कोई तरंग नहीं रह जाती। जहां चित्त ही नहीं रह जाता, क्योंकि चित्त तरंगों का ही जोड़ है। जहां तुम इतने शांत होते हो, तुम्हारे चैतन्य की झील इतनी मौन होती है कि एक लहर भी नहीं उठती--उस अनुभूति का नाम आनंद है। उस परम शांति का नाम आनंद है। उस स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाने का नाम आनंद है।
मैं तुम्हें आनंद की तरफ ले चल सकता हूं, ले चल रहा हूं। संन्यास कुछ
और नहीं, वही अंतर्यात्रा का दूसरा नाम है। ध्यान कुछ और नहीं, मन से मुक्ति का उपाय है। अमनी दशा की तरफ धीरे-धीरे सरकना है। लेकिन मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि आनंद क्या है। शब्दों में नहीं, मेरी आंखों में झांको! कबीर, मेरी आंखों में झांको! या मेरे पास बैठ कर अनुभव करो। मेरे हृदय की तरंगों को अपने हृदय की तरंगों में मिल जाने दो। मेरी अंगुलियों को तुम्हारे हृदय की वीणा पर खेलने दो। और तुम जानोगे कि आनंद क्या है। नहीं लेकिन, शब्दों में, व्याख्याओं में, परिभाषाओं में नहीं समाया
जा सकता है उस विराट आकाश को। इसलिए ज्ञानी नेति-नेति की बात करते रहे--यह भी नहीं, यह भी नहीं।
अहंकार आनंद नहीं है; यह नेति की भाषा हुई। मन आनंद नहीं है; यह नेति
की भाषा हुई। बाहर आनंद नहीं है; यह नेति की भाषा हुई। दूसरे में आनंद नहीं

है; यह नेति की भाषा हुई। मगर यह तो बताया कि आनंद क्या नहीं है। आनंद क्या है, यह तो अनबताया रह गया। अनबताया ही रहेगा।
मेरा हाथ पकड़ो! मेरे साथ चलो! मैं तुम्हें उस पार ले चलूं। यह नाव लेकर
उस पार से तुम्हारे लिए ही आया हूं। इसी किनारे पर मत पूछो कि वह किनारा कैसा है!
तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तुम पक्के हो जाना चाहते हो कि वह किनारा है भी? है तो कैसा है? है तो इस किनारे से बेहतर है न? कहीं ऐसा तो न हो कि दुविधा में दोई गए, माया मिली न राम! कहीं ऐसा न हो कि यह भी किनारा छूट जाए। माना कि यहां दुख हैं, लेकिन कभी-कभी सुख की झलकें भी हैं। और माना कि यहां कांटे बहुत हैं, मगर कांटों में कभी-कभी गुलाब भी तो खिलते हैं। और माना कि असफलता है, विषाद है, पीड़ा है, संताप है, सब हो, लेकिन आशा का दीया तो जलता है; आशा का दीया बुझा तो नहीं! कौन जाने वह किनारा हो कि न हो, यहां से दिखाई भी नहीं पड़ता। और अगर हो भी तो कौन जाने कि वह भी किनारा ऐसा ही किनारा हो। इतनी यात्रा करें और फिर ऐसा ही किनारा हाथ लगे। और यह भी हो सकता है कि वह किनारा इस किनारे से भी बदतर हो।
तुम्हारा भय भी मेरी समझ में आता है। तुम इसी किनारे पर आश्वस्त हो जाना चाहते हो, वह किनारा कैसा है? उस किनारे का आनंद क्या है? उस किनारे का अहोभाव क्या है? उस किनारे पर कौन से उत्सव, कौन से महोत्सव मनाए जा रहे हैं? वहां कैसी रोशनी है? वहां कैसे चांद-तारे हैं? वहां की वीणा में कैसे गीत उठते हैं, कैसा संगीत उठता है? तुम आश्वस्त होना चाहते हो।
मगर मैं लाख सिर पटकूं, कैसे तुम्हें आश्वस्त करूंगा? मैं उस किनारे
की बातें कर रहा हूं, रोज ही कर रहा हूं। और तुम उस किनारे की आकांक्षा से भी कभी-कभी भर उठते हो। मगर इस किनारे के फैलाव बहुत हैं। इस किनारे में तुमने जड़ें दूर-दूर तक फैला दी हैं। इस किनारे के साथ तुमने बहुत से संबंध बना लिए हैं। इस किनारे पर तुमने घर बसा लिया है। और बड़ी मुश्किल से बसाया है। एक-एक ईंट चुन-चुन कर बसाया है, जन्मों-जन्मों में बसाया है। इस किनारे पर ही तो तुम्हारी सारी आत्मकथा घटी है। इस सारे अतीत को छोड़ कर एक अनजान-अपरिचित आदमी के साथ, एक ऐसे मांझी के साथ जिसकी नाव में कभी पहले सवारी नहीं की, न जिसकी नाव का भरोसा है, न जिसकी पतवार का भरोसा है, न जिसका भरोसा है--हो भी भरोसा तो कैसे हो--किसी अज्ञात तट की यात्रा पर निकलना! मन आश्वस्त हो जाना चाहता है। मन सब तरह के तर्क से अपने को समझा लेना चाहता है। मन कहता है, इतना छोड़ कर जा रहा हूं तो पक्का हो तो ही जाना ठीक है। मगर कोई कैसे पक्का करे? न कृष्ण कर सके, न बुद्ध, न कबीर, न क्राइस्ट,
न मोहम्मद, न मंसूर। कोई निश्चित रूप से तुम्हें आश्वासन नहीं दे सकता, इसकी कोई गारंटी नहीं हो सकती। क्यों? क्योंकि उस किनारे पर जो है वह इस किनारे की भाषा में प्रकट नहीं होता।
ऐसे समझो कि जैसे किसी देश में हीरे-जवाहरात न होते हों, कंकड़-पत्थर
ही होते हों। और फिर हीरे-जवाहरातों के देश वाला आदमी उस दुनिया में आए और उनसे कहे कि ये क्या हैं, ये तो सब कंकड़ पत्थर हैं। तुमने हीरे-जवाहरात देखे? तुमने मोती-माणिक देखे? और लोग पूछें, कैसे होते हैं हीरे-जवाहरात? कैसे होते मोती-माणिक? और वह आदमी चारों तरफ खोजे कि कोई उदाहरण मिल जाए और कंकड़-पत्थर कंकड़-पत्थर ही पाए, तो क्या तुम्हें कंकड़-पत्थरों से उदाहरण दे?
वह कहेगा कि नहीं, तुम्हारी इस दुनिया की भाषा में मैं अपनी उस दुनिया
को प्रकट न कर सकूंगा। क्योंकि वह सत्य का उल्लंघन होगा। ये रंगीन कंकड़-पत्थर, इनसे मैं कैसे हीरे-जवाहरातों की खबर दूं? ये अनगढ़ कंकड़-पत्थर, इनसे मैं कैसे कोहिनूरों की खबर दूं? बेहतर है मैं चुप रहूं। बेहतर है कि मैं उस किनारे के गीत गाऊं, तुम्हें लालसा से भरूं, तुम्हारे भीतर एक उद्दाम अभीप्सा पैदा करूं उस किनारे पर चलने की, लेकिन उस किनारे के हीरे- जवाहरातों के संबंध में कुछ भी न कहूं। क्योंकि तुम्हारे कंकड़-पत्थरों से मैं कितना ही उस किनारे को समझाऊं, बात गलत हो जाएगी--बात बिल्कुल गलत हो जाएगी। और तुम ज्यादा से ज्यादा कंकड़-पत्थर ही समझ सकते हो। अगर मैं यह भी कहूं कि तुम्हारे कंकड़-पत्थरों से करोड़-करोड़ गुना ज्यादा कीमती! करोड़-

62

करोड़ गुना ज्यादा चमकदार! ज्यादा रंगीन! ज्यादा रोशन! तो भी जो अंतर होगा वह परिमाण का होगा; गुण का नहीं होगा, मात्रा का होगा। और असली अंतर मात्रा का नहीं है, असली अंतर गुण का है। उस किनारे पर गुणात्मक रूप से कुछ भिन्न घट रहा है।
दुख में और आनंद में परिमाण का भेद नहीं है, गुणात्मक भेद है। वे एक-दूसरे से विपरीत हैं। वे इतने विपरीत हैं कि ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि आनंद दुख का अभाव है।
इसलिए बुद्ध ने इस परिभाषा को चुनाः आनंद दुख का अभाव है। वही नेति- नेति की भाषा हो गई। मगर जो आदमी पूछ रहा है आनंद क्या है, उसे इससे तृप्ति नहीं मिलती कि दुख का अभाव है। बस दुख का अभाव? सिर्फ दुख न होंगे, बस? वह चाहता है कुछ विधायक, जिसे पकड़ सके; कुछ साकार, जो उसके प्राणों में रूप ले सके, आकार ले सके, दृश्य बन सके; कुछ, जिसे वह स्पर्श कर सके।
मगर आनंद का स्पर्श नहीं किया जा सकता। इस किनारे पर आनंद घटता ही नहीं। मन के जिस तट पर, कबीर, तुम अभी जी रहे हो वहां आनंद न कभी घटा है, न कभी घटेगा। तुम्हें यह किनारा छोड़ कर चलना होगा। ले चलने को राजी हूं।
तुम्हें उस तट तक पहुंचा दूंगा। मगर उस तट तक पहुंचने के पहले यह तट छोड़ना होगा।
हमारी चाह यह होती है कि पहले हम वह तट पा लें, फिर इसे छोड़ देंगे। गणित, तर्क यही कहेगा कि हाथ की आधी रोटी मत छोड़ देना पूरी की आशा में।
गणित और तर्क यही कहेगा कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं। जो पास है उसे मत छोड़ देना दूर की आशा में। कौन जाने वहां जाकर पता चले कि वह जो सुहावनापन था, सिर्फ दूर से दिखाई पड़ता था। लंबी यात्रा के बाद कहीं विफलता हाथ न लगे।
इसलिए ऐसे प्रश्न उठते हैं। मैं जानता हूं, तुम्हारा प्रश्न कोई सिर्फ बौद्धिक प्रश्न नहीं है। मेरे पास जो संन्यासी इकट्ठे हुए हैं, उनका कुतूहल बौद्धिक नहीं है। जिज्ञासा से भी ऊपर है उनकी बात; उनकी बात मुमुक्षा है। कुतूहल तो है ही नहीं; जिज्ञासा भी नहीं; मुमुक्षा है। वे जरूर जानना ही चाहते हैं। वे जरूर ठीक अनुभव करना चाहते हैं। मगर मन कहता है, कुछ प्रमाण मिल जाएं, कुछ सहारे मिल जाएं, कुछ बात सूझ-बूझ में आने लगे, तो हम भी उतरें इस नाव में, हम भी चलें उस किनारे!
मेरे करीब आओ। मेरे शब्दों को ही मत सुनो, मेरे शून्य को अनुभव करो। मेरे निःशब्द में तैरो। यह जो बुद्ध-ऊर्जा क्षेत्र निर्मित हो रहा है, इसमें सब भांति समर्पित हो जाओ--सब भांति, बेशर्त! धीरे-धीरे बूंद-बूंद अमृत टपकेगा। धीरे-धीरे बूंद-बूंद अमृत कंठ से नीचे उतरेगा। तुम जानोगे, निश्चित जानोगे कि आनंद क्या है।
और तुमने पूछा हैः "उत्सव क्या है?"
जब आनंद उपलब्ध होता है और उसे कहने का कोई उपाय नहीं मिलता, तो उस असहाय अवस्था में उत्सव पैदा होता है। उत्सव, आनंद को भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता, इसलिए पैदा होता है। नाच कर कोई कहता है! जो नहीं कहा जा सकता वाणी से, नाच कर कहता है--पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! वह उत्सव। नहीं कह सकता वाणी से, बांसुरी बजा कर कहता है। कृष्ण ने बांसुरी बजाई। नहीं कह सकता, नहीं बतला सकता, तो अपनी अलमस्ती से, अपने होने से उसके प्रमाण देता है; वही उत्सव है।
उत्सव तो यहां चल रहा है। इसी उत्सव के कारण तो अनेक लोगों को कठिनाई
हो गई है, बड़ी कठिनाई हो गई है।
कल ही मैंने तुम्हें कहा। किसी ने प्रश्न पूछा था कि कानजी स्वामी और उनके भक्त कहते हैं कि जो सम्यक-दृष्टि को उपलब्ध हो गया, वहां राग-रंग कैसा? और मैं तुमसे कहता हूं, जो सम्यक-दृष्टि को उपलब्ध हो गया, वहीं राग है, वहीं रंग है--असली राग, असली रंग! तुमने अभी राग कहां जाना? रंग कहां जाना? तुम्हारे जीवन की फाग अभी आई कहां? गुलाल अभी उड़ी कहां? तुम तो ठीकरे बीन रहे हो, उसी को राग-रंग कहते हो। तुम तो बाजार में कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर रहे हो, उसी को राग-रंग कहते हो। और जो उस बाजार के कूड़ा-कर्कट को छोड़ देता है, उसको तुम समझते हो सम्यक-दृष्टि! त्यागी! व्रती! वीतरागी!

तुम्हें कुछ पता नहीं। वीतरागता राग से मुक्ति नहीं है, वीतरागता महाराग का अवतरण है। वीतरागता राग से भाग जाना नहीं है, बल्कि असली राग का, महाराग का जन्म है।
मैं तुमसे कहता हूं कि महावीर से बड़े भोगी इस जगत में दूसरे नहीं हैं। तुम अपने को भोगी मत समझना। तुम क्या खाक भोगी हो! रोगी हो सकते हो, भोगी नहीं हो। और जिसको तुम भोग समझ रहे हो--खाया-पीया, मौज कर लिया--सिर्फ उस भोग के धोखे में जीवन को गंवा रहे हो। भोगते हैं महावीर, भोगते हैं बुद्ध, भोगते हैं रामकृष्ण, भोगते हैं रमण। इन्हें मैं कहता हूं--महाभोगी, परम भोगी! क्योंकि वे परमात्मा को भोगते हैं। वे परमात्मा को ही पी जाते हैं। वे परमात्मा को ही आत्मसात कर लेते हैं।
यहां उत्सव मनाया जा रहा है, क्योंकि यहां आनंद घटा है, घट रहा है। यहां धीरे-धीरे लोग आनंद के स्वाद में तल्लीन होते जा रहे हैं। यहां वीणा बजी है, धीरे-धीरे बहरे से बहरे कानों को भी सुनाई पड़ने लगी है। बीन के बजने पर जैसे सांप नाच उठता है, ऐसे आनंद के भीतर बजने पर तुम भी नाच उठोगे; उसी नाच का नाम उत्सव है।
उत्सव का अर्थ हैः अनुग्रह। उत्सव का अर्थ हैः धन्यवाद। उत्सव का अर्थ हैः मुझ अपात्र को इतना दिया! इतना जिसकी न मैं कल्पना कर सकता था न कामना! मेरी झोली में पूरा आकाश भर दिया! मेरे हृदय में पूरा अस्तित्व उंडेल दिया! मेरे इस छोटे से घट में शाश्वत अमृत ढाल दिया! अब मैं क्या करूं?
उस अपूर्व आनंद की स्थिति में नाचोगे नहीं? गाओगे नहीं? उल्लास, उमंग, उत्साह न जगेगा? हजार-हजार रूपों में जगेगा। उसका नाम उत्सव है। आनंद का अनुभव और फिर वाणी से उसे कहने का उपाय न मिलने के कारण उत्सव पैदा होता है। उत्सव आनंद की अभिव्यक्ति है--शब्द में नहीं; जीवन में, आचरण में।
जो लोग बाहर से देखते हैं, जो कभी यहां आते भी नहीं, उन्हें तो यही लगता है कि राग-रंग चल रहा है। यहां उत्सव पैदा हुआ है। और स्वभावतः, परमात्मा भी उतरे तुम्हारे भीतर तो भी तुम्हारा उत्सव तो बहुत कुछ वैसा ही होगा न जैसा जगत का होता है। किसी को धन मिल जाए और नाच उठे और मीरा को कृष्ण मिले और मीरा नाच उठी। अगर तुम नाच ही देखोगे तो दोनों का नाच एक जैसा ही मालूम होगा, क्योंकि नाच तो देह से प्रकट हो रहा है। लेकिन कारण भिन्न-भिन्न हैं। मीरा इसलिए नाच रही है कि ध्यान मिला, और तुम इसलिए नाच रहे हो कि लाटरी मिल गई। दोनों के कारण भिन्न हैं।
लेकिन बाहर से तो कारण का पता नहीं चलेगा। और भीतर उतरने की तो किसकी तैयारी है? किसके पास समय है? किसके पास उत्सुकता है? भीतर उतरने में तो डर भी है कि कहीं ऐसे राग-रंग के जगत में जाकर हम भी डूब न जाएं, रंग न जाएं। एक वीतरागता का बड़ा झूठा रूप इस देश में प्रचलित हुआ है--निषेधात्मक, नकारात्मक, जीवन-विरोधी, उत्सव-विरोधी। वह सिकुड़ना सिखाता है, फैलना नहीं।
मैं तुम्हें फैलना सिखाता हूं। मैं तो मानता हूं, विस्तीर्ण होना ही ब्रह्म के निकट आने का उपाय है। हमारा शब्द "विस्तार" ब्रह्म शब्द का ही एक रूप है। ब्रह्म का अर्थ होता है जो विस्तीर्ण होता चला जाए। जिसके विस्तार का कोई अंत ही न आए। फैलता जाए, फैलता जाए।
आनंद फैलाव है, दुख सिकुड़ाव है। तुमने अनुभव भी किया होगा, जब तुम दुखी होते हो तो बिल्कुल सिकुड़ जाते हो। जब तुम दुखी होते हो, तुम द्वार-दरवाजे बंद करके एक कोने में पड़ रहते हो। तुम चाहते हो कोई मिले न, कोई बोले न, कोई देखे न, कोई दिखाई न पड़े। बहुत दुख की अवस्था में आदमी आत्मघात तक कर लेता है। वह भी सिकुड़ने का ही अंतिम उपाय है। ऐसा सिकुड़ जाता है कि अब दोबारा न देखना है रोशनी सूरज की, न देखना है चेहरे लोगों के, न देखना है खिलते गुलाब। जब अपना गुलाब न खिला, जब अपना सूरज न उगा, जब अपने प्राण न जगे, तो अब दुनिया जागती रहे इससे क्या, हम तो सोते हैं!
आत्महत्या अंतिम उपाय है सिकुड़ने का। उससे ज्यादा और सिकुड़ना नहीं हो सकता। दुख आत्मघाती है। और आनंद आत्मा की विस्तीर्णता है। आत्मा इतनी बड़ी

होती जाती है कि दूसरे भी उसमें समाने लगते हैं। आत्मा इतनी बड़ी हो जाती है कि चांद-तारे उसके भीतर आ जाते हैं।
स्वामी राम ने कहा है कि जब मैं सोया था तो सोचता था चांद-तारे मुझसे बाहर हैं; जब मैं जागा तो मैंने पाया चांद-तारे मेरे भीतर हैं। मेरे ही भीतर सूरज और मेरे ही भीतर चांद और मेरे भीतर तारे घूम रहे हैं।
किसी ने राम से पूछा कि चांद-तारे बनाए किसने? राम ने कहा, मुझसे पूछते हो? अरे, मुझसे पूछते हो? मैंने ही बनाए! मैंने ही पहली बार अंगुली के इशारे से चांद-तारों को जुंबिश दी थी।
तुम तो पागल कहोगे इस आदमी को। लेकिन यह आदमी बड़ी गहरी और पते की बात
कह रहा है। यह यह कह रहा है कि अब राम नहीं हूं मैं--राम, जिसे तुम जानते रहे। अब तो मैं सच में ही राम हूं--राम, जिसे तुम नहीं जानते। अब तो मैं विराट के साथ एक हूं।
विराट के साथ एक हो जाना आनंद। लेकिन आनंद को समा तो न सकोगे। आनंद तो उछलेगा। आनंद तो अभिव्यक्त होगा। आनंद तो बजेगा--हजार-हजार रागों में।
आनंद तो बरसेगा--हजार-हजार रंगों में। वही उत्सव है।
कबीर, आनंद है आत्म-अनुभव। उत्सव है परमात्मा के प्रति धन्यवाद।
जिन कुंजों में श्याम विहंसते
राधा का भी ध्यान वहीं है।
नेक अनेक देख छवि मैंने
मधुकर व्रत लेकर झूला डाला,
फूली डाल कदंब बिना ऋतु
गलबांही की सरसी माला;
जहां जहां श्यामा रस गर्वित छवि का नवल विधान वहीं है। रास रचे छवि जीवन पथ पर
कलकंठों का लगता मेला,
मगर एक स्वर विलग कि सबसे जिसने अठखेली से खेला;
हंसी खेल यह जीवन भर का
जिसमें भ्रम विज्ञान नहीं है। नास्तिक के सर पर चढ़ बोली, आंख मूंद कर हंसी ठिठोली, तुम भगवान बनो मैं पूजूं,
शतदल की लेकर मधु टोली
अब मंदिर में देवी शारदा
सीखा पूजन ध्यान वहीं है।
जिन कुंजों में श्याम विहंसते
राधा का भी ध्यान वहीं है।
खोजी तो राधा है; जिसे खोज रहा है वह कृष्ण है। खोजी तो स्त्रैण है; जिसे खोज रहे, परमात्मा, वही एकमात्र पुरुष है।
जिन कुंजों में श्याम विहंसते
राधा का भी ध्यान वहीं है।
अपने ध्यान को ले चलो दूर, ले चलो उस पार--जिन कुंजों में श्याम विहंसते! जहां परमात्मा का वास है, उस तरफ अपनी आंखों को टिकाओ। जैसे-जैसे परमात्मा की तरफ सरकोगे वैसे-वैसे आनंद का स्वाद उपलब्ध होना शुरू हो जाएगा।
नेक अनेक देख छवि मैंने
मधुकर व्रत लेकर झूला डाला
डालो अब झूले!
फूली डाल कदंब बिना ऋतु
और अगर तुम्हारी तैयारी हो तो बिना ऋतु भी कदंब की डाल फूल जाए। और तुम्हारी तैयारी हो तो कभी भी वसंत आने को तैयार है। वसंत द्वार पर खड़ा है। मधुमास तुम्हारी झोली भर देने को आतुर है--फूलों से, तारों से।

फूली डाल कदंब बिना ऋतु
गलबांही की सरसी माला;
जहां जहां श्यामा रस गर्वित
छवि का नवल विधान वहीं है।
और तुम्हें थोड़ी-थोड़ी झलक मिलने लगे श्याम की, सत्य की, या स्वयं की,
कि बस तुम्हारे जीवन में झूला डला! कि आया सावन! कि आया गीत गाने का मौसम! कि पैरों में घूंघर बांधने का क्षण! कि ढोलों पर थाप देने का क्षण! कि बजे अब बांसुरी!
यह सुनते हो दूर कोयल की कुहू-कुहू! ऐसे ही तुम्हारे प्राणों में भी कोयल छिपी है। तुम्हारे अंतरतम में भी पपीहा है, जो पुकार रहा है--पी कहां! मगर तुम्हारे सिर में इतना शोरगुल है कि उस शोरगुल के कारण तुम सुन नहीं पाते। और तुम्हारे शोरगुल में जिस चीज से सहारा मिल जाए, उसे तुम्हारा शोरगुल जल्दी से पकड़ लेता है।
आनंद स्वभाव ने एक प्रश्न पूछा है कि आपको पंद्रह साल से सुनता हूं; सुनने के बाद घंटों चिंतन-मनन की धारा जारी रहती। लेकिन परसों आपका प्रवचन सुना, बहुत खोखला लगा।
पंद्रह साल में आनंद स्वभाव ने कभी पत्र नहीं लिखा! पंद्रह साल सुनने
के बाद चिंतन-मनन घंटों चलता था। वह चिंतन-मनन क्या है? वह तुम्हारे भीतर शोरगुल है। और परसों चूंकि चिंतन-मनन नहीं चला तो प्रवचन खोखला लगा। परसों की ही बात तुम्हारे काम की थी, स्वभाव, बाकी पंद्रह साल तो यूं ही गए। परसों की ही बात सुन कर अगर तुम चुप हो गए होते, मौन हो गए होते, शून्य हो गए होते, तो कोई बंद द्वार खुल जाता।
लेकिन लोग सुनने भी आते हैं तो शून्य के लिए थोड़े ही आते हैं; सुनने आते हैं तो ज्ञान के लिए। कुछ पकड़ में आए, कुछ बुद्धि काम करे, कुछ बुद्धि का विचार चले, कुछ तारतम्य बंधे। तो पंद्रह साल सब ठीक चला, क्योंकि मेरे विचारों ने तुम्हारे भीतर और विचारों का ऊहापोह जगा दिया।
लोग सोचते हैं चिंतन-मनन बड़ी मूल्य की चीजें हैं। दो कौड़ी का मूल्य है उनका। शून्य के अतिरिक्त और किसी चीज का कोई मूल्य नहीं है।
अगर मेरी बात सुन कर तुम्हें खोखली लगी थी, मौका चूक गए। उस क्षण तुम्हें भी बिल्कुल खोखला हो जाना था। तो शायद पहली दफा शून्य की झलक मिलती। मगर तुम सोचने लगे होओगे कि अरे, आज का प्रवचन जंचा नहीं। आज की बात कुछ मन रुची नहीं। आज की बात में कुछ था नहीं, कोई सार हाथ नहीं आया। तुम इस विचार में पड़ गए होओगे। उसी विचार से तो यह प्रश्न आया। आदमी का मन बहुत अजीब है। वह हर चीज में से उपाय निकाल लेता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी रात अचानक मुल्ला को झकझोर कर बोली--आधी रात--सुनते हो जी, नीचे से खटर-पटर की आवाजें आ रही हैं, लगता है कि चोर आ गए हैं। जरा नीचे जाकर देखना तो। मुल्ला नसरुद्दीन ने कंबल सिर के ऊपर खींचते हुए कहा, बकवास बंद करो, चुपचाप सो जाओ। कहीं चोर भी खटर-पटर की आवाजें करते हैं? वे तो बिना कोई आवाज किए ही अपना काम करते हैं। कोई चोर वगैरह नहीं हैं। चूहे वगैरह कूदते होंगे। शांत रहो। और मुल्ला तो कंबल ओढ़ कर बिल्कुल मुर्दा हो गया। कुछ समय बाद मुल्ला की पत्नी ने फिर मुल्ला को हिलाया और बोली, सुनते हो जी, नीचे से आवाजें अब बिल्कुल नहीं आ रही हैं, देखना कहीं चोर तो नहीं हैं।
आदमी का मन यहां से भी, वहां से भी, सब तरफ से विचारों का ऊहापोह खोजता है; निर्विचार होने से डरता है।
स्वभाव, तुमसे कहा किसने कि मेरी बातें सुन कर चिंतन-मनन करो? सुनो और भूलो। कहते हैं न, नेकी कर और कुएं में डाल। सुनो और भूलो। जरा भी भीतर सरकने मत दो। मेरे पास शून्य सीखना है। मेरे पास तुम्हें देखना है कि तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है। क्योंकि उस ना-कुछ में ही सब कुछ के घटने की संभावना है।
लेकिन मन भी बड़ा अजीब है। पंद्रह साल में धन्यवाद नहीं दिया, एक दिन बात नहीं जमी तो शिकायत आ गई! शिकायत करने के लिए मन कितना आतुर होता है, धन्यवाद देने में कितना कंजूस!

मैंने सुना है, एक मुसलमान बादशाह का एक नौकर था। उसे बड़ा प्यारा था। नौकर जैसा संबंध नहीं रहा था उससे, मैत्री जैसा संबंध हो गया। जी-जान देने को तैयार रहा सदा बादशाह के लिए। शिकार को गए थे। दोनों रास्ता भटक गए। एक झाड़ के नीचे रुके छाया में। सांझ होने लगी, भूख भी लगी। उस वृक्ष में एक ही फल लगा है--अनजाना, अपरिचित फल। सम्राट ने हाथ बढ़ा कर तोड़ लिया। नौकर ने कहा, मालिक, मुझे मालूम है कि आपको भूख लगी है; मुझे भी भूख लगी है। लेकिन यह अपरिचित फल है, इसकी पहली फांक मुझे खाने दें। पता नहीं जहरीला हो, पता नहीं घातक हो। जब मैं हां कह दूं तब आप चखें।
सम्राट ने चार फांकें कीं, एक फांक अपने दास को दी। उसने फांक ली और इतने आनंद से खाई, आंखों में उसके आनंद के आंसू आ गए। उसने कहा, मालिक, बहुत आपके सत्संग में सुस्वादु भोजन मिले हैं, किसको मिले होंगे! मगर नहीं, इस फल का मुकाबला नहीं, एक फांक और!
दूसरी भी ले ली, वह भी खा गया। और सम्राट से बोला कि मालिक, कभी आपसे कुछ मांगा नहीं; आज पहली बार मांगता हूं--तीसरी फांक और। सम्राट ने तीसरी फांक भी दे दी; इतना ही प्रेम था उस नौकर पर। लेकिन जब उसने कहा, मालिक, बस आखिरी इच्छा पूरी कर दें, अब जीवन में दोबारा आपसे कुछ कभी नहीं मांगूंगा। यह चौथी फांक भी दे दें। तो सम्राट ने कहा, तू अब ज्यादती कर रहा है। और जल्दी से सम्राट ने एक कौर उस फांक में से ले लिया। तत्क्षण थूका! इतनी जहरीली चीज उसने जीवन में कभी खाई ही नहीं थी। उसने नौकर से कहा, पागल, तू मांग-मांग कर ये फांकें खा गया! यह तो शुद्ध जहर है! और तूने कहा क्यों नहीं?
तो उस नौकर ने कहा, मालिक, जिन हाथों से बहुत सुस्वादु भोजन मिले, उस हाथ से मिली एक-दो कड़वी फांकों के लिए शिकायत करनी शोभा नहीं देता, इसलिए चुप रह गया। क्या बात करनी इस एक फांक की!
लेकिन स्वभाव को एक दिन बात नहीं जमी, शिकायत तत्क्षण आ गई। पंद्रह साल जमी, धन्यवाद नहीं आया। ऐसा हमारा मन है। और मैं तुमसे कहता हूं कि जो बात तुम्हें नहीं जमी, वही काम की थी।
तुम्हें जमती ही कौन सी बातें हैं? तुम्हें जमती वे ही बातें हैं जो तुमसे तालमेल खाती हैं। जो तुमसे तालमेल खाती हैं वे तुमको ही मजबूत कर जाती हैं। जो बातें तुमसे तालमेल नहीं खातीं, जो तुम्हें मजबूत नहीं करतीं, उनमें तुम्हें सार नहीं मालूम होता।
फिर जिनका मुझसे प्रेम है, उनके लिए यह असंभव है कि मैंने जो बात कही
हो वह खोखली हो। यह सोचना असंभव है। अगर खोखली भी कही है तो उसमें भी कुछ राज होगा। वह भी किसी के लिए कही गई होगी। हो सकता है वह स्वभाव के लिए ही कही गई थी।
आनंद है अनुभव। लेकिन हमारे मन की आदतें तो दुख ही दुख की हैं। शिकायत, निंदा, विरोध, ये हमारी मन की आदतें हैं। इन आदतों से जागो तो आनंद तो अभी घट जाए--इसी क्षण, यहीं! क्योंकि सारा अस्तित्व आनंद से भरपूर है, लबालब है। सिर्फ तुम उसे अपने भीतर लेने को राजी नहीं हो। तुम्हारे द्वार-दरवाजे बंद हैं।
खोलो द्वार-दरवाजे! ये तुम्हारी सारी इंद्रियां आनंद के द्वार बनें।
यह तुम्हारी देह आनंद को झेलने के लिए पात्र बने। यह तुम्हारा मन आनंद को अंगीकार करने के योग्य शांत बने। ये तुम्हारे प्राण आनंदित होने के योग्य विस्तीर्ण हों। फिर जो होगा वह उत्सव है। फिर तुम भी चांद-तारों के साथ, फूलों के साथ, वृक्षों के साथ, हवाओं के साथ नाच सकोगे। उत्सव आनंद की अभिव्यक्ति है।
जब सौरभ सुधा लुटाता है
तब परिचित पाहुन जीवन का
कुसुमित कानन में आता है
रजनीगंधा की छाया में।
रस-रूप-रंग चितवन पुलकन
तन-मन से आंख मिचौनी कर
छिप-छिप बरसाता मधु के घन

इंद्रासन की मधु माया में। मोती निर्माल्य सजे जग की वह रात बड़ी छोटी होती
प्रिय बात बड़ी खोटी होती
कंचन पारस की काया में।
जब सौरभ सुधा लुटाता है
तब परिचित पाहुन जीवन का
कुसुमित कानन में आता है
रजनीगंधा की छाया में।
तुम तैयार होओ! प्यारा आएगा, पाहुन आएगा। तुम तैयार होओ! तुम अभी से मत पूछो कि प्रकाश कैसा होगा, आंख खोलो! तुम अभी से मत पूछो कि वीणा-वादन के स्वर कैसे होंगे, कान खोलो!
कबीर, जागो! आनंद बरस रहा है। आनंद तुम्हारा स्वभाव है, अस्तित्व का स्वभाव है। तुम सोए हो, इसलिए अपरिचित हो। खोजना नहीं है कहीं--सिर्फ जाग, सिर्फ जाग; सिर्फ होश, सिर्फ पुनः स्मृति अपने निज की--और तत्क्षण बरस उठता है आनंद, जैसे मेघ बरस जाएं!
और बरसते मेघों के नीचे नाचते मोर देखे? वही उत्सव है। ऐसे ही मैं तुम्हें भी नाचते हुए देखना चाहूंगा। नृत्य के ही पाठ दे रहा हूं, गीत के ही पाठ दे रहा हूं।
गजगामिनि विहरो!
हृदय कुंज के छवि-निकुंज में
प्रिय आश्रम हरिणी सुवासिनी
प्रेमपुंज रस-प्रभा हासिनी
प्रकृति-वधू लीला प्रकाशिनी
ऊषा से रजनी तक छमछम सरस राग रस गंध भरो। तृषा, तपन से जब जल उन्मन
नयन निहार थके सावन घन
बन बन तब करुणा की बदरी
बरसाती हो स्वाती के कण
पीर हरण मादक मधु मुरली सब दिन अधर धरो। प्रेम-पराग शक्ति सीता की
विश्व-मंत्र जीवन-गीता की
राधा हो तुम नट नागर की
गति नव प्रकृति पुनीता की
रति हो कामदेव की मेरे नित छवि सी लहरो।
गजगामिनि विहरो!
ऊषा से रजनी तक छमछम सरस राग रस गंध भरो।
पीर हरण मादक मधु मुरली सब दिन अधर धरो।
जो द्वार तुम्हारे लिए खोल रहा हूं वह अदृश्य मंदिर का द्वार है। तुम अगर अपने किनारे की जंजीरों, अपने किनारे के मोह, सुरक्षाओं, सुविधाओं को छोड़ने को तैयार हो, तो देर नहीं लगेगी, जरा भी देर नहीं लगेगी।
क्या पूछते हो आनंद क्या है? आनंद को ही क्यों न जान लें! क्या पूछते
हो उत्सव क्या है? उत्सव ही क्यों न मना लें!
आनंद के संबंध में कितना ही जान लो, आनंद नहीं होगा। उत्सव के संबंध में कितना ही जान लो उत्सव नहीं होगा। उत्सव शब्द उत्सव नहीं, आनंद शब्द आनंद नहीं। आनंद भी अनुभव, उत्सव भी अनुभव।

दूसरा प्रश्नः ओशो, क्या जीवन मात्र संघर्ष ही है--संघर्ष और संघर्ष?
या कुछ और भी?

कृष्ण तीर्थ, जीवन तो वही हो जाता है जैसा तुम उसे बनाते हो। तुम मालिक हो, जीवन तुम्हारा है। तुम नियंता हो, तुम निर्णायक हो।

जीवन तो एक अनगढ़ पत्थर है, इसे तुम क्या बनाओगे, सब तुम पर निर्भर है। चाहो तो इस अनगढ़ पत्थर को किसी की छाती पर रख दो; चाहो तो इस अनगढ़ पत्थर को किसी के सिर पर पटक दो, प्राण ले लो; चाहो तो इस अनगढ़ पत्थर को गढ़ो, मूर्ति बनाओ, जो किसी मंदिर में शोभा बने, जो किसी मंदिर की आराध्य बने। सब तुम पर निर्भर है। जीवन तो मिलता है एक कोरी किताब की भांति; गालियां लिखोगे कि गीत, सब तुम पर निर्भर है। जीवन तो मिलता है एक वीणा की भांति; शोरगुल मचाओगे कि संगीत पैदा करोगे, सब तुम पर निर्भर है।
तुम मुझसे पूछते होः "क्या जीवन मात्र संघर्ष ही है?"
अधिक लोग जीवन को संघर्ष की तरह ही जानते हैं। क्योंकि उन्होंने अहंकार को ही जीवन का आधार बना लिया। अहंकार है तो जीवन संघर्ष है। अगर अहंकार ही अहंकार है तो जीवन संघर्ष ही संघर्ष है। और ऐसा संघर्ष, जिसमें विजय कभी नहीं आएगी। ऐसा संघर्ष, जिसमें दौड़ोगे तो बहुत, लेकिन पहुंचोगे कहीं भी नहीं। ऐसा संघर्ष, जिसमें जलोगे तिल-तिल, सड़ोगे तिल-तिल, और मृत्यु के अतिरिक्त तुम्हारी कोई उपलब्धि नहीं होगी। अहंकार अगर तुम्हारे जीवन का आधार है तो तुम्हारा जीवन सिर्फ युद्ध होगा--ईर्ष्या, जलन, वैमनस्य, हिंसा। अहंकार अगर तुम्हारे जीवन की बुनियाद है तो तुम्हारा जीवन सिवाय राजनीति के और कुछ भी नहीं होगा।
और ध्यान रखना, जब मैं कहता हूं राजनीति, तो मेरा अर्थ उन सारी जीवन-दिशाओं से है जहां तुम दूसरों के साथ प्रतियोगिता करते हो, स्पर्धा करते हो। वह जो बाजार में धन के लिए लड़ रहा है, वह भी राजनीति में है। वह राज करना चाहता है धन के बल पर। वह जो ज्ञान के सागर में है, जो किसी विश्वविद्यालय में उपाधियों पर उपाधियां इकट्ठी किए जा रहा है, वह भी राजनीति में है। वह राज करना चाहता है उपाधियों के बल पर।
मैं बनारस में मेहमान था। जिनके घर मेहमान था वे एक सज्जन को मुझे मिलाने लाए। उन्होंने बड़ी प्रशंसा में कहा कि आप मिलने योग्य व्यक्ति हैं। आप बारह विषयों के एम.ए. हैं! मैंने कहा, इन्हें बाहर करो, क्योंकि इनका दिमाग खराब होगा। जिंदगी गंवाई बारह विषयों में एम.ए. होने में! एकाध विषय में एम.ए. होना ठीक है, माफ किया जा सकता है; लेकिन बारह विषयों में! होश है इस आदमी को? क्या करोगे बारह विषयों में एम.ए. होकर?
नहीं लेकिन, यह भी अकड़ बन गई है। यह भी अहंकार को तृप्त कर रही है बात
कि और कोई इतने ज्यादा विषयों में एम.ए. नहीं जितने विषयों में मैं हूं। हालांकि इस आदमी के चेहरे को देख कर मुझे जरा भी नहीं लगा कि इसमें बुद्धिमत्ता की कोई भी झलक है। हो भी नहीं सकती। बारह विषयों में एम.ए. होते-होते बुद्धू हो ही जाएगा, कोई भी हो जाएगा। विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धिमत्ता को बचा कर निकल आना बड़ा कठिन काम है।
जब पहली दफा हेनरी थारो विश्वविद्यालय से घर वापस लौटा तो गांव के एक बूढ़े आदमी ने आकर उसकी पीठ ठोंकी और कहा, बेटा, मैं बहुत खुश हूं। हेनरी थारो ने कहा, क्या आप खुश हैं क्योंकि मैं विश्वविद्यालय की बड़ी उपाधि लेकर लौटा? उसने कहा कि नहीं-नहीं, मुझे गलत मत समझना। मैं इसलिए खुश हूं, मैं देखने आया था कि विश्वविद्यालय ने तुझे बरबाद तो नहीं कर दिया, मगर तू बच कर आ गया। तेरी आंखों में अभी भी बुद्धिमानी दिखाई पड़ती है। तेरी आंखों में अभी भी थोड़ा होश है, चमक है। तेरे चेहरे पर अभी भी प्रतिभा है। तू अपनी प्रतिभा बचा कर लौट आया, यही देखने मैं आया था।
विश्वविद्यालय में से निन्यानबे प्रतिशत लोग प्रतिभा बचा कर नहीं लौटते। और जो आदमी बारह विषयों में एम.ए. करता रहा, करता ही रहा, जिंदगी इसी में गंवा दी... यह भी राजनीति है।
राजनीति का अर्थ है--स्पर्धा, संघर्ष। यहां दूसरों को हराना है, दूसरों को मिटाना है। यहां दूसरों के सिरों के ऊपर चढ़ना है। यहां दूसरों की लाशें भी पट जाएं तो कोई फिकर नहीं, लेकिन पदों पर, प्रतिष्ठा पर, सम्मान पर पहुंचना है। अहंकार की छाया है राजनीति।
इसलिए निर-अहंकारी राजनीति में नहीं हो सकता--न धन की, न पद की, न ज्ञान की, न त्याग की। निर-अहंकारी स्पर्धा में ही नहीं होता। निर-अहंकारी सिर्फ होता है--आनंदमग्न मस्त! निर-अहंकारी के लिए कल नहीं है सुख--अभी है सुख,

यहीं है सुख। अहंकारी के लिए कल। लड़ेगा, धन कमाएगा, बचाएगा, बड़े पदों पर पहुंचेगा--तब। तब सुख होगा। अहंकारी का सुख किन्हीं शर्तों पर निर्भर है। कृष्ण तीर्थ, अगर अहंकार से जीओगे तो जीवन संघर्ष है। और अगर जीवन संघर्ष है, तो याद रखना, तुम परमात्मा को कभी पहचान न पाओगे। क्योंकि परमात्मा को संघर्ष से नहीं जाना जाता। परमात्मा के साथ कोई युद्ध थोड़े ही करना है। परमात्मा पर कोई विजय थोड़े ही करनी है। परमात्मा के सिर पर जाकर कोई विजय का झंडा थोड़े ही गाड़ना है। परमात्मा कोई धन तो नहीं है जिसे तुम तिजोड़ी में बंद करोगे। परमात्मा कोई वस्तु तो नहीं है जिसे तुम मुट्ठी में बांध लोगे। और परमात्मा कोई ऐसी चीज तो नहीं है कि एक ने पा लिया तो अब तुम कैसे पाओगे?
जरा फर्क समझना। अगर एक आदमी ने धन पा लिया तो तुम्हें पाने में मुश्किल हो जाएगी। उतना धन कम हो गया। अगर एक आदमी प्रधानमंत्री हो गया तो अब तुम कैसे होओगे? एक ही कुर्सी पर दो आदमी तो नहीं बैठ सकते। हालांकि कोशिश करते हैं कई-कई आदमी एक साथ बैठने की। अभी इस वक्त इस देश में तीन आदमी एक साथ बैठने की कोशिश में लगे हुए हैं--एक ही कुर्सी पर! मगर एक कुर्सी पर कैसे बैठोगे? धक्कमधुक्की होगी।
इस जगत में सब चीजें सीमित हैं। इस जगत में जो कुछ भी पाने जाओगे, वहां तुम पाओगेः अगर किसी और ने पा लिया तो तुम्हारी उतनी कम हो गई बात। उतना तुम्हें कम मिलेगा। इसलिए अहंकार प्रत्येक को दुश्मन मानता है, कहे चाहे न कहे। तुम चाहे लाख कहो कि हम सब मित्र हैं, मगर जब तक तुम संघर्ष में लगे हो, कैसे मित्र हो सकते हो? तुम भी धन खोजने चले हो, तुम्हारा पड़ोसी भी धन खोजने चला है; तुम मित्र हो कैसे सकते हो? अगर पड़ोसी ने पहले पा लिया तो तुम चूकोगे। अगर तुमने पहले पा लिया तो पड़ोसी चूकेगा। दुश्मनी ही होगी; मित्रता ऊपर-ऊपर होगी, औपचारिक होगी।
हमने प्रतिस्पर्धा को इतना फैला दिया है, हमने लोगों के खून में राजनीति का जहर इस तरह डाला है कि इस दुनिया में मैत्री असंभव हो गई है। शत्रु ही शत्रु हैं और संघर्ष ही संघर्ष है। इस संघर्ष और शत्रुता में घिरे तुम परमात्मा को नहीं जान पाओगे; आनंद नहीं जान पाओगे; उत्सव नहीं जान पाओगे। तुम्हारे जीवन में जो घटने योग्य है, कभी नहीं घटेगा। तुम रहोगे, किसी तरह घिसटोगे और मरोगे। तुम्हारी जिंदगी में कोई भी अर्थवत्ता नहीं होगी। भगवत्ता ही नहीं होगी तो अर्थवत्ता कैसे होगी? भगवान के बिना कोई अर्थ नहीं है।
लेकिन यही कोई एक ढंग नहीं है जीने का। जीने के और भी ढंग हैं। संघर्ष
से क्यों जीते हो, समर्पण से क्यों नहीं? लड़ कर जीने की भी बात क्या, बिना लड़ कर भी जीया जा सकता है।
आशा की रात में
तारों की बारात देख
शबनम सी जिंदगी
आई उतर
धरती के पात पर
करके सिंगार।
सिंदूर भरे मांग से
सूरज का मुख हुआ लाल
गाल पर अनुराग की पड़ी भंवर; जाने कब ढुलक गई
पानी की माया
मिट्टी की काया
रामनाम सत्य है
धरती का सत्य
युग-युग का सत्य
फिर सत्य से भय क्यों
इसलिए कि नर ने
न मानी हार

लड़ रहा काल से
लड़ता रहा है
लड़ता रहेगा
वंशज भगीरथ का
जब तक न बहता है वह
तृण सा गंगा की धार में।
एक तो है तैरना और एक है तृण सा गंगा की धार में बह जाना। एक तो है लड़ना। लड़ने का अर्थ है अस्तित्व को तुमने शत्रु मान लिया। और एक हैः मैं अस्तित्व का अंग हूं; लड़ना किससे है? बह जाना गंगा की धार में तृण की भांति। फिर जीवन में एक दूसरा ही स्वाद उत्पन्न होता है। उसे ही मैं संन्यास का स्वाद कहता हूं--बह जाना गंगा की धार में! लड़ना मत। तैरना मत। गंगा पराई थोड़े ही है; अपनी है। गंगा से हम भिन्न तो नहीं। तैरना क्या है? लड़ना क्या है?
कृष्ण तीर्थ, जीवन संघर्ष ही संघर्ष नहीं है। यद्यपि अधिक लोग इसी तरह जीवन को जान पाते हैं। जीवन आनंद भी है, उत्सव भी है। और मजा यह है कि संघर्ष संताप पैदा करता है। संघर्ष विफलता लाता है, विजय नहीं। और समर्पण अपूर्व शांति पैदा करता है और सफलता लाता है, विजय लाता है।
परमात्मा के जगत के नियम बड़े अनूठे हैं। इसलिए तो कबीर जैसे लोग उलटबांसियां कहे। उलटबांसियां इसलिए कहे कि परमात्मा के नियम बड़े अनूठे हैं। जैसे इस जगत में अगर कुछ बचाना है तो छीना-झपटी करो। अगर परमात्मा के जगत में कुछ बचाना है तो बांटो, लुटाओ।
जीसस ने कहा हैः जो बचाएगा, उसका छीन लिया जाएगा। और जो लुटाएगा, उसका
बच जाएगा।
जीसस ने कहा हैः जो इस जगत में प्रथम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होंगे। और जो इस जगत में अंतिम हैं, मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम। वहां गणित कुछ और है।
अगर धन को लुटाओगे तो भिखमंगे हो जाओगे। और अगर ध्यान को लुटाया तो सम्राट हो जाओगे। अगर धन को लुटाया तो आज नहीं कल मांगोगे दर-दर। और अगर प्रेम को लुटाया तो अनंत स्रोत खुल जाएंगे जो बंद पड़े हैं। रोज नया-नया प्रेम तुम्हारे भीतर उमगता आएगा। नये-नये झरने ताजी-ताजी प्रेम की ऊर्जा तुम्हारे भीतर लाने लगेंगे।
जो कुआं बंद कर दिया जाए, वह सड़ जाता है। उसके झरने भी बंद हो जाते हैं। उसका जल भी विषाक्त हो जाता है। कुआं तो जीता है--भरते रहो पानी, उलीचते रहो पानी। इसलिए ज्ञानी कहते हैंः दोनों हाथ उलीचिए! एक हाथ से भी काम नहीं चलेगा, दोनों हाथों से उलीचो! बांटो!
मगर बांट तो तुम तभी सकते हो, जब तुम्हारे जीवन की दिशा संघर्ष न हो, समर्पण हो। जब तुम्हारे जीवन की दिशा युद्ध न हो, विश्राम हो। जब तुम तलवार लेकर न जूझो, बल्कि हाथ में एक फूल लेकर। जब कि तुम्हारे ओंठों पर बांसुरी हो, हाथ में तलवार नहीं।
इसलिए मुझे राम की प्रतिमा, धनुर्धारी राम की प्रतिमा कभी भी मन नहीं भाई। मेरे मन तो बांसुरी बजाते कृष्ण भाए। धनुर्धारी राम, कहीं न कहीं संघर्ष के प्रतीक हैं, युद्ध के प्रतीक हैं; कहीं न कहीं जीतना है। और इसलिए ठीक किया इस देश ने कि कृष्ण को छोड़ कर किसी को पूर्णावतार नहीं कहा; सबको अंशावतार कहा। शुभ हैं, सुंदर हैं, मगर आंशिक रूपों में। कृष्ण को पूर्णावतार कहा। क्यों? क्योंकि बांसुरी पर जाकर बात पूर्ण हो गई; आनंद पर जाकर बात पूर्ण हो गई; उत्सव पर जाकर बात पूर्ण हो गई। अब उसके पार कुछ भी न बचा।
कृष्ण तीर्थ, बांसुरी की टेर सुनो, बांसुरी क्या कह रही है! संघर्ष नहीं, समर्पण। और विजय सुनिश्चित है। तैरो मत, बहो। गंगा सागर की तरफ जा ही रही है, तुम भी पहुंच जाओगे।
लेकिन कुछ हैं, जो न केवल तैरते हैं, बल्कि उलटी धार में तैरते हैं; जो गंगोत्री की तरफ तैरने की कोशिश करते हैं। उसका भी कारण है, अहंकार को तभी रस आता है जब उलटा कुछ करो।

इस अहंकार के रस के मनोविज्ञान को तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि सदियों में हजारों-हजारों लोगों ने इसी तरह अपने जीवन को गंवाया है--इसी मनोविज्ञान को न समझने के कारण। एक आदमी सिर के बल खड़ा हो जाता है, भीड़ लग जाती है फौरन। तुम पैर के बल घंटों खड़े रहो, कोई नहीं आता। बड़ी अजीब दुनिया है! उलटे में इसका बड़ा रस है। एक आदमी उलटे-सीधे शरीर को मोड़े-तोड़े, बस लोग कहने लगते हैं कि महायोगी! कोई आदमी उपवास करे, और लोग कहते हैं त्यागी- तपस्वी! कोई धूप में खड़ा रहे, कोई शीत में गलता रहे, कोई हिमालय पर जाकर नंगा बैठ जाए, बर्फ पड़ती रहे--बस लोग बड़े आदर-भाव से भर जाते हैं।
यह आदर-भाव बहुत भिन्न नहीं है उस आदर-भाव से जो तुम सर्कस में दिखलाते हो सर्कसी काम करने वाले लोगों के प्रति--कि कोई रस्सी पर चल रहा है नट और तुम्हारी धक-धक बंद हो जाती है कि कहीं गिर न जाए! कोई आग के वर्तुलों में से कूद रहा है; सिंहों को नचा रहा है।
मैंने सुना है, एक सर्कस में ऐसा हुआ। सिंहों को नचाने वाला अचानक हार्ट-फेल से मर गया। भर दुपहरी, ज्यादा समय नहीं, शाम होने का वक्त आ रहा है। सर्कस का विज्ञापन हो चुका है। क्या करें अब, क्या न करें! मैनेजर ने गांव भर में डुंडी पिटवाई कि है कोई हिम्मतवर जो कुछ सिंहों के साथ खेल कर सके? और देख कर चकित हुआ। आई एक महिला--सुंदर महिला!
उसने कहा, तू क्या कर सकती है? तू क्या कर पाएगी?
उसने कहा, मैं वह चमत्कार कर सकती हूं जो अभी तक किसी ने नहीं किया होगा। मैं जाकर घुटने के बल खड़ी हो जाऊंगी और तुम देखना, सिंह आकर अगर मेरा चुंबन न ले!
मैनेजर भी हैरान हुआ। चमत्कार उसने बहुत देखे थे; जिंदगी भर मैनेजरी
की सर्कस की, एक से एक काम देखे थे, मगर यह काम उसने नहीं देखा था। उसने कहा, तू ठीक कह रही है? ठीक, तो जो तेरी मांग हो पूरी कर देंगे। आज का खेल अगर सफल हुआ तो तू जो तनख्वाह मांगेगी, कल से तेरी तनख्वाह तय हो जाएगी। और आज का तुझे जो चाहिए वह मांग ले।
उसने कहा, पीछे ले लेंगे। लेने की बात पीछे हो जाएगी, पहले खेल हो जाए। गांव भर में खबर भी फैल गई। उस दिन बड़ी भीड़-भाड़ थी। क्योंकि लोगों ने देखा था हंटर मारते हुए आदमी को, शेरों को नचाते। लेकिन एक सुंदर स्त्री वहां जाकर घुटने टेक कर खड़ी हो जाएगी और सिंह उसका चुंबन लेगा! और यह हुआ। यह युवती आई। आकर घुटने टेक कर खड़ी हो गई। सिंह आया। सकता छा गया। लोगों की सांसें बंद हो गईं। लोगों ने तो समझा कि मारी गई बेचारी। हाथ में कोड़ा तक नहीं है। बचाव का कोई उपाय नहीं है। और मैनेजर ने दरवाजा भी बंद करवा दिया था कठघरे का, क्योंकि यह खतरनाक मामला है; नया मामला है, क्या हो इसका परिणाम! शेर कहीं बाहर आ जाए, कुछ से कुछ हो जाए। सिंह दहाड़ा। उसकी दहाड़ सुन कर क्या हालत हुई होगी! मगर युवती अडिग खड़ी रही। सिंह दहाड़ा, पास आया, फिर पूंछ हिलाने लगा। फिर आकर उसने स्त्री का चुंबन लिया। और वापस जाकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया।
चमत्कार! मैनेजर ने घोषणा की कि दस हजार रुपये हम ईनाम देते हैं इस स्त्री को। अगर कोई मर्द यहां हो जो यह काम करके दिखा सकता हो तो उसके लिए हम बीस हजार देंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा हो गया। लोगों में और सकता छा गया कि यह बड़े मियां को क्या सूझा! ये किसी एक ताकतवर कुत्ते को भी न सम्हाल पाएं। अब तो और भी सन्नाटा छा गया। मुल्ला पहुंचा। मैनेजर ने कहा कि बड़े मियां, आप होश में हो? ज्यादा तो नहीं पी गए हो? क्या करने जा रहे हो? यह सिंह है और इस स्त्री को इसने चूमा है; आप भी यह खेल करके दिखा सकते हो?
उसने कहा, बिल्कुल दिखा सकता हूं! लेकिन पहले इस सिंह के बच्चे को बाहर निकालो। यही खेल करके दिखाऊंगा। मगर जब तक सिंह भीतर है तब तक मैं भीतर नहीं जाऊंगा।
लोग उलटे काम करने में राजी होते हैं। इसके लिए कोई राजी नहीं हुआ। लोगों ने कहा, अरे बड़े मियां, हमें पहले ही पता था कि तुमसे क्या होगा। यह भी तुमने खूब शर्त लगाई! हो-हल्ला हो गया, हंसी-मजाक हो गई।

लोग उलटे में रस लेते हैं। उलटे से अहंकार की तृप्ति होती है। तुम किनको पूजते हो? कभी तुमने सोचा है अपने हृदय में कि तुम्हारी पूजा सिर्फ इसी कारण तो नहीं है कि वह आदमी सिर के बल खड़ा है? कुछ उलटा कर रहा है? कुछ अस्वाभाविक कर रहा है? कोई आदमी कांटों पर लेटा है, बस तुम्हारे मन में एकदम श्रद्धा के सुमन खिले! तुम पागल हो? कांटों पर लेट जाने से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? पहाड़ों पर गिरती बर्फ में नग्न बैठ जाने से क्या होगा? ये सब अभ्यास हैं और सरल अभ्यास हैं, कोई बहुत कठिन अभ्यास नहीं हैं।
तुम्हें अगर तैयारी करनी हो तो मैं तुम्हें सुगम उपाय बता सकता हूं।
ये बहुत सरल अभ्यास हैं। तुम जरा अपने छोटे बच्चे को कहना कि सुई लेकर तू जरा मेरी पीठ पर जगह-जगह चुभा। और तुम चकित हो जाओगे, बच्चा अगर पचास जगह चुभाएगा तो तुम को सिर्फ पच्चीस जगह सुई चुभती मालूम पड़ेगी और पच्चीस जगह तुम्हें मालूम ही नहीं पड़ेगी। क्योंकि पीठ पर ऐसे बिंदु हैं, जो ब्लाइंड स्पॉट हैं, जिनमें कोई चुभन पता नहीं चलती। बस वह जो कांटों पर लेट रहा है, उसका कुल काम इतना है कि उसने अपनी पीठ पर कहां-कहां चुभन पता नहीं चलती वे बिंदु खोज लिए हैं। और कांटों की जो सेज बनाई है वह इस ढंग से बनाई गई है कि बस वे उन्हीं बिंदुओं पर कांटे पड़ते हैं जिन बिंदुओं पर चुभन का पता नहीं चलता।
तुम चाहो तो आज ही जाकर घर अपने बच्चे को कहना, जरा सुई लेकर तू मेरी पीठ पर चुभा। और तुम बहुत हैरान होओगे, बच्चा चुभा रहा है और तुम्हें पता नहीं चल रहा! पता ही नहीं चल रहा, क्योंकि उस स्थान पर कोई संवेदनशील तंतु नहीं है। तुम्हारी पूरी पीठ अनुभव नहीं करती; थोड़े से बिंदु हैं जो अनुभव करते हैं। बस उनको छोड़ दो, बाकी पर तुम भी लेट सकते हो कांटों पर।
तिब्बत में लामा अभ्यास करते हैं श्वास की एक खास प्रक्रिया का। एक खास ढंग से श्वास लेना गहरी और उसको खास समय तक भीतर रोकना; फिर उसे झटके से बाहर फेंक देना। फिर तीव्रता से श्वास लेना; पूरे फेफड़ों को भर लेना; फिर उसे भीतर रोकना। साधारणतः तुम जो श्वास लेते हो, इससे तुम्हें उतनी गरमी मिलती है जितनी तुम्हारे शरीर को जरूरी है। यह जो तिब्बती ढंग है श्वास लेने का--पूरे फेफड़े को भर देना। तुम आमतौर से जो श्वास लेते हो, उससे तुम्हारा एक तिहाई फेफड़ा श्वास से भरता है। छह हजार छिद्र अगर तुम्हारे फेफड़े में हैं तो केवल दो हजार छिद्रों तक श्वास पहुंचती है। चार हजार छिद्रों में कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठी होती रहती है। वह जो तिब्बती ढंग है, उसमें पूरे छह हजार छिद्र आक्सीजन से भर जाते हैं। तीन गुनी मात्रा में आक्सीजन तुम्हारे भीतर हो जाती है। आक्सीजन अग्नि है। अगर उतनी आक्सीजन को तुम अपने भीतर रोक सको तो तुम्हारा खून उत्तप्त होने लगता है। उस उत्तप्त खून के कारण बरफ भी पड़ती रहे तो तुम्हारे शरीर से पसीना चूता रहेगा।
अब यह सिर्फ साधारण अभ्यास है। यह तुम कर सकते हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। मगर तिब्बती लामा को लोग इसीलिए सम्मान देते हैं, कि चमत्कार! इसको कहते हैं योग-बल!
यह न योग-बल है, न कोई चमत्कार है। और जितने चमत्कार तुम सोचते हो वे
सब इसी तरह के हैं; उन सब की व्यवस्था है। मगर कोई आदमी उलटा कर रहा है और तुम्हारे मन में समादर पैदा होता है। इस कारण दुनिया में धर्म करीब-करीब सर्कस का खेल हो गया।
मैं एक ऐसा धर्म देखना चाहता हूं दुनिया में जो स्वाभाविक हो। उसको सम्मान दो जो बिल्कुल स्वाभाविक है। उसको सम्मान दो जो बिल्कुल प्राकृतिक है। तो अधिकतम लोग इस दुनिया में धार्मिक हो सकेंगे। और सबसे ज्यादा स्वाभाविक बात क्या है? संघर्ष से मुक्त हो जाना। क्योंकि जो संघर्ष से मुक्त हुआ, उसके तनाव गए, उसकी चिंताएं गईं। जो संघर्ष से मुक्त हुआ, वह शिथिल हुआ, विश्राम को उपलब्ध हुआ।
गंगा की धार में उलटे मत तैरो; गंगा की धार में साथ बहो। यह धार अपनी है। हम भी इस धार के हिस्से हैं। जीवन की इस गंगा में बहते चलो; यह गंगा सागर तक पहुंच ही जाएगी। यह जा ही रही है; तुम नाहक परेशान हो रहे हो।

तुम्हारी हालत वैसी है जैसे एक सम्राट राजमहल लौट रहा था शिकार खेल कर; रास्ते में उसे एक बूढ़ा आदमी मिला जो सिर पर गठरी लादे हुए चल रहा है किसी तरह। बहुत बूढ़ा है और बोझ ज्यादा है। ऐसे सम्राटों को दया नहीं आती; लेकिन एक तो शिकार करके लौट रहा था; जंगल था, अकेला था और इस बूढ़े आदमी को बड़ी देर से देख रहा था कि घसिट रहा है। कहा कि रुक, तू आकर मेरे रथ में बैठ जा। बूढ़े की हिम्मत तो नहीं पड़ी, लेकिन सम्राट आज्ञा दे तो इनकार भी नहीं कर सका। तो किसी तरह सिकुड़ कर सम्राट के चरणों में रथ में बैठ गया। मगर वह जो रखे है सिर पर बोझ, वह सिर पर ही रखे रहा। सम्राट ने कहा, अरे पागल, अब यह बोझ सिर पर क्यों रखे है, इसको नीचे क्यों नहीं रख देता? उसने कहा कि नहीं महाराज नहीं, आपकी इतनी कृपा क्या कम है कि आपने मुझे रथ में बिठाल लिया! अब आपके रथ पर अपने सिर का बोझ भी डालूं, नहीं-नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा। यही तुम्हारी दशा है। यह बूढ़ा समझ रहा है कि यह सिर का जो बोझ है, रथ पर नहीं पड़ रहा है। रथ पर तो पड़ ही रहा है, चाहे रथ पर रखो और चाहे अपने सिर पर रखो, क्योंकि तुम भी रथ पर हो। अब तुम नाहक अपने सिर पर ढोना चाहो तो तुम्हारी मर्जी।
जीवन की धारा अपने आप परमात्मा की तरफ बह रही है। बह ही रही है। अब तुम अगर गंगोत्री की तरफ तैरो तो तुम्हारी मर्जी। अगर धारा के साथ बहने को राजी हो जाओ, पहुंच जाओगे।
मगर एक बात ख्याल रखना, धारा के साथ बहे कि न तुम्हें कोई त्यागी कहेगा, न कोई तपस्वी कहेगा, न कोई महात्मा कहेगा। धारा के साथ बहे कि लोग कहेंगे, अरे, राग-रंग में पड़े! लोग कहेंगे, अरे, यह कैसा संन्यास! मेरे संन्यासी को यही तो आलोचना झेलनी पड़ रही है। क्योंकि मैं संन्यास एक जीवन की स्वाभाविक दशा मानता हूं। मैं तुम्हें अगर उलटा चलना सिखाऊं, तुम्हें बड़ा सम्मान मिलेगा। मैं तुम्हें जीवन की जो सहज गति है, उसके साथ तालबद्ध होना सिखा रहा हूं; तुम्हें सम्मान मिलने वाला नहीं है। तुम चाहना भी मत। न मिले तो इसके कारण विषादग्रस्त भी न होना। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। झेन फकीर कहते हैंः जब भूख लगे, खा लो; जब प्यास लगे, पी लो; जब नींद आ जाए, सो जाओ। बस इससे ज्यादा और कोई साधना नहीं।
मगर ऐसे आदमी को क्या तुम सम्मान दोगे--भूख लगे खा ले, प्यास लगे पी ले, नींद आए सो जाए? तुम कहोगे, इसमें योग कहां है? यम-नियम इत्यादि का क्या हुआ? आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, उस सब का क्या हुआ? जब भूख लगे खा ले, जब नींद लगे सो जाए, जब प्यास लगे पी ले। यह कोई साधना हुई! मगर मैं तुमसे कहता हूं, यही असली साधना है--सहज योग! अगर सहज योग को समझो, कृष्ण तीर्थ, बह चलो तृण की तरह गंगा की धार में, फिर जीवन संघर्ष नहीं है--फिर जीवन उत्सव है, महोत्सव है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, इस जीवन में मैंने दुख ही दुख क्यों पाया है?

सुजाता, दुख ही दुख अगर पाया है तो बड़ी मेहनत की होगी पाने के लिए, बड़ा श्रम किया होगा, बड़ी साधना की होगी, तपश्चर्या की होगी! अगर दुख ही दुख पाया है तो बड़ी कुशलता अर्जित की होगी! दुख कुछ ऐसे नहीं मिलता, मुफ्त नहीं मिलता। दुख के लिए कीमत चुकानी पड़ती है।
आनंद तो यूं ही मिलता है; मुफ्त मिलता है; क्योंकि आनंद स्वभाव है। दुख अर्जित करना पड़ता है। और दुख अर्जित करने का पहला नियम क्या है? सुख मांगो और दुख मिलेगा। सफलता मांगो, विफलता मिलेगी। सम्मान मांगो, अपमान मिलेगा। तुम जो मांगोगे उससे विपरीत मिलेगा। तुम जो चाहोगे उससे विपरीत घटित होगा। क्योंकि यह संसार तुम्हारी चाह के अनुसार नहीं चलता। यह चलता है उस परमात्मा की मर्जी से।
जीसस ने अंतिम प्रार्थना कीः हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो!
यह अंतिम भी है प्रार्थना, यही प्राथमिक भी होनी चाहिए--हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो! मेरी मर्जी बीच में न आए।
सुजाता, तू अपनी मर्जी बहुत बीच में ले आई होगी, इससे दुख ही दुख पाया है। अपनी मर्जी को हटाओ! अपने को हटाओ! उसकी मर्जी पूरी होने दो। फिर दुख

भी अगर हो तो दुख मालूम नहीं होगा। जिसने सब कुछ उस पर छोड़ दिया, अगर दुख भी हो तो वह समझेगा कि जरूर उसके इरादे नेक होंगे। उसके इरादे बद तो हो ही नहीं सकते। जरूर इसके पीछे भी कोई राज होगा। अगर वह कांटा चुभाता है तो जगाने के लिए चुभाता होगा। और अगर रास्तों पर पत्थर डाल रखे हैं उसने तो सीढ़ियां बनाने के लिए डाल रखे होंगे। और अगर मुझे बेचैनी देता है, परेशानी देता है, तो जरूर मेरे भीतर कोई सोई हुई अभीप्सा को प्रज्वलित कर रहा होगा; मेरे भीतर कोई आग जलाने की चेष्टा कर रहा होगा।
जिसने सब परमात्मा पर छोड़ा, उसके लिए दुख भी सुख हो जाते हैं। और जिसने सब अपने हाथ में रखा, उसके लिए सुख भी दुख हो जाते हैं।
दुख पाया है हमने सुख के संवर्धन के नाम पर
दर्द मिला है हमें प्यार के आवंटन के नाम पर
अन्य सभी कुछ वैकल्पिक था आंसू ही अनिवार्य थे
बेआवाज रुदन पाया है गीत-सृजन के नाम पर
गहराई में गिरे सतत हर ऊंचाई के वास्ते
अवरोहण ही पाया हमने आरोहण के नाम पर
संबंधों वाली सूची से नाम हमारा काट दिया
हमें दूरियां मिलीं निकटता के गोपन के नाम पर कलियों में छुपकर कांटों ने हमें निरंतर दंश दिए
सर्पों के कुंडल पाए हैं आलिंगन के नाम पर
जन्म उपासी प्यास चली है जब-जब भी व्रत खोलने
रख-रख दिए अंगारे अधरों पर चुंबन के नाम पर
हम समग्र जीवन जीते हैं, भ्रम था, हमको ज्ञात न था
टुकड़े-टुकड़े मौत मिली है इस जीवन के नाम पर
जिसे तुम जीवन समझ रहे हो, वह जीवन नहीं है, टुकड़े-टुकड़े मौत है। जन्म
के बाद तुमने मरने के सिवाय और किया ही क्या है? रोज-रोज मर रहे हो। और जिम्मेवार कौन है? परमात्मा ने जीवन दिया है, मृत्यु हमारा आविष्कार है। परमात्मा ने आनंद दिया है, दुख हमारी खोज है।
प्रत्येक बच्चा आनंद लेकर पैदा होता है; और बहुत कम बूढ़े हैं जो आनंद लेकर विदा होते हैं। जो विदा होते हैं उन्हीं को हम बुद्ध कहते हैं। सभी यहां आनंद लेकर जन्मते हैं; आश्चर्यविमुग्ध आंखें लेकर जन्मते हैं; आह्लाद से भरा हुआ हृदय लेकर जन्मते हैं। हर बच्चे की आंख में झांक कर देखो, नहीं दीखती तुम्हें निर्मल गहराई? और हर बच्चे के चेहरे पर देखो, नहीं दीखता तुम्हें आनंद का आलोक? और फिर क्या हो जाता है? क्या हो जाता है? फूल की तरह जो जन्मते हैं, वे कांटे क्यों हो जाते हैं?
जरूर कहीं हमारे जीवन की पूरी शिक्षण की व्यवस्था भ्रांत है। हमारा पूरा संस्कार गलत है। हमारा पूरा समाज रुग्ण है। हमें गलत सिखाया जा रहा है। हमें सुख पाने के लिए दौड़ सिखाई जा रही है। दौड़ो! ज्यादा धन होगा तो ज्यादा सुख होगा। ज्यादा बड़ा पद होगा तो ज्यादा सुख होगा।
गलत हैं ये बातें। न धन से सुख होता है, न पद से सुख होता है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धन छोड़ दो या पद छोड़ दो। मैं इतना ही कह रहा हूं, इनसे सुख का कोई नाता नहीं। सुख तो होता है भीतर डुबकी मारने से। हां, अगर भीतर डुबकी मारे हुए आदमी के हाथ में धन हो तो धन भी सुख देता है। अगर भीतर डुबकी मारे हुए आदमी के हाथ में दुख हो तो दुख भी सुख बन जाता है। जिसने भीतर डुबकी मारी, उसके हाथ में जादू आ गया, जादू की छड़ी आ गई। वह भीड़ में रहे, तो अकेला। वह शोरगुल में रहे, तो संगीत में। वह जल में चलता है, लेकिन जल में उसके पैर नहीं भीगते।
तू पूछती है सुजाताः "इस जीवन में मैंने दुख ही दुख क्यों पाया है?"
अगर तू किसी पंडित-पुरोहित से पूछेगी तो वह कहेगा, पिछले जन्मों में पाप किए होंगे। उससे तुझे राहत मिलेगी कि अब क्या किया जा सकता है? पिछले जन्म में जो हुआ हुआ। पंडित-पुरोहित कहेगा, अब जो पिछले जन्म में किया किया; अब इस जन्म में मत करना। पति को परमेश्वर मान। चरण दाब उनके। भजन-कीर्तन कर, यज्ञ-हवन कर। अगले जन्म में सुख मिलेगा।

अगले जन्म में क्या होगा, इसका कुछ पक्का नहीं। अगला जन्म भी होगा कि नहीं, इसका कुछ पक्का नहीं। कोई लौट कर बताता नहीं कि यज्ञ-हवन किए थे तो सुख मिला कि नहीं मिला। इसलिए पंडित का धंधा चलता है। पंडित के धंधे को तोड़ना बहुत मुश्किल है, क्योंकि वह जो चीजें बेचता है वे दिखाई पड़ती ही नहीं।
मैंने सुना है कि न्यूयार्क की एक दुकान ने विज्ञापन दिया कि अदृश्य पिन, बालों में लगाने के अदृश्य पिन आ गए हैं; जिनको लेना हो ले जाएं। बिक्री शुरू हो गई। महिलाएं और ऐसे मौके पर छूट जाएं--कतारें लग गईं! अदृश्य पिन! दिखाई न पड़ें, तब तो मजा आ गया। पिन दिखाई पड़ता है तो जरा बेहूदा सा तो लगता ही है।
एक महिला ने खरीदा। डब्बी खोली। उसमें कुछ दिखाई तो पड़े ही नहीं। दिखाई पड़ने का तो कोई सवाल ही नहीं था; अदृश्य पिन दिखाई कैसे पड़ें? उस महिला ने कहा, कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं। तो उसने कहा, अदृश्य पिन हैं, ये दिखाई कैसे पड़ेंगे? तो उसने पूछा कि हैं भी इसमें कि नहीं? अब उस दुकानदार ने कहा, यह मत पूछो। तीन सप्ताह से स्टाक नहीं है, मगर बिक्री तो जारी है। अदृश्य धंधे हैं; उसमें पुरोहित का धंधा सबसे अदृश्य है। तू अगर किसी पंडित-पुरोहित के पास गई होती तो तुझे सांत्वना भी मिलती कि पिछले जन्मों के पाप हैं; कटे जा रहे हैं, कट जाने दो। कट ही जाना अच्छा है। जो किया है, उसको भर जाना ही ठीक है। अगले जन्म में सुख ही सुख होगा।
यह मैं तुझसे नहीं कह सकता। ये दुख अगर तुझे मिल रहे हैं तो पिछले जन्मों के नहीं हैं। पिछले जन्मों के दुख पिछले जन्मों में मिल गए होंगे। परमात्मा उधारी में भरोसा नहीं करता। अभी आग में हाथ डालोगे, अभी जलेगा, अगले जन्म में नहीं। और अभी किसी को दुख दोगे तो अभी दुख पाओगे, अगले जन्म में नहीं। यह अगले जन्म की तरकीब बड़ी चालबाज ईजाद है, बड़ा शड्यंत्र है, बड़ा धोखा है।
अगर अभी प्रेम करोगे तो अभी सुख बरसेगा और अभी क्रोध करोगे तो अभी दुख बरसेगा। सच तो यह है, क्रोध करने के पहले ही आदमी क्रोध से भस्मीभूत हो जाता है। दूसरे को जलाओ, उसके पहले खुद जलना पड़ता है। दूसरे को दुख दो, उसके पहले खुद को दुख देना पड़ता है।
ये पिछले जन्मों के दुख नहीं हैं। अभी तू जो कर रही है, उसी का परिणाम है। पहले तो मेरी बात सुन कर तुझे चोट लगेगी, क्योंकि सांत्वना नहीं मिलेगी। लेकिन अगर मेरी बात समझे तो छुटकारे का उपाय भी है। तो तुझे खुशी भी होगी। अगर इसी जन्म की बात है तो कुछ किया जा सकता है। यही मैं कह रहा हूं कि अभी कुछ किया जा सकता है।
सुख छोड़ो! सुख की आकांक्षा छोड़ो! सुख की आकांक्षा का अर्थ है--बाहर से कुछ मिलेगा, तो सुख। बाहर से कभी सुख नहीं मिलता। सुख की सारी आकांक्षा को ध्यान की आकांक्षा में रूपांतरित करो। सुख नहीं चाहिए, आनंद चाहिए। और आनंद भीतर है।
तो भीतर जितना समय मिल जाए, सुजाता, उतना भीतर डुबकी मारो। जब मिल जाए, दिन-रात, काम-धाम से बच कर, जब सुविधा मिल जाए, पति दफ्तर चले जाएं, बच्चे स्कूल चले जाएं, तो घड़ी दो घड़ी के लिए द्वार-दरवाजे बंद करके--घर के ही नहीं, इंद्रियों के भी द्वार-दरवाजे बंद करके--भीतर डूब जाओ। और धीरे-धीरे सुख के फूल खिलने शुरू हो जाएंगे--महासुख के! और वे ऐसे फूल हैं जो खिलते हैं तो फिर मुर्झाते नहीं हैं।
आज ही इस दुख से छुटकारा पाया जा सकता है। अगले जन्म तक प्रतीक्षा की कोई जरूरत नहीं। मैं कल पर नहीं टालता। क्योंकि परमात्मा को जैसा मैं जानता हूं उसमें एक बात बहुत स्पष्ट है कि परमात्मा कल पर नहीं टालता। परमात्मा सदा आज है।
और तुम भी आज जीने की कला सीखो। जीओ अपने अंतरतम से। पर-निर्भर नहीं, आत्म-निर्भर। जीओ भीतर की ज्योति से। बाहर के दीयों का भरोसा छोड़ो। इनसे सिर्फ अंधेरा मिलता है, रोशनी नहीं मिलती। इनसे सिर्फ अमावस आती है, पूर्णिमा नहीं आती।

न तो, सुजाता, पति से सुख मिलेगा, न बच्चों से, न घर से, न द्वार से। उसी आशा में अटकी रहेगी तो दुख पाएगी। और फिर तुझे याद दिला दूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भाग जा हरिद्वार, काली कंबली वाले बाबा के आश्रम में जाकर बैठ जा! यह मैं नहीं कह रहा हूं। जहां है वहीं रहो। पति भी ठीक, बच्चे भी ठीक, घर भी ठीक, सब ठीक। मगर भीतर अपने खोदना शुरू कर दो। भीतर का कुआं खोदना शुरू कर दो। जल्दी ही, जैसे हर जमीन के नीचे जल-स्रोत हैं, ऐसे ही हर हृदय के भीतर आनंद का स्रोत है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपका संदेश घर-घर पहुंचाने का संकल्प अपने आप ही सघन होता जा रहा है। समाज हजार बाधाएं खड़ी करेगा, कर रहा है। जीवन भी संकट में पड़ सकता है। मैं क्या करूं?

नीरज, जीवन तो संकट में है ही; मौत तो आएगी ही। इसलिए अब और जीवन संकट में क्या पड़ सकता है? मौत से बड़ी और क्या दुर्घटना हो सकती है? लोग बिगाड़ क्या लेंगे? ऐसे ही सब छिन जाने वाला है। इसलिए घबड़ाहट क्या? चिंता क्या? जहां सब लुट ही जाने वाला है, वहां तो घोड़े बेच कर सोओ, फिकर छोड़ो! लोग क्या करेंगे? लोग क्या छीन लेंगे?
और लोग जो अड़चनें पैदा करेंगे, अगर तुम में समझ हो तो हर अड़चन साधना बन जाएगी। लोग बाधाएं डालेंगे, अगर तुम में थोड़ी समझ हो तो हर बाधा सीढ़ी बन जाएगी। लोग अड़चन पैदा करें, बाधा पैदा करें, इससे तुम्हारे भीतर आत्मा सघन होगी, मजबूत होगी, एकाग्र होगी।
घबड़ाओ मत। अगर संकल्प जग ही रहा है तो तुम क्या कर सकते हो अब? संदेश
को पहुंचाना ही होगा! यह तुम्हारे बस के बाहर बात है। अगर परमात्मा तुम्हारे भीतर से कोई गीत गाना ही चाहता है तो गाकर रहेगा।
और जब गाना ही चाहता है तो फिर तुम दिल से, पूरे दिल से साथ हो जाओ, ताकि गीत पूरा प्रकट हो, ऐसा अटका-अटका न हो।
चला है राहे-वफा में तो मुस्कुराता चल!
हवादसात के बरबत पै गीत गाता चल!
कमाले-आगही-ओ-कैफे-जुस्तजू लेकर
हिजाबे-दानिशो-होशो-खिरद उठाता चल!
तगैयुराते-जमाने को देके हुक्मे-सबात मवालिगाते-जहां का मजाक उड़ाता चल! गिरोहे-अहले-तलब के बुझे-बुझे से हैं दिल चिरागे-मंजिले-मकसूद को जलाता चल! अजीयतों से उठा लुत्फे-जिंदगी ऐ दोस्त!
हर-एक दर्द को दरमाने-गम बनाता चल!
दिखाके सोजे-मुहब्बत की ताबनाकी को
जहाने-शौक में इक आग सी लगाता चल!
मजाजे-बेहिसीए-जिंदगी को जल्द बदल
पयामे-अख्तरे-आतिशनवा सुनाता चल!
एक गीत तेरे भीतर पैदा होना शुरू हुआ, नीरज, होने दो पैदा।
चला है राहे-वफा में तो मुस्कुराता चल!
रास्ता ठीक है तो मुस्कुराते चलो, डर क्या!
हवादसात के बरबत पै गीत गाता चल!
आपत्तियां तो आएंगी, आपत्तियों के साज को बजाओ; उन्हीं पर गीत गाओ। कमाले-आगही-ओ-कैफे-जुस्तजू लेकर
उत्साह और उमंग से, ज्ञान और खोज की अभीप्सा से... । हिजाबे-दानिशो-होशो-खिरद उठाता चल!
बुद्धि पर पड़े जितने परदे हैं, वे सब हटा दो अब। अपने भी हटाओ, दूसरों
के भी हटाओ। परदे हटाने हैं, लोगों के घूंघट हटाने हैं; क्योंकि घूंघटों के भीतर परमात्मा छिपा है।
तगैयुराते-जमाने को देके हुक्मे-सबात
युग को परिवर्तन की आवाज देनी है।

मवालिगाते-जहां का मजाक उड़ाता चल!
और दुनिया तो उपद्रव खड़े करेगी; उसके अंधविश्वास, उसकी धारणाएं उपद्रव खड़ा करेंगी। हंसते हुए चलो, मजाक करो। घबड़ाओ मत। दुनिया के अंधविश्वासों का मजाक उड़ाओ। हंसते हुए चलना है, गंभीरता से भी नहीं। गिरोहे-अहले-तलब के बुझे-बुझे से हैं...
जरा देखो, लोगों की जिंदगी के चिराग बहुत बुझे-बुझे से हैं। यात्री-दल
चल रहा है, और बिना चिराग, बिना मशालों के!
गिरोहे-अहले-तलब के बुझे-बुझे से हैं दिल
यात्रा करने वालों के दिल भी बुझे-बुझे से हैं।
चिरागे-मंजिले-मकसूद को जलाता चल!
हिम्मत करो, थोड़े दीये जलाओ! थोड़ी रोशनी करो!
अजीयतों से उठा लुत्फे-जिंदगी ऐ दोस्त!
और ये जो दीये जलेंगे, ये ही तुम्हारे आनंद का कारण बन जाएंगे, ये ही तुम्हारे उत्सव का कारण बन जाएंगे। इस जगत में इससे बड़ी और कोई सौभाग्य की घड़ी नहीं है जब तुम किसी अंधेरे आदमी की जिंदगी में दीया जलाने में सफल हो जाओ। तुम्हारे हाथ से अगर किसी की जिंदगी में एक फूल भी खिल जाए तो इससे बड़ी और कोई धन्य घड़ी नहीं है।
अजीयतों से उठा लुत्फे-जिंदगी ऐ दोस्त! हर-एक दर्द को दरमाने-गम बनाता चल!
और कष्ट तो आएंगे, लेकिन उन सारे कष्टों को तुम्हारे गीतों में जोड़ लो। उन सारे कष्टों को तुम्हारी सीढ़ियों में जोड़ लो। उन सारे कष्टों को भी प्रभु का प्रसाद समझो। परमात्मा जो भी देता है, ठीक ही देता है। उसकी मर्जी पूरी हो!
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र पांचवां प्रवचन

मैं सिर्फ एक अवसर हूं

पहला प्रश्नः ओशो, अनेक संतों और सिद्धों के संबंध में कथाएं प्रचलित हैं कि वे जिन पर प्रसन्न होते थे उन पर गालियों की वर्षा करते थे। परमहंस रामकृष्ण के मुंह से ऐसे ही बहुत गालियां निकलती थीं, बात-बात में गालियां। यही बात प्रख्यात संगीत गुरु अलाउद्दीन खां के जीवन में भी उल्लेखनीय है। क्या इस पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय, सदगुरु गीत गाए या गाली दे, लक्ष्य उसका सदा एक है, कि किस भांति तुम्हारा अहंकार मिटे। गीत गाने से मिटे तो गीत गाएगा; गाली देने से मिटे तो गाली देगा। न तो गाली का कोई मूल्य है; न गीत का कोई मूल्य है; दोनों साधन हैं, उपाय हैं। सदगुरु की समग्र चेष्टा एक है कि किस भांति तुम्हारे अहंकार की चट्टान चूर-चूर हो जाए।
इस कारण रामकृष्ण कभी पीठ भी ठोंकते थे, कभी गालियां भी देते थे। और ऐसा रामकृष्ण के संबंध में ही नहीं, अनेक सिद्धों के संबंध में है। शिरडी के साईंबाबा गालियां देते, पत्थर मारते, डंडा लेकर पीछे दौड़ते। लोग सोचते थे, विक्षिप्त हो गए हैं। विक्षिप्त नहीं थे। जैसे-जैसे उनकी मृत्यु करीब आने लगी उतनी ज्यादा गालियां देते थे, ज्यादा पत्थर फेंकते थे, ज्यादा मारने दौड़ते थे। लोग सोचते थे कि अब पागलपन पराकाष्ठा पर पहुंच गया। ऐसी बात नहीं थी। मौत करीब आ रही थी, इसलिए जल्दी में थे। मौत द्वार पर खड़ी होने के निकट हो गई थी, इसलिए जिनके भी जीवन में थोड़ी संभावना थी, जिनके जीवन में भी चोट से कोई क्रांति हो सकती थी, उनको चोट करने के लिए कोई भी अवसर छोड़ना नहीं चाहते थे। दुनिया कहे पागल तो चलेगा।
सिद्धों को इससे अंतर नहीं पड़ता कि दुनिया क्या कहती है। सिद्धों को
तो सिर्फ एक ही लक्ष्य है, जो उन्हें मिला है उसे बांट दें। लेकिन उसे केवल वे ही लोग ले सकते हैं जिनके भीतर से अहंकार विदा हो गया हो। जिनके पात्र अहंकार से भरे हैं उनके पात्रों में परमात्मा नहीं ढाला जा सकता। जिनके पात्र अहंकार से खाली हैं उनके पात्र ही केवल परमात्मा को स्वीकार कर सकेंगे। तुम अपने से खाली हो जाओ तो परमात्मा दौड़े और तुम्हें भर दे। इसलिए जो जानते थे, जो पहचानते थे, वे तो कहेंगे कि सदगुरु की कृपा हो
तो ही वह गाली देता है। नहीं तो गाली देने की तकलीफ उठाएगा? उसकी महाकृपा हो तो ही वह डंडा लेकर तुम्हारे पीछे दौड़ेगा। उसका डंडा लेकर तुम्हारे पीछे दौड़ना या तुम्हें गाली देना, इस बात का सबूत है कि तुम काम के आदमी हो; कि तुम में कुछ होने की संभावना है; कि बीज अंकुरित हो सकता है; कि दीया जल सकता है; कि तुम इस योग्य हो कि सदगुरु जो भी चेष्टा कर सकता हो करे; शायद तुम बिल्कुल करीब हो। जैसे निन्यानबे डिग्री पर पानी गर्म हो और सौ डिग्री पर भाप बन जाए, शायद तुम निन्यानबे डिग्री पर हो। जरा सा धक्का! कौन जाने एक गाली ही धक्का दे दे, एक चोट धक्का दे दे!
झेन फकीर गालियां ही नहीं देते थे, झेन फकीर तो मारते-पीटते। एक झेन फकीर ने तो अपने शिष्य को खिड़की से उठा कर बाहर फेंक दिया। तीन मंजिल मकान! वह जब नीचे गिरा शिष्य, तब सदगुरु ऊपर खिड़की से झांका और पूछा, कहो, कैसी रही! उस क्षण में सदगुरु का खिड़की से झांकना और देखना और पूछना, कहो कैसी रही! और वे प्रज्वलित आंखें और वह आनंदमग्न भाव--शिष्य तो भूल ही गया कि फेंका गया है तीन मंजिल से, कि हड्डियां टूट गई हैं! उस एक क्षण में उसे याद ही न रही देह की। उस एक क्षण में सब विस्मृत हो गया। उस एक क्षण में क्रांति घट गई। जो वर्षों अध्ययन-मनन और ध्यान से नहीं हो सका था, वह उस एक क्षण में हो गया। हड्डियां तो टूट गईं, मगर आत्मा मिल गई। और हड्डियां तो ऐसे ही टूट जाएंगी; उन्हें तो मिट्टी में मिल ही जाना है; मिट्टी से बनी हैं और मिट्टी में गिर जाना है।
अपात्र को गाली नहीं देता सदगुरु। अपात्र की तो इतनी योग्यता नहीं कि सदगुरु इतना श्रम ले। लेकिन बड़ा कठिन है, आज की दुनिया में और कठिन हो गया

है। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य हुआ है, शिष्टाचारी हुआ है, सुसंस्कृत हुआ है, वैसे-वैसे उसकी समझ से कुछ बड़ी बहुमूल्य बातें खो गई हैं। अगर आज रामकृष्ण तुम्हें गाली दें तो तुम दुबारा उस द्वार पर ही न जाओगे। अगर रामकृष्ण गाली दें तो सिर्फ यही सिद्ध होगा तुम्हारी आंखों में कि इस आदमी को अभी कुछ भी नहीं हुआ--गाली बकता है! संत और गाली बके! अगर कोई सदगुरु तुम्हारे पीछे डंडा लेकर पड़ जाए तो तुम उसे विक्षिप्त ही समझोगे। संत तो दूर, सज्जन भी न समझोगे।
यह मनुष्य की बहुत दीन दशा है, हीन दशा है। मनुष्य की समझ जीवन-रूपांतरण के संबंध में बहुत कम हो गई है। हमारी अवस्था वैसी ही हो गई है जैसे कि चिकित्सक, शल्य चिकित्सक, तुम्हारे शरीर में इकट्ठी मवाद को निकालने के लिए दबाए और तुम्हें पीड़ा हो, और तुम समझो कि वह दुश्मन है; कि शल्य चिकित्सक तुम्हारे हाथ-पैर काटे, कि उनमें भरे जहर को बाहर निकाले, और तुम समझो कि वह दुश्मन है। सदगुरुओं की ये गालियां शल्य-चिकित्सा हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कल की भांति हमेशा ही मेरी झोली खुशियों से भर देते हैं। मेरे प्रभु, कैसे आपको धन्यवाद दूं! देखो न यह धन्यवाद शब्द ही कितना छोटा है, कितना असमर्थ! आपने जो दिया है वह विराट! कैसे कहूं दिल की बात! पर कहे बिना रहा भी नहीं जाता। आंखें आपके प्रेम में आंसुओं से भर गई हैं, हृदय आनंद से और रोम-रोम अनुग्रह से। मेरे प्यारे प्रभु, इसी तरह मुझमें समाए रहना! मैं तो बार-बार आपको भूल-भूल जाती हूं, पर आप इसी भांति याद बन कर मेरी सांस-सांस में समाए रहना!

नीलम, मैं तो सभी की झोलियों में खुशियां भरने को तैयार हूं, मगर लोग ऐसे कृपण कि झोली भी फैलाने में डरते हैं! लोग ऐसे कंजूस, देना तो दूर लेने तक में कंजूस हो गए हैं! और झोली फैलाने के लिए निर-अहंकारिता चाहिए। और लोग इतने अहंकार से भरे हैं कि झोली फैलाएं तो कैसे फैलाएं! चाहते तो हैं सारा, सब कुछ मिले, चाहते तो हैं आकाश बरसे; मगर झोली फैलाने तक की क्षमता नहीं है। उतना तक विनम्र होने, झुकने, समर्पण का भाव नहीं है।
मैं तो सब की झोली भर दूं। क्योंकि जिस आनंद से मैं तुम्हारी झोली भर रहा हूं वह आनंद कुछ ऐसा नहीं है कि एक की भर दी तो मेरे पास कम हुआ। बात ठीक इससे उलटी हैः जितनी झोलियां भर जाएंगी उतना वह मेरे पास ज्यादा होगा। उपनिषद कहते हैं न--पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है! मैं सब लुटा दूं तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रहेगा। मैं लुटाता रहूं, लुटाता रहूं, लुटा न पाऊंगा। मैं कितना ही उलीचूं, उलीच न पाऊंगा। जैसे ही अहंकार शून्य हुआ कि तुम्हारे भीतर से पूर्ण बहना शुरू होता है। फिर बांटो, जी भर कर बांटो!
मगर लोग लेने तक में संकोची हो गए हैं--कैसे लें! कैसे झोली फैलाएं! कैसे झुकें! नदी सामने बह रही है और लोग प्यासे खड़े हैं, तड़फ रहे हैं। लेकिन अहंकार कहता है, झुकना मत!
अब नदी तुम्हारे कंठ तक आने से रही। झुकना होगा! हाथ की अंजुली बनानी होगी! तो नदी जरूर तुम्हें तृप्त कर दे।
नीलम, तू जब आती है मेरे पास तो झोली फैलाने की पूरी क्षमता लेकर आती है। तू जो आती है तो एक फैली झोली की तरह ही आती है। तुझे आंचल फैलाने में जरा भी दुविधा नहीं है। तुझे झुकने में जरा अड़चन नहीं है। इसलिए सहज ही तेरी झोली भर जाए, इसमें मेरा कुछ गुण नहीं है, तेरा ही गुण है।
सूरज तो निकला है, जो आंख खोलेगा उसकी आंख रोशनी से भर जाएगी। इसमें सूरज का क्या गुण है? सूरज तो निकला ही है। और जो आंख बंद रखेगा उसकी आंख अंधेरे से भरी रहेगी।
आंख खोलो, सूरज उगा है। हृदय खोलो, परमात्मा बरस रहा है।
मगर लोग हृदय बंद किए, आंख बंद किए, अपने को चारों तरफ से पत्थर की तरह सख्त किए बैठे हैं। और फिर पूछते हैं, ईश्वर कहां है? फिर पूछते हैं रोशनी दिखाई नहीं पड़ती! फिर पूछते हैं, कहीं कोई संगीत सुनाई नहीं पड़ता!

कैसे संगीत सुनाई पड़े? कैसे रोशनी उतरे? कैसे अमृत तुम पर बरसे? परमात्मा एक क्षण को भी अनुपस्थित नहीं है। जो अनुपस्थित हो जाए वह परमात्मा नहीं। यह सारा अस्तित्व उसी से भरा है, लबालब भरा है। बस अगर कहीं कोई कमी हो रही है तो हमारी तरफ से होती है कमी। हम लेने को राजी नहीं होते। पाहुन द्वार पर खड़ा होता है और हम द्वार नहीं खोलते! हम से इतना भी नहीं होता कि कह सकें स्वागतम्।
नीलम, तेरी झोली और-और खुशियों से भरती जाएगी--ऐसी खुशियों से जो कोई छीन न सकेगा। ऐसा आनंद तेरी संपत्ति बनेगा जो शाश्वत है। तेरे समर्पण में सुनिश्चित हुई जा रही है यह बात। तेरे अर्पित भाव में तेरे आनंद की सुरक्षा है। सत्य तुझे मिलेगा, क्योंकि तू मिटने को राजी है।
और एक बात और समझ लेनी चाहिए। तू कहती हैः "आप कल की भांति हमेशा ही मेरी झोली खुशियों से भर देते हैं।"
अगर ठीक-ठीक कहें, तो मैं तेरी झोली खुशियों से भर देता हूं, यह कहना
भी ठीक नहीं। झोली तो तेरी खुशियों से भरी ही है; तू फैलाती है तो तुझे दिखाई पड़ जाता है। लोग झोली बंद किए बैठे हैं; उनकी झोली में क्या पड़ा है, वह भी उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। मैं तुझे वही दे सकता हूं जो तेरे पास है ही और मैं तुझ से वही छीन सकता हूं जो तेरे पास नहीं है।
यह आध्यात्मिक जीवन का आधारभूत सूत्र है। सदगुरु वही देता है जो तुम्हारे पास है ही, सदा से है, शाश्वत से है, सनातन से है; कुछ नया नहीं देता। इस सूरज के तले कुछ भी नया नहीं। और सदगुरु तुमसे वही छीन लेता है जो तुम्हारे पास है ही नहीं; प्रथम से ही नहीं है।
बात थोड़ी उलटी लगेगी। वही देना जो है और वह छीन लेना जो नहीं है-- उलटबांसी लगेगी। लेकिन अगर थोड़ा गहरे में सोचोगे, उतरोगे, ध्यान करोगे, तो उलटबांसी नहीं लगेगी; सब सीधा साफ-सुथरा हो जाएगा। दो और दो चार की तरह स्पष्ट हो जाएगी बात।
आनंद तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हें विस्मरण हो गया है। सदगुरु झकझोर
कर याद दिला देता है। जैसे कोई आदमी सोया हो, जागना उसका स्वभाव है। और तुम उसे झकझोर कर जगा दो तो वह आदमी क्या तुमसे कहेगा कि तुमने मुझे जागरण दिया? हां, औपचारिक रूप से कह सकता है कि धन्यवाद कि आपने मुझे जगाया। लेकिन जागने की उसकी क्षमता थी ही। अगर जागने की क्षमता न होती तो सो भी न सकता। सो वही सकता है जिसकी जागने की क्षमता है। दुखी वही हो सकता है जिसकी आनंद की क्षमता है। मृत्यु उसी की हो सकती है जिसकी अमृत की क्षमता है। सो गया था, क्योंकि जाग सकता है। तुमने झकझोर दिया। झकझोरने से जागना पैदा नहीं होता; झकझोरने से, जागना तो भीतर पड़ा ही था, उभर कर ऊपर आ जाता है। और तुमने छीन क्या लिया? तुमने नींद छीन ली।
नींद स्वभाव नहीं है, नहीं तो छीना न जा सकता। स्वभाव को छीना नहीं जा सकता। नींद कृत्रिम है, ऊपर से है, आवरण है; इसलिए छीनी जा सकती है। अहंकार छीना जा सकता है, क्योंकि अहंकार झूठ है। आत्मा दी नहीं जा सकती, क्योंकि आत्मा सत्य है।
तेरी झोली खुशियों से भर जाती है--नहीं कि मैं उसे खुशियों से भर देता हूं; बस इतना ही कि मेरे निकट तेरे श्रद्धा का भाव इतना है, तेरी आस्था इतनी है, तेरा समर्पण इतना है कि तू निष्कपट भाव से अपने हृदय को खोल कर रख देती है। उस निष्कपट भाव से खोले गए हृदय में तुझे तेरे ही हीरे दिखाई पड़ जाते हैं, तुझे तेरी ही संपदा का अनुभव हो जाता है। मुझे कुछ देना नहीं पड़ता।
और यह सूत्र समझ में आ जाए तो फिर मेरे बिना भी जहां भी तू सरलता से हृदय को खोल कर रख देगी--किसी नदी-तट पर एकांत में, कि किसी पर्वत-शिखर पर, कि किसी वृक्ष के पास, कि एकांत में अपने घर में, कि किसी मंदिर में, कि मस्जिद में--जहां भी हृदय को खोल कर रख सकेगी, वहीं तत्क्षण आनंद का उन्मेष हो जाएगा, रोआं-रोआं पुलकित हो जाएगा।
ख्याल रहे, तुम्हारा आनंद किसी भी तरह मुझसे बंध न जाए। ऐसा न हो कि मेरे बिना तुम्हें आनंद न मिले। ऐसा न हो कि तुम्हारा आनंद मुझ पर निर्भर हो जाए। अन्यथा बड़ी भूल हो जाएगी।

मैं तुम्हें मुक्ति देना चाहता हूं। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें देना चाहता हूं तुम्हारे भीतर छिपा हुआ छंद। तुम्हारा गीत तुम्हें मिल जाए। तुम्हारी जीत तुम्हें मिल जाए। तुम्हारा राज्य तुम्हें मिल जाए। तुम्हारा ही है! सम्राट सो गया है और भिखारी होने का सपना देख रहा है। मैं झकझोर दूंगा और जगा दूंगा। राज्य उसका है--उसका ही था! जब सोया था तब भी उसका था। जब भूल गया था तब भी उसका था।
और मैं छीन क्या लूंगा? छीन लूंगा उसका भिखमंगापन, जो कि वह था ही नहीं, केवल सपना देखता था।
दुख तुम्हारा स्वप्न है, आनंद तुम्हारा स्वभाव है।
जो घटना शुरू हुआ है, नीलम, उसे घटाए जाना। मेरे पास तो शुरुआत होगी, लेकिन धीरे-धीरे मुझसे दूर भी उसे घटाना। धीरे-धीरे मेरे बिना भी उसे घटाना। मैं निमित्त मात्र बनूं, मैं कारण न बन जाऊं। मैं कारण हूं भी नहीं। कोई सदगुरु शिष्य के जागरण का कारण नहीं होता, मात्र निमित्त होता है। मैं सिर्फ एक अवसर हूं। इस अवसर का उपयोग कर लो। और एक दफा होश आ जाए तो फिर उस होश का उपयोग जगह-जगह करना, अलग-अलग स्थितियों में, अलग-अलग परिस्थितियों में।
और इसीलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि संसार छोड़ कर भाग जाओ, क्योंकि मैं चाहूंगा जो तुम्हें ध्यान में, प्रेम में, नृत्य में, गीत में, मेरे पास अनुभव हो रहा है, वही तुम्हें बीच बाजार में भी अनुभव होना चाहिए, तो ही सच्चा है, तो ही खोटा नहीं है, तो ही खरा है। बीच बाजार के शोरगुल में भी अगर तुम्हारे भीतर वही शांति घनी रहे जो यहां मेरे पास घनी है, सघन होती है; घर की चिंताओं, उपद्रवों, संकटों के बीच में भी तुम्हारे भीतर वही अहर्निश नाद बजता रहे जो यहां मेरे पास बजता है, तो ही जानना कि जो मिला वह मिला। अगर बाजार में खो जाए, अगर भीड़ में हाथ से छिटक जाए, अगर काम-धाम की दुनिया में, आपा-धापी में भूल जाए, तो समझना कि मिला ही न था। तो इतना ही समझना कि मेरे पास बैठ कर मेरी शांति की तरंग को तुमने अपनी शांति समझ ली थी; दूर गए, खो गई। मेरी तरंग तुम्हारी तरंग नहीं बननी चाहिए। मेरी तरंग केवल तुम्हारी तरंग को जगाने का निमित्त बननी चाहिए।
और नीलम, मैं खुश हूं, तुझ से बहुत खुश हूं। वैसा हो रहा है। तुझ से ही नहीं, और बहुतों से भी वैसा हो रहा है। मैं अपने संन्यासियों से अति आनंदित हूं। इस अर्थ में मैं सौभाग्यशाली हूं कि जितना बुद्धिमान वर्ग संन्यासियों का मुझे उपलब्ध हुआ है उतना बहुत मुश्किल से कभी किसी को उपलब्ध होता है। मनुष्य रोज-रोज ज्यादा विचारशील होता गया है। आज मनुष्य के पास जैसी प्रतिभा है, अगर उसे धार्मिक मोड़ मिल सके तो इस दुनिया में धर्म का विस्फोट हो जाए। अगर नहीं मिला मोड़ तो अधर्म का विस्फोट होगा। वही प्रतिभा अधर्म बनेगी, वही प्रतिभा धर्म बन सकती है।
आज ऊर्जा हमारे हाथ में है। अगर जरा समझ का दीया जला तो यही ऊर्जा इस पृथ्वी को स्वर्ग बना लेगी, अन्यथा मरघट होने में ज्यादा देर न लगेगी। यह पृथ्वी किसी भी दिन मरघट हो सकती है। यह पृथ्वी सारी की सारी हिरोशिमा और नागासाकी हो सकती है।
इतनी महत्वपूर्ण घड़ियां आदमी के हाथ में कभी भी नहीं थीं। तुम सौभाग्यशाली हो, तुम मनुष्य-जाति के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षणों में जी रहे हो। ये आने वाले बीस वर्ष, इस सदी का अंतिम चरण, मनुष्य के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण वर्ष सिद्ध होने वाले हैं; या तो आदमी की प्रतिभा आत्मघात बन जाएगी या आत्मरूपांतरण।
प्रतिभा दुधारी तलवार है। अगर गलत रास्ते पर प्रतिभा चली जाए तो खतरनाक हो जाता है जीवन। अगर वही प्रतिभा ठीक रास्ते पर मुड़ जाए तो जीवन फूलों से भर जाता है।
मेरे पास जो वर्ग इकट्ठा हो रहा है वह सामान्य मध्यवर्गीय प्रतिभा का नहीं है। मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, प्रथम कोटि के प्रतिभा के लोग हैं। मेरी बात ही उनकी समझ में पड़ रही है जो प्रथम कोटि की प्रतिभा रखते हैं।

तृतीय श्रेणी की प्रतिभा के लोग तो न मालूम क्या-क्या सोच रहे हैं, न मालूम क्या-क्या विचार रहे हैं! उन्हें मेरी बात समझ में भी नहीं आ सकती। तृतीय श्रेणी के लोग तो सदा अतीत से बंधे रहते हैं--कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ है, कोई कुछ है। तृतीय श्रेणी की प्रतिभा के लोग तो हजारों साल पीछे होते हैं समय के।
प्रथम श्रेणी के लोग समय के पहले बात को समझ पाते हैं। और जो समय के पहले बात को समझ ले वही समझदार है। समय बीत जाने पर तो सभी समझदार हो जाते हैं। ठीक समय के रहते जो समझ ले वह समझदार। और समय के पहले जो समझ ले उसका तो कहना क्या! और मैं खुश हूं कि मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं वे हीरे हैं; उन पर जरा धार रखने की जरूरत है।
नीलम, तू नीलम ही है, थोड़ी सी धार रखने की जरूरत है। और धार रखी जा रही
है और निखार आना शुरू हो गया है। और मैं वैसे ही प्रसन्न हूं जैसे किसी माली के बगीचे में फूल खिलने शुरू हो जाएं और माली प्रसन्न होता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, हम कैसे जीएं कि जीवन में कोई भूल न हो?

हरिदास, जीवन में भूल न हो, अगर ऐसे जीना चाहोगे तो जी ही न सकोगे, मरोगे सिर्फ। भूल तो सिर्फ मुर्दों से नहीं होती। अगर भूल से ही बचना है तो जल्दी से अपनी कब्र में समा जाओ; खुद ही खोद लो कब्र। और यही अधिक लोगों ने किया है। अधिक लोग जीते कहां, क्योंकि अधिक लोग भूलों से डरे हुए हैं। इतने डरे हुए हैं कि जीएं तो जीएं कैसे! कहीं भूल न हो जाए!
भूल में कुछ बुराई नहीं है। हां, एक ही भूल दुबारा नहीं होनी चाहिए। भूल से ही तो आदमी सीखता है, संवरता है। भूल ही तो धार रखती है। भूल ही तो तेजस्विता देती है। भूल तो चुनौती है।
नयी-नयी भूलें करो। रोज-रोज भूलें करो। हां, वही-वही भूलें मत करना। वही-वही भूल जो करे वह जड़बुद्धि है; वह सीख नहीं रहा है। एक बार तो क्षम्य है, क्योंकि बिना भूल किए तुम जानोगे ही कैसे कि वह भूल है? और बिना भटके कोई पहुंचा है? और बिना भटके जो पहुंच जाएगा उसमें रीढ़ नहीं होगी, उसमें प्राण नहीं होंगे, उसमें आत्मा नहीं होगी।
मैंने सुना है, बड़ी पुरानी कहानी है मिश्र की, कि एक किसान ने बहुत परेशान होकर एक दिन ईश्वर से कहा--पुरानी कहानियों में ईश्वर इतने दूर नहीं था जितना अब है; सुन लेता था, ऐसे ही घर के छप्पर के पास ही रहता होगा-- जोर से चिल्ला कर कहा कि हद हो गई, ऐसा लगता है कि तुझे किसानी करनी आती ही नहीं। अगर एक साल मौका मुझे दे तो मैं तुझे दिखलाऊं कि किसानी कैसे की जाती है। सब उलटा-सीधा चल रहा है। जब पानी की जरूरत है पानी नहीं गिरता; बढ़ते पौधे सूख जाते हैं। जब पानी की जरूरत नहीं तब पानी गिरता है; बढ़े-बढ़ाए पौधे बाढ़ में बह जाते हैं। और फिर कितने कीड़े, कितने मकोड़े और कितने टिड्डी दल और कितना कुहासा! तुझे कुछ होश है? तुझे खेती-बाड़ी का कुछ पता है?
ईश्वर ने कहा, तो ठीक, इस साल तू सम्हाल। इस साल तू जैसा चाहेगा वैसा
ही होगा।
किसान ने सारी योजना बनाई। जीवन भर का अनुभवी किसान था। पाले देखे थे, ओले देखे थे, तूफान देखे थे, आंधियां देखी थीं, अंधड़ देखे थे, बाढ़ देखी थी, सूखा देखा था, सब देख चुका था। उसने बड़ी व्यवस्थित योजना बनाई। और उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था! जब उसके गेहूं के वृक्ष, गेहूं के पौधे आदमी के सिर के ऊपर जाने लगे तो उसने कहा अब पता चलेगा परमात्मा को कि खेती कैसे की जाती है! और बड़ी-बड़ी बालें आईं, पौधे भी बड़े थे और बड़े हरे थे। जब पानी की जरूरत थी, जितनी जरूरत थी, उतना पानी उसने मांगा, उतना पानी गिरा। जब धूप की जरूरत थी, सूरज की जरूरत थी, जितनी जरूरत थी, उतना उसने मांगा, उतना सूरज चमका। न टिड्डी दल आए, न पाला पड़ा, न ओले गिरे, न कीड़े-मकोड़े लगे। उसने सारी व्यवस्था कर रखी थी। फिर फसल काटने के दिन आए, उसके आनंद का अंत नहीं था। उसने सारे गांव को इकट्ठा किया और कहा, फसल काटो। अब परमात्मा को दिखाएंगे कि फसल कैसे की जाती है!

फसल काटना क्या था, उसके प्राण पर जैसे छुरी चल गई। वे बालें तो बहुत बड़ी-बड़ी थीं, लेकिन उनमें गेहूं नहीं थे। उसने परमात्मा से कहा, यह क्या हुआ! यह क्या मजाक हुआ! इतनी बड़ी बालें, इतने बड़े पौधे, इतनी व्यवस्था, सब चीजें समय पर मिलीं, गेहूं क्यों पैदा नहीं हुए?
आकाश से खिलखिलाहट की हंसी आई और उसने कहा, तू पागल है! गेहूं पैदा होने के लिए संकट चाहिए, असुविधाएं चाहिए। तेरी बालें पोच रह गईं, क्योंकि न तूफान आए, न आंधियां आईं, न जम कर वर्षा हुई, न सूरज से आग बरसी। तूने सारी सुविधा कर दी। तूने सारी व्यवस्था कर दी। तो बालें पोच रह गईं।
संकट में ही, संघर्ष में ही, चुनौती में ही आत्मा पैदा होती है। भूलों
से मत डरो, हरिदास। जी भर कर भूलें करो। बस एक ही भूल दुबारा मत करना। अगर इतना ही स्मरण रहे तो हर भूल तुम्हें पाठ दे जाएगी, हर भूल तुम्हें आगे बढ़ा जाएगी।
मगर तुम्हें यह बात सिखाई गई है सदियों-सदियों से। हर समाज, हर संस्कृति में यही आग्रह है--भूल मत करना। और इसी कारण लोग मुर्दा हो गए हैं। भूल मत करना। जरा रास्ते से हट कर मत चलना। लीक पर चलो। जरा भी लकीर से यहां-वहां मत होना।
तो लोग चल रहे हैं--लकीर के फकीर! उनमें कोई आत्मा नहीं है। उनकी बालों में कोई गेहूं नहीं पकते। उनके भीतर कोई प्राण सघन नहीं होते। उनके भीतर एक तरह की नपुंसकता रह जाती है। उनके भीतर बल नहीं पैदा हो पाता, पौरुष नहीं जगता, सुरक्षित, सब भांति सुरक्षित--कैसे पौरुष जगे? उनके भीतर प्रतिभा में भी जंग लगी रहती है। उनकी प्रतिभा में भी निखार नहीं आता। उनका दीया भी जलता है तो धुआं-धुआं, रोशनी कम। भूल ही नहीं की जीवन में! तुम्हें मुझसे शिकायत है
कि मैं बदल गया हूं
और मुझे भी तुमसे शिकायत है
कि तुम क्यों नहीं बदले;
तुम्हें शिकायत है
कि मुझे बदलने पर अफसोस नहीं है,
और मुझे शिकायत है
कि तुम्हें न बदलने पर पश्चात्ताप नहीं है; तुम्हारा कहना है
कि बदलने से मेरा ह्नास हुआ है;
और मेरा कहना है
कि ह्नास भी हुआ है तो मेरा विकास हुआ है;
लेकिन तुम जड़ हो,
इसका मुझे विश्वास हुआ है।
चैतन्य कैसे पैदा होता है? ऐसे ही पैदा नहीं हो जाता। चुनौतियां चाहिए। नहीं तो तुम जड़ रह जाओगे। इस बात को तुम खूब गांठ बांध कर रख लोः भूलों से बचना मत। अपने को सम्हाल-सम्हाल कर मत चलते रहना। राजपथों पर ही मत चलते रहना। कभी-कभी पगडंडियों पर भी जाओ, बीहड़ वनों में भी उतरो। जहां खो जाने का डर हो वहां भी तलाशो। जहां से लौटने की संभावना न हो वहां भी पंख मारो। अगर जल भी गए तो भी तुम्हारे भीतर आत्मा पैदा होगी। अगर भटक भी गए तो भी तुम्हारे भीतर बल पैदा होगा। अगर मुसीबतें भी आईं तो मुसीबतें तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएंगी।
थामस अल्वा एडिसन बिजली की खोज में लगा हुआ था। तीन साल बीत गए थे प्रयोग करते-करते, उसके सारे सहयोगी थक चुके थे; लेकिन वह रोज सुबह आता बूढ़ा और उसी उमंग, उसी उत्साह से फिर काम में लग जाता। तीन साल में कम से कम सात सौ प्रयोग असफल हो गए थे। उसके सहयोगियों का तो ख्याल था कि बिजली पैदा हो नहीं सकती। और एडिसन जिद्द में पड़ा है। सात सौ बार असफल हो गए, अब और कितने बार असफल होना है? सात सौ बार भूल हो चुकी, जाहिर है; अब बच जाना चाहिए, अब जिंदगी इसी में खराब करने की कोई जरूरत नहीं है।
एक दिन वे सब इकट्ठे हुए और उन्होंने एडिसन को कहा कि अब बहुत हो गया, तीन साल खराब हो गए, सात सौ बार हमारे प्रयोग असफल हो गए, अब कब तक हम यही

करते रहेंगे? और आपको हम देखते हैं तो हमारी छाती और बैठ जाती है। आप रोज सुबह उसी उमंग, उसी उत्साह से चले आते हैं--न उदासी, न हताशा, न निराशा! आपको पता है कि सात सौ बार प्रयोग असफल हो चुका है!
एडिसन ने कहा, मुझे पता है। इसीलिए तो मेरी उमंग रोज-रोज बढ़ती जाती है
कि अगर समझ लो एक हजार गलतियां हो सकती हैं, तो सात सौ तो हम कर चुके, अब तीन सौ ही बचीं। सात सौ दरवाजे हम टटोल चुके, दरवाजा नहीं मिला; रोज दरवाजे कम होते जा रहे हैं, ठीक दरवाजा करीब आता जा रहा है। घबड़ाओ मत।
और यही हुआ। छह महीने के प्रयोग के बाद बिजली का आविष्कार हो सका, जो
कि मनुष्य-जाति के इतिहास में बड़े से बड़े आविष्कारों में से एक है। लेकिन अगर एडिसन भूलें करने से डरता तो यह आविष्कार नहीं हो सकता था।
तुम जरा वैज्ञानिकों का जीवन उठा कर देखो--कितनी भूलें करते हैं! रोज भूलें करते हैं! लेकिन भूलों का कोई हिसाब नहीं रखता। जब वे जीत जाते हैं, और ठीक हो जाता है, बस ठीक का इतिहास लिखा जाता है। इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है।
महावीर ने बारह वर्ष ध्यान किया। बस तुम्हारे पुराणों में उल्लेख है सफलता का। बारह वर्ष क्या कर रहे थे? बारहवें वर्ष सफल हुए, लेकिन बारह वर्ष तो जरूर हजारों भूलें की होंगी। उनका कोई उल्लेख नहीं करता। जब जीत हो जाती है तो लोग फिकर ही छोड़ देते हैं इस बात की कि कितनी बार हार हुई जीत होने के पहले! हर जीत के पीछे कितनी हारें छिपी हैं! और हर ठीक अनुभव के पीछे कितने भटकाव छिपे हैं! बुद्ध छह वर्ष तक चेष्टा करते रहे, और हारते रहे, हारते रहे, हारते रहे--तब एक दिन जीते। बस हम तो जीत को गिन लेते हैं, और उन हारों को छोड़ देते हैं, और उन भूलों को छोड़ देते हैं। इससे हमारे सामने एक बहुत ही गलत धारणा निर्मित होती है।
हम बच्चों को सिखाते हैं, भूल मत करो। हम बच्चों से कहते हैं, जो ठीक
है वही करो। ठीक करने की चेष्टा में बच्चे क्या करें? अनुकरण करें। कार्बन कापी हो जाएं। कार्बन कापी हमेशा ठीक होती है। भूल तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि मूल की सिर्फ प्रतिलिपि है, भूल कैसे हो सकती है? लेकिन अगर तुम अपने जीवन की कुछ शोध करने में लगोगे, अगर तुम फिर से ध्यान की तलाश में चलोगे, तो हो सकता है बारह वर्ष तुम भी भटको। और उस बात का मजा और है। महावीर की छाया बन कर चलना एक बात है; महावीर होना बात और है। मोहम्मद
ने जो कहा उसको दोहराते रहना तोतों की तरह एक बात है; और मोहम्मद ने जैसे जाना उन सारी भूलों को करके गुजरना--उन सारे कंटकाकीर्ण मार्गों को पार करना, वे सारी फिसलनें रास्तों की, वे गिर जाने के डर, वह बहुत बार गिर जाना, घुटनों का टूट जाना, लहूलुहान हो जाना, वह बहुत बार अंधेरी रातों में भटक जाना, बहुत बार निराश हो जाना, बहुत बार सुबह का धागा हाथ से छूट-छूट जाना--वह सब जब तक न गुजरे, जब तक तुम फिर उससे न गुजरो, तुम्हारे जीवन में मोहम्मद का बल नहीं होगा, महावीर की क्षमता नहीं होगी, बुद्ध की प्रगाढ़ता नहीं होगी।
नहीं हरिदास, ऐसा मत पूछो कि हम कैसे जीएं कि जीवन में कोई भूल न हो। मैं तो कहूंगा, ऐसे जीओ कि जीवन में जितनी भूलें हो सकें हों; सिर्फ एक भूल दुबारा न हो, बस। खूब जीओ! फिकर छोड़ो भटकने की, डरने की। डरने वाले कायर अटके ही रह जाते हैं, उठते ही नहीं।
जरा सोचो, अगर छोटे बच्चे यह सोचें कि हम चलेंगे तभी जब गिरने का कोई
डर न रह जाएगा, तो इस दुनिया में सारे लोग घुटनों के बल ही सरकते रहें, फिर कोई चलना नहीं हो सकता। वह तो छोटे बच्चे बड़े हिम्मतवर हैं। हरिदास, तुम जैसे सवाल नहीं पूछता छोटा बच्चा कि मुझे कुछ ऐसा रास्ता बताओ चलने का कि मैं कभी गिरूं न। बच्चा तो उठता है और गिरता है, घुटने तोड़ लेता है। फिर उठता है, फिर गिरता है। उठता ही रहता है, गिरता ही रहता है, उठता ही रहता है, गिरता ही रहता है। एक दिन खड़ा हो जाता है दो पैरों के बल पर।
चमत्कार है दो पैरों के बल पर खड़ा होना! क्योंकि सारे पशु चार हाथ-पैरों पर चल रहे हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं आदमी भी बंदर था और चार हाथ-पैरों पर चलता रहा। जरा उन प्राथमिक बंदरों की कल्पना करो, जो पहली बार दो पैरों पर खड़े हुए होंगे। बाकी सब बंदर हंसे होंगे, कि यह देखो, अब ये

गिरेंगे सज्जन, अब ये बुरी तरह गिरेंगे! सारे बंदर हंसे होंगे। और बंदरों के पंडित-पुरोहित, और बंदरों की परंपरा, और उनकी पुरानी धारणाएं! उन्होंने कहा होगा, हमने न तो कभी देखा न सुना किसी बंदर को दो पैर से चलते। ये मूढ़ देखो!
हम कहते हैं कि विकास हुआ। बंदरों ने तो कहा होगा कि पतन हुआ। क्योंकि बंदर रहते हैं वृक्षों पर, और आदमी को रहना पड़ा फिर जमीन पर। पतन ही कहना चाहिए, ऊपर से नीचे उतरे। इसको विकास कैसे कहोगे?
लेकिन जो पहले बंदर दो पैरों पर चले, बहुत बार गिरे होंगे, बहुत बार गिरे होंगे; जैसे छोटा बच्चा गिरता है। उनके घुटने टूट गए होंगे, लहूलुहान हो गए होंगे। लेकिन फिर भी वे कोशिश करते रहे। उनकी कोशिश एक दिन सफल हुई। उनकी सफलता से ही मनुष्यता का जन्म हुआ। क्योंकि जिस दिन दो हाथ चलने के काम से मुक्त हो गए, उस दिन दो हाथ और दूसरे काम के लिए मुक्त हो गए। फिर हम बहुत कुछ काम कर सके। अगर चारों हाथ-पैर चलने में ही लगे रहें तो कुछ और नहीं किया जा सकता। आदमी ने दो पैरों पर चलना छोड़ दिया, दो हाथ बिल्कुल स्वतंत्र हो गए। अब इन स्वतंत्र हाथों से आग जलाओ, अस्त्र बनाओ, शस्त्र बनाओ, मकान बनाओ, बैलगाड़ियां बनाओ कि हवाई जहाज बनाओ, अब तुम जो भी चाहो करो, ये दो हाथ मुक्त हो गए। इन दो मुक्त हाथों में सारे मनुष्य का विकास छिपा है।
बंदर अब भी सुरक्षित है अपने वृक्ष पर। उसने भूल न करने का रास्ता पकड़ा।
नहीं; तुम ऐसा पूछो ही मत। मैं तो तुम्हें चुनौतियों को अंगीकार करना सिखाता हूं, तभी तुम्हारे जीवन में सुबह होगी। और जितनी अंधेरी रात होगी उतनी ही प्यारी सुबह होगी। और जितने दूर तुम परमात्मा से निकल जाओगे भटक कर, उतने ही पास आने का मजा होगा। जितनी कंठ में प्यास होगी, उतनी ही तो तृप्ति होगी न!
तमाम उम्र गुजारी है अंधेरों के तले,
आपके दर पे ही जाना कि सवेरा क्या है।
मौजे तूफान की साहिल से मुलाकात न थी,
आपसे मिल के ही जाना कि किनारा क्या है।
सुलगती बालू में छाया है बस बबूलों की,
आपकी छांह मिले फिर से सहारा क्या है।
हंसे तो ऐसे, खिजाओं का हाथ थाम लिया,
हम ने जाना कि फिजाओं का नजारा क्या है।
पतझड़ों में वसंत छिपे हैं; जरा पतझड़ों में तलाशो। और भूलों में, भटकावों में सत्यों के मंदिर छिपे हैं; जरा भूलों में, भटकावों में खोदो, गहरे खोदो!
जो व्यक्ति भूल करने से बचना चाहता है उसका साहस समाप्त हो जाता है,
वह कायर हो जाता है। और कायरों के लिए इस जगत में कुछ भी नहीं है। एक साहस चाहिए, कि ठीक है, भटकेंगे तो भटकेंगे।
जीसस की प्रसिद्ध कहानी। एक बाप के दो बेटे। छोटा बेटा--जुआरी, शराबी, वेश्यागामी। बड़ा बेटा--मंदिर जाए, पूजा करे, पाठ करे, दुकान में मन लगाए, खेती-बाड़ी में डूबे। आखिर बड़े भाई ने कहा कि छोटे भाई के साथ रहना मेरा नहीं चल सकता, मैं कमाऊं और यह गंवाए! हमें अलग कर दें। तो बाप ने दोनों को आधी-आधी संपत्ति बांट दी और अलग कर दिया।
छोटा बेटा तो आधी संपत्ति लेकर तत्काल शहर चला गया। छोटे गांव में क्या करेगा; वहां ज्यादा भूल करने की सुविधाएं भी नहीं थीं। बड़ा बेटा गांव में ही रुका। अब उसने दिल खोल कर धंधा किया, पूरे प्राणों से खेती-बाड़ी की, खूब कमाया। और छोटे बेटे ने शहर में खूब गंवाया। दो-चार साल में ही छोटा बेटा भिखमंगा हो गया। होना ही था।
बाप को खबर लगी कि छोटा लड़का भीख मांग रहा है, सब बर्बाद हो गया। उसने खबर भेजी कि तू वापस लौट आ। इतने नौकर हैं घर में, तू अगर एक बिना कुछ किए भी पड़ा रहेगा तो भी चलेगा, तू वापस लौट आ। बाप का संदेश मिला तो बेटा वापस लौटा। और जब बेटा वापस लौटा, तो जीसस यह कहानी बार-बार कहते हैं, कि बाप ने

घर में दीये जलवाए, दीपावली मनवाई, बंदनवार सजवाए, फूल लटकवाए। जिस रास्ते से बेटे को लाना था उस रास्ते पर स्वागत का इंतजाम किया, द्वार बनाए। श्रेष्ठतम भोजन तैयार करवाया। वर्षों के बाद बेटा वापस लौटता था।
बड़ा बेटा खेत पर काम कर रहा था--भरी दुपहरी, धूप में! किसी ने उसको खबर
दी कि अन्याय की भी एक सीमा होती है! तू तो बाप की सेवा करते-करते मरा जा रहा है, अभी भी दुपहरी में छाया में नहीं बैठा है, खून-पसीना कर रहा है। और तेरे स्वागत में कभी बंदनवार न बंधे, कभी दीपावली न मनाई गई, कभी सुगंधें न छिड़की गईं, कभी बैंड-बाजे न बजे! और तुझे पता है, तेरा छोटा भाई बर्बाद होकर, भिखमंगा होकर लौट रहा है! शहनाई यह जो बज रही है उसी के लिए बज रही है।
स्वभावतः, बड़े भाई को बहुत आघात हुआ, यह तो अन्याय है! वह घर लौटा। उसने अपने पिता को कहा कि यह अन्याय है। मेरा कभी स्वागत नहीं हुआ। मैं सदा आपके चरणों में सेवा में रहा। मैंने कभी कोई जीवन में भूल नहीं की। सदा आपने जो कहा वही किया। और छोटे ने, जो आपने कहा उससे उलटा किया। और उसका स्वागत किया जा रहा है!
बाप ने कहा, तुझे पता होगा, तुझे भलीभांति पता होगा, क्योंकि तू खेतों
पर रहता है। अपने पास भी भेड़ें हैं, तू कभी भेड़ों को भी लेकर पहाड़ों पर जाता है। तुझे भलीभांति पता होगा कि अगर कभी कोई भेड़ जंगल में भटक जाए तो गड़रिया अपनी हजार भेड़ों को असुरक्षित छोड़ कर उस एक भेड़ की तलाश में आधी रात जंगल में जाता है। और जब भटकी भेड़ उसे मिल जाती है तो उस भटकी भेड़ को कंधे पर लेकर लौटता है। और जो भेड़ें कभी नहीं भटकीं उनको कभी कंधे पर लेकर नहीं लौटता। लौटने का सवाल ही नहीं उठता। तू मेरे पास है। तेरे स्वागत का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जो दूर चला गया था और बहुत भटक गया था और वापस लौट रहा है, उसका स्वागत जरूरी है।
जीसस कहते थे, यह कहानी सिर्फ किसी पिता और उसके बेटों की कहानी नहीं है; यह कहानी अस्तित्व की कहानी है। यह परमात्मा की कहानी है। यहां जो दूर जितने भटक जाता है, परमात्मा उसके स्वागत के लिए उतना ही तैयार है। क्योंकि दूर भटका हुआ आदमी कुछ कमा लेता है--कुछ, जो बड़ा अदृश्य है!
तुमने भी ख्याल किया होगा, जिन लोगों ने जीवन में कभी भूल-चूक नहीं की, उनको अगर तुम देखोगे तो तुम उन्हें गोबर-गणेश पाओगे। बिठा दो एक कोने में सजा कर तो अच्छे लगते हैं; और किसी काम का न पाओगे। भीतर बिल्कुल पोच; गेहूं है ही नहीं। और जिन लोगों ने जीवन में बहुत भूलें की हैं, बहुत भटके हैं, बहुत ठोकरें खाई हैं, दर-दर दरवाजे-दरवाजे--उनमें तुम एक तरह का बल पाओगे, एक तरह की गरिमा पाओगे, एक तरह का गौरव पाओगे! उनमें तुम पाओगे कुछ, जिसको आत्मा कहा जा सकता है।
इसलिए मैं नहीं कहता, हरिदास, कि भूलें न करो। मैं तो कहता हूं, भूलें करो--होशपूर्वक करो! मेरी शिक्षा बिल्कुल भिन्न है। भूलें करो, जरूर करो-- होशपूर्वक करो! हर भूल से सीखो और हर भूल को निचोड़ लो और उसको अपना अनुभव बना लो।
तमाम उम्र गुजारी है अंधेरों के तले,
आपके दर पे ही जाना कि सवेरा क्या है।
तब आएगा वह दरवाजा सुबह का, जब जिंदगी भर न मालूम कितनी अमावसों के नीचे गुजारोगे।
मौजे तूफान की साहिल से मुलाकात न थी,
आपसे मिल के ही जाना कि किनारा क्या है।
तभी मिलेगा किनारा, तभी होगा मिलन सत्य से, जब तुम बहुत-बहुत तूफानों में अपनी नैया को छोड़ोगे और बहुत-बहुत तूफानों को पार करके आओगे। बहुत-बहुत खतरे डूबने के उठाओगे तो ही किनारा है। जो किनारे पर ही रहे और तूफान न जाने, उनके लिए क्या खाक किनारा है! जो तूफानों को पार करके आए उनके लिए ही किनारा किनारा है। जिन्होंने मझधारों को किनारा बना लिया उनके लिए ही किनारा किनारा है।
जीवन सस्ता नहीं है। और जीवन के प्रत्येक अनुभव के लिए चुकाना पड़ता है--कुछ चुकाना पड़ता है, कोई कीमत चुकानी पड़ती है। भूलें, और उन भूलों के

कारण हुए दुख और पश्चात्ताप और पीड़ाएं मूल्य हैं, जो आत्मवान व्यक्ति को चुकाना ही होगा। चुकाओ! और तुम जितना चुका सकोगे उतना ही पाओगे। न ज्यादा, न कम। इस जगत में अन्याय नहीं है। प्रत्येक को उतना ही मिलता है जितनी क्षमता वह अर्जित कर लेता है।
मगर क्षमता कैसे अर्जित होती है? घर के एक कोने में छिप कर बैठ जाने से क्षमता अर्जित नहीं होती। और वही तुम्हें सिखाया गया है। खासकर इस देश में तो यही सिखाया गया है सदियों से कि कुछ भूल भर न करना। परिणाम यह हुआ है कि पूरा देश गोबर-गणेश हो गया है। एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक मुर्दों की कतारें हैं, जिनमें जीवन नाम-मात्र को भी नहीं है।
नहीं तो यह कहीं हो सकता था कि हजारों साल तक यह देश गुलाम रहे? छोटी- छोटी कौमें आईं, जरा-जरा से लोग, जिनकी कोई ताकत न थी, क्षमता न थी--वे भी जीत गए। हूण आए, बर्बर आए, तातार आए, मुगल आए, अंग्रेज आए, पुर्चगीज आए, फ्रेंच आए--जो भी आया, इस विराट देश को क्षण भर में मुट्ठी में कर लिया! क्या कारण रहा होगा?
और यह देश बातें करता है आत्मा की, परमात्मा की! और यह देश बातें करता
है अमृत जीवन की, शाश्वत जीवन की! लेकिन असलियत कुछ और है। देश बहुत कायर हो गया है। और कायर हो जाने के पीछे कारण क्या है? कारण है यह मौलिक शिक्षाः भूल न करना, सम्हल-सम्हल कर चलना, गिरना मत। अगर गिरने का डर हो तो चलना ही मत, बैठे ही रहना। बैठे रहना बेहतर है गिरने की बजाय। न चलना बेहतर है, मगर भटकना मत।
लेकिन पहुंचना हो अगर कहीं तो भटकने की जोखम उठानी ही पड़ेगी। जोखम जीवन है।

चौथा प्रश्नः ओशो,
नहीं आती किसी को मौत, दुनियाए मुहब्बत में
चरागे जिंदगी की लौ, यहां मद्धम नहीं होती
उम्मीदें टूट जाती हैं, सहारे छूट जाते हैं
मगर ओशो, तेरी मुहब्बत की तमन्ना कम नहीं होती!

आनंद मोहम्मद, जो प्रेम कम हो जाए वह प्रेम ही नहीं, कुछ और होगा। किसी
और चीज ने प्रेम का बाना ओढ़ लिया होगा। प्रेम तो कम होना जानता ही नहीं, प्रेम तो सिर्फ बढ़ना ही जानता है। प्रेम तो बड़ा होना ही जानता है। प्रेम तो प्रार्थना होना ही जानता है। और एक दिन अंततः अंततोगत्वा प्रेम परमात्मा बन जाता है। इसलिए अगर प्रेम जगा है तो कम होने वाला नहीं है। कोई अनुभव प्रेम को कम नहीं करेगा। हर अनुभव प्रेम को और विस्तीर्ण करेगा। हां, अगर प्रेम जन्मा ही न हो तो जरूर कम हो सकता है।
जैसे समझो कि तुम परमात्मा के प्रति तो प्रेम से नहीं भरे हो, मगर स्वर्ग की आकांक्षा है। इस कारण मंदिर भी जाते हो, मस्जिद भी जाते हो, पूजा भी करते हो, पाठ भी करते हो। परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। परमात्मा का तो सिर्फ उपयोग करना है साधन की तरह। और इससे बड़ा पाप दुनिया में दूसरा नहीं है। परमात्मा का साधन की तरह उपयोग करना सबसे बड़ा पाप है।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक इमेनुअल कांट ने कहा है कि मैं एक ही चीज
को अनीति मानता हूंः किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग करना अनीति है। प्रत्येक मनुष्य साध्य है। किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग करने का अर्थ हुआ, तुमने उसको वस्तु बना दिया, उसकी आत्मा छीन ली। जैसे पति पत्नी का साधन की तरह उपयोग करे--कामवासना की तृप्ति के लिए, या घर की व्यवस्था के लिए, या बाल-बच्चों की देखभाल के लिए--तो यह पाप है। पत्नी अपने आप में साध्य है, उसका साधन की तरह उपयोग नहीं हो सकता। न पति का साधन की तरह उपयोग हो सकता है।
पत्नियां भी पतियों का उपयोग साधन की तरह कर रही हैं। क्योंकि वही है रोटी-रोजी कमाने वाला, इसलिए उस पर निर्भर है। उसको छोड़ कर नहीं जा सकतीं, क्योंकि उसके ऊपर ही सारी अर्थवत्ता, सारी आर्थिकता, सारा आर्थिक बोझ परिवार का है।

मगर यह साधन की तरह उपयोग हो गया। इमेनुअल कांट कहता है मनुष्य का भी साधन की तरह उपयोग करना पाप है, तो परमात्मा का साधन की तरह उपयोग करना तो महापाप हो जाएगा। मगर लोग परमात्मा का साधन की तरह ही उपयोग करते हैं।
एक आदमी मेरे पास आया। और उसने कहा, मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा पैदा हुई है। आपके प्रति बहुत श्रद्धा पैदा हो गई है।
उसे देख कर ही मुझे शक हुआ कि जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है, क्योंकि उसकी आंख में मुझे श्रद्धा नहीं दिखाई पड़ती, लोभ दिखाई पड़ता है। मैंने पूछा कि हुआ क्या, तू पूरी बात कह। पूरी बात तो समझूं मैं!
उसने कहा, हुआ यह कि आज तीन साल से मेरे लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी। पंद्रह दिन पहले मैंने कहा कि अगर आप नौकरी लगवा दो--आपकी तस्वीर के सामने--अगर पंद्रह दिन में नौकरी लग गई तो भगवान मानूंगा, सदा पूजूंगा। और नौकरी लग गई। धन्यवाद देने आया हूं।
मैंने उससे कहा कि इसके पहले कि कुछ निर्णय कर, कम से कम एक-दो परीक्षाएं और ले ले। उसने कहा, आपका मतलब? मैंने कहा, मतलब यह कि जैसे पत्नी बीमार हो तो पंद्रह दिन का वक्त फिर देना कि पंद्रह दिन में अगर ठीक नहीं हुई तो फिर मुझसे बुरा कोई भी नहीं। एकाध घटना से निर्णय नहीं लेना चाहिए, मैंने उससे कहा, क्योंकि एकाध घटना सांयोगिक हो सकती है, संयोग की बात हो।
वह बोला, हां, यह भी हो सकता है। तो मैंने कहा, तू दो-चार प्रयोग करके देख। जब दो-चार प्रयोग में बार-बार ऐसा हो, फिर तू आना।
वह दूसरे प्रयोग में ही नहीं हुआ। पत्नी बीमार थी, उसने पंद्रह दिन का समय दिया, और पत्नी ठीक नहीं हुई। वह मेरे पास आया। उसने कहा, सब श्रद्धा खंडित हो गई। यह आपने क्या किया?
मैंने कहा, मैं कुछ न तो पहली दफे किया, न इस दफे किया। तू दो-चार और प्रयोग कर ले, नाराज न हो। यह भी संयोग होगा। लेकिन एक बात मैं तुझ से कह देता हूं कि तुझे न श्रद्धा से कोई लेना है, न परमात्मा से कुछ लेना है; तुझे तो नौकरी चाहिए लड़के को, पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए। तुझे तो उपयोग करना है साधन की तरह। मैं तेरा गुलाम नहीं हूं। और जब मैं ही तेरा गुलाम नहीं हूं तो यह सारा अस्तित्व तेरा गुलाम होगा? यह तेरी धारणा ही अधार्मिक है।
लेकिन लोग इस तरह की धारणाओं को धार्मिक समझते हैं। क्या-क्या मजा चलता है! लोग चले जाते हैं मंदिर में कि एक नारियल चढ़ा देंगे, अगर हमारी आकांक्षा पूरी हो गई! यह नारियल की वजह से इस देश में रिश्वत को नहीं मिटाया जा सकता, क्योंकि रिश्वत इस देश में धार्मिक परंपरा है। इस देश में रिश्वत को मिटाना असंभव है, क्योंकि रिश्वत हम कब से देते रहे, आदिकाल से हम यह काम करते रहे!
और क्या-क्या रिश्वत! एक नारियल चढ़ा देंगे--सड़ा नारियल, क्योंकि चढ़ाने
के लिए नारियल बाजार में अलग ही मिलते हैं, सस्ते, सड़े-सड़ाए। तीर्थ स्थानों में तो मंदिर के सामने ही नारियल की दुकान होती है। तुम मंदिर में चढ़ाते हो नारियल, दूसरे दिन वे ही नारियल दुकान पर बिकने लगते हैं, क्योंकि पुजारी उनको बेच देता है। वे सड़ गए हैं, सदियों से चढ़ाए जा रहे हैं। उनमें अब कुछ नारियल जैसा भीतर बचा नहीं है। मगर वे सस्ते मिलते हैं। एक पांच आने का नारियल लेकर चढ़ा दिया और निश्चिंत घर चले आए कि अब देखें क्या होता है! परमात्मा की इज्जत दांव पर लगा दी पांच आने के नारियल में, कि अब सम्हालो अपनी, नहीं तो चूके नारियल से! और एक भक्त खो जाएगा, एक संख्या कम हो जाएगी, एक वोट कम मिलेगा! बचाना हो अपनी इज्जत, रखनी हो अपनी लाज, तो जो कहा है वह करके दिखा दो!
यह तो परमात्मा का भी उपयोग हो गया। यह तो लोभ है, प्रेम नहीं।
तुम जान कर चकित होओगे कि अंग्रेजी में जो शब्द है प्रेम के लिए लव, वह संस्कृत के लोभ शब्द से बना है। जरूर लोभ में कुछ मामला है कि लोभ प्रेम होने का धोखा दे सकता है। लोभी आदमी अभिनय कर सकता है प्रेम का। चाहिए स्वर्ग, चाहिए स्वर्ग की अप्सराएं, चाहिए स्वर्ग में शराब के चश्मे, चाहिए गिल्मे और हूरें, चाहिए कल्पवृक्ष, और उनके नीचे लेटे हैं आराम से, और फिर

मौज ही मौज कर रहे हैं। यहां इच्छा पैदा हुई वहां इच्छा पूरी हुई, क्षण भर का अंतराल नहीं। और परमात्मा से प्रेम की बातें उठाते हैं लोग, कि परमात्मा से प्रेम है इसलिए तपश्चर्या कर रहे हैं।
सौ व्यक्तियों में शायद कभी एकाध कोई परमात्मा के प्रेम से आतुर होता है, आनंद मोहम्मद! और जब भी कोई परमात्मा के प्रेम से आंदोलित होता है तो प्रेम घटता नहीं, बढ़ता जाता है। प्रेम घटना जानता ही नहीं; यह वह आकाश है जो फैलना ही जानता है, विस्तीर्ण होना ही जानता है।
तुम कहते हो--
नहीं आती किसी को मौत, दुनियाए मुहब्बत में
चरागे जिंदगी की लौ, यहां मद्धम नहीं होती
उम्मीदें टूट जाती हैं, सहारे छूट जाते हैं
मगर ओशो, तेरी मुहब्बत की तमन्ना कम नहीं होती!
कुछ भी हो जाए, प्रेम नष्ट नहीं होता। मौत सिर्फ प्रेम के सामने हारी है।
नहीं आती किसी को मौत, दुनियाए मुहब्बत में!
प्रेमी मरता ही नहीं। प्रेमी कभी मरा ही नहीं। प्रेमी कभी मर सकता ही नहीं। क्यों? क्योंकि प्रेम में अहंकार-शून्यता अपने आप फलित होती है। और जहां अहंकार नहीं है वहां मृत्यु नहीं है। मरता तो सिर्फ अहंकार है। तुम तो कभी नहीं मरते। तुम तो शाश्वत हो, अमृत हो। अमृतस्य पुत्रः! हे अमृत पुत्रो! नहीं तुम्हारी कोई मृत्यु है।
मगर तुमने अहंकार जो बना लिया है, मैं-भाव जो बना लिया है, वह मरेगा।
वह कल्पित है। वह तुमने जबरदस्ती खड़ा कर लिया है। वह झूठा है। वह ऐसा ही है जैसे कि खेत में हम आदमी खड़ा कर देते हैं नकली। देखते तुम खेत में खड़े आदमी--एक हंडिया चढ़ा दी डंडे पर, गांधी टोपी लगा दी, अचकन पहना दी, शेरवानी चढ़ा दी, मुखौटा लगा दिया--बस खड़ा हो गया खेत का धोखे का आदमी। इससे पशु- पक्षी डर जाएं भला, और क्या होगा?
मगर इस धोखे के आदमी को भी अकड़ पैदा हो सकती है--मैं भी कुछ हूं। क्योंकि देखते नहीं कि मुझसे पशु-पक्षी डरते हैं! देखते नहीं कि मुझसे दूर से ही बड़े-बड़े जानवर, खूंखार जानवर देख कर नजर नदारद हो जाते हैं! इसको भी अकड़ पैदा हो सकती है।
खलील जिब्रान की एक छोटी सी कहानी है कि मैंने खेत में खड़े एक झूठे आदमी को देखा। रोज वहां से गुजरता था। उस झूठे आदमी को देख कर बड़ी दया आई कि बेचारा खड़ा रहता है--धूप हो, धाप हो, सर्दी हो, गर्मी हो, वर्षा हो, न दिन की फिकर है न रात, न सोने की सुविधा, बस खड़ा ही रहता है। थक भी जाता होगा। तो मैंने पूछा उससे कि भाई मेरे, थक नहीं जाते? वर्षा, गर्मी, सर्दी, रात-दिन सतत अहर्निश खड़े ही रहते हो, थक नहीं जाते?
वह झूठा आदमी खिलखिला कर हंसा और उसने कहा, थकना क्या, जानवरों को भगाने का मजा ऐसा है! दूसरों को डराने का मजा ऐसा है कि कौन थकता है!
इसलिए तुम देखते हो, राजनेता कभी नहीं थकते दिखाई पड़ते। दूसरों को डराने का मजा! दूसरों को घबड़ाने का मजा! राजनेता थकते ही नहीं, भागते ही रहते, चलते ही रहते आपाधापी में। न हो नींद चलेगा, थकान नहीं आती उन्हें। ये खेत के धोखे के आदमी हैं। खलील जिब्रान ठीक कह रहा है। दूसरों को डराने का मजा!
तुम्हारा अहंकार क्या है? दूसरों को डराने का मजा, और क्या? तुम्हारा अहंकार क्या है? दूसरों को दबाने का मजा। मैं दूसरों से बड़ा, यही भाव अहंकार।
यह भाव झूठा है। इसको तुम कितनी ही शेरवानी पहनाओ, और कितनी ही गांधी टोपी लगाओ, और कितनी ही खादी की अचकनें पहनाओ, यह झूठा है, झूठा ही रहेगा। इस झूठ को तुम कितना ही सजाओ, कितना ही संवारो, यह आज नहीं कल गिरेगा, गिरेगा ही! इसका गिरना सुनिश्चित है। यह कृत्रिम है। हम अस्तित्व से अलग हैं, यह बात ही झूठ है। बस इसी झूठ में से मौत आती है।
हम अलग नहीं हैं। मौत आकर हमारी इस भ्रांति को तोड़ देती है कि हम अलग हैं। मौत आकर हमें फिर अस्तित्व के साथ जोड़ देती है। मौत दुश्मन नहीं है,

मित्र है। दुश्मन है तो अहंकार है, क्योंकि अहंकार तोड़ता है, मौत जोड़ती है। लेकिन जो प्रेम से जुड़ गया उसके लिए तो मौत का कोई कारण ही न रहा, मौत का कोई काम ही न रहा। क्योंकि प्रेम तो पहले ही जोड़ दिया, अब मौत क्या करेगी? अब मौत का कोई उपयोग नहीं, अर्थ नहीं।
प्रेमी की, आनंद मोहम्मद, कोई मृत्यु नहीं है। जिसने प्रेम जाना उसने शाश्वतता जानी, उसने कालातीत अविनश्वर अस्तित्व जाना।
नहीं आती किसी को मौत, दुनियाए मुहब्बत में
आती ही नहीं, कभी आई नहीं, आ भी नहीं सकती।
चरागे जिंदगी की लौ, यहां मद्धम नहीं होती
प्रेम का दीया ऐसा दीया है जिसको फकीरों ने कहा हैः बिन बाती बिन तेल!
न तो उसमें बाती है जो जल जाए और न तेल है जो चुक जाए। वह रोशनी किन्हीं कारणों पर निर्भर नहीं है। इसलिए उस रोशनी को बुझाया नहीं जा सकता।
नहीं आती किसी को मौत, दुनियाए मुहब्बत में
चरागे जिंदगी की लौ, यहां मद्धम नहीं होती
उम्मीदें टूट जाती हैं, सहारे छूट जाते हैं
हां, माना बहुत बार उम्मीदें टूटेंगी, और बहुत बार सहारे छूटेंगे, और बहुत बार लगेगा कि मंजिल और दूर हो गई पास होने के बजाय, और बहुत बार लगेगा कि यह रात शायद टूटेगी नहीं, शायद सुबह होगी नहीं। मगर अगर प्रेम जगा है... मगर भगवान, तेरी मुहब्बत की तमन्ना कम नहीं होती!
अगर जगा है प्रेम तो सारी निराशाओं, सारी हताशाओं को पार करके भी जीएगा। अगर प्रेम जगा है तो उसे हराने की कोई क्षमता किसी परिस्थिति में नहीं है।
आनंद मोहम्मद, तुम्हारी आंख में झांक कर तुमसे कहना चाहता था, कहा नहीं। लेकिन तुमने जब संन्यास लेने का निर्णय लिया तो लक्ष्मी को मैंने जरूर कहा था कि मोहम्मद को पहले पूछ लो। मुसलमान परंपरा से आते हैं, संन्यास लेने के बाद कहीं अड़चन न हो, कहीं लोग परेशान न करें। क्योंकि और भी जिन मुसलमान मित्रों ने संन्यास लिया है उनको हजार तरह की परेशानियां हैं। हालांकि वे सब परेशानियां लाभ ही पहुंचाती हैं अंततः। लेकिन अंततः लाभ पहुंचाती हैं, शुरू में तो बड़ी अड़चनें हो जाती हैं।
तो लक्ष्मी से मैंने कहा था कि पहले पूछ लो। नहीं तो गुपचुप ही रहने दो, दिल की बात दिल में ही रहने दो, मत जाहिर करो ऊपर से, कहीं मुसीबत न आए! आनंद मोहम्मद सूरत से हैं। तो मैंने कहा, सूरत में कहीं उन्हें अड़चन न आए, कोई कठिनाई खड़ी न हो। वे पहले मुसलमान होंगे वहां संन्यासी।
लेकिन आनंद मोहम्मद ने कहा, नहीं, अब कोई अड़चन नहीं आ सकती और अब कोई बात रोक नहीं सकती। अब सब जोखम उठाने की तैयारी है। अब बिना संन्यासी के जीना व्यर्थ, संन्यासी होकर मर जाना सार्थक।
तो जरूर प्रेम जन्मा है। प्रेम ही ऐसी भाषा बोल सकता है और प्रेम ही इतना दुस्साहस कर सकता है। आएंगी कठिनाइयां, झेलना मजे से--मुस्कुराते हुए, नाचते हुए, गीत गाते हुए। संन्यासी होकर तुम सच्चे अर्थों में मुसलमान हुए हो। इसलिए झूठे अर्थों में जो मुसलमान हैं वे अड़चन डालेंगे। संन्यासी होकर कोई सच्चे अर्थों में हिंदू होता है, जैन होता है, ईसाई होता है, मुसलमान होता है, पारसी होता है, सिक्ख होता है। लेकिन जो झूठे अर्थों में हिंदू हैं, मुसलमान हैं, सिक्ख, ईसाई, पारसी हैं, वे तो अड़चन डालेंगे। उनकी अड़चनों को तुम परमात्मा की तरफ से भेजी गई भेंट समझना। क्योंकि उन सारी अड़चनों में से ही गुजर कर तुम पकोगे, परिपक्व होओगे, तुम्हारे भीतर का कमल एक दिन खिलेगा, निश्चित खिलेगा। बस प्रेम को बढ़ाए चलना; प्रेम को सम्हाले चलना; प्रेम की पुकार दिए चलना।
कितनी ही अंधेरी रात हो, अगर तुम प्रेम का गीत गाते ही रहे तो सुबह को होना ही पड़ेगा। परमात्मा कब तक अनसुना कर सकता है!

पांचवां प्रश्नः ओशो, जगाए-जगाए भी लोग जागते क्यों नहीं हैं?

रामकृष्ण, अपनी-अपनी मौज! इतनी स्वतंत्रता तो है। सच पूछो तो हमारी जगाने की कोशिश ही एक तरह का हस्तक्षेप है। कोई सोना चाहता है और हम जगा रहे हैं। अगर वह सोना चाहता है तो जरूर सोए। तुम्हें जगाने का ख्याल पैदा हुआ है, यह तुम्हारा ख्याल। उसे सोने की अभीप्सा है। और वह अपनी सुने कि तुम्हारी सुने?
हां, मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम जगाना बंद कर दो। तुम पुकारे जाओ। होने दो होड़। उसे सोने दो। उसकी मौज, वह सोए। घोड़े बेच कर सोए। और कंबल खींच ले ऊपर। तुम भी चढ़ जाओ घर की मुंडेरों पर, तुम भी आवाज दो। होने दो टक्कर। लेकिन शिकायत मत करना कि वह नहीं जागा। हम कौन हैं किसी को जबरदस्ती जगाने वाले? हमारी मौज थी जगाना तो हमने जगाने की कोशिश की; उसकी मौज थी सोना वह सोया।
कोई किसी दूसरे के लिए निर्णायक नहीं है। और कोई किसी दूसरे के लिए निर्णायक होना भी नहीं चाहिए। व्यक्ति की परम स्वतंत्रता पर जरा भी बाधा नहीं पड़नी चाहिए। इसलिए जो सच में जगाने वाले लोग हैं, वे बड़े आहिस्ता, बहुत धीमे-धीमे, फुसलाते हैं, जगाते नहीं। पैर भी रखते हैं तो ऐसे जैसे आवाज न हो। किसी की नींद अकारण न टूट जाए, जबरदस्ती न टूट जाए। उसमें तो हिंसा हो जाएगी। उसमें तो आग्रह हो जाएगा। और सब आग्रह हिंसक होते हैं। मैं जाग गया। मैं तुम्हें जगाना चाहूं। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि जैसा मैं हूं वैसा ही तुम्हें बनाने की इच्छा है। लेकिन क्यों? तुम्हारी मौज। मैं जागा हूं, मैंने जाग कर आनंद पाया है, इसलिए तुम तक खबर जरूर पहुंचा देनी है कि जाग कर एक आनंद मिला है। और तुम तक यह भी खबर पहुंचा देनी है कि कभी मैं भी सोया था। मैं दोनों स्थितियां जानता हूं-- सोने की भी और जागने की भी। और तुम एक ही स्थिति जानते हो--सोने की। इसलिए मैं चाहता हूं कि अगर तुम जाग जाओ तो तुम्हारे जीवन में भी आनंद का आकाश उपलब्ध हो जाए।
मगर जबरदस्ती तो नहीं। जबरदस्ती में तो भूल हो जाने वाली है। और तुम जितना जबरदस्ती करोगे जगाने की, उससे सिर्फ दो बातें पता चलेंगी। पहली तो यह कि रामकृष्ण, तुम भी अभी जागे नहीं, नहीं तो जबरदस्ती नहीं कर सकते। मैं तो सत्याग्रह शब्द को भी गलत कहता हूं, क्योंकि आग्रह मात्र असत्य के होते हैं, सत्य का कोई आग्रह नहीं होता। सत्य अनाग्रही होता है। महावीर ने ऐसा ही कहाः अनाग्रह सत्य है। आग्रह नहीं, निवेदन। इसलिए महावीर ने यह भी कहा कि मैं आदेश नहीं देता, सिर्फ उपदेश देता हूं।
भेद समझ लेना। आदेश का मतलब होता हैः करना ही पड़ेगा। उपदेश का अर्थ होता हैः निवेदन। मुझे ऐसा हुआ है, इसका निवेदन कर देता हूं। तुम्हारी मर्जी। चुनो तो ठीक, न चुनो तो ठीक। चुनोगे तो तुम्हें लाभ होगा, नहीं चुनोगे तो भी तुम्हारी स्वतंत्रता बरकरार है। फिर कभी चुनोगे, फिर किसी और क्षण में, किसी और सुबह जाओगे।
तुम पूछते होः "भगवान, जगाए-जगाए भी लोग जागते क्यों नहीं हैं?"
नहीं जागना चाहते इसलिए नहीं जागते हैं, बात सीधी-साफ है। और तुम्हारे जगाने की चेष्टा, उनकी नींद में कैसी उन्हें प्रतीत होती है, इसका तुम्हें ख्याल नहीं। उनकी नींद तो इतना ही समझती होगी कि कोई उपद्रवी आ गया, शोरगुल मचा रहा है।
मेरे एक प्रोफेसर थे, जब मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। मैं सुबह रोज पांच बजे उठ कर घूमने निकलता था उनके मकान के सामने से। उनको भी बड़ी इच्छा थी, मगर उठ नहीं पाते थे सुबह जल्दी। तो मुझसे कहा, इतनी कृपा करो, यहां से तो निकलते ही हो, जरा मुझे भी जगा दिए। मैंने कहा, आप पहले पक्का कर लो, क्योंकि जब मैं कोई काम करता हूं तो फिर करता ही हूं। उन्होंने कहा, मतलब? मैंने कहा, मतलब ऐसा कि मैं सिर्फ खटखटा कर ही नहीं चला जाऊंगा, कि एकाध आवाज दे दी और चला गया। फिर मैं हूं और आप हैं।
उन्होंने कहा, इसका मतलब क्या हुआ? मैंने कहा, मतलब इसका यह हुआ कि जब तक नहीं जगाऊंगा तब तक नहीं जाऊंगा। आप सोच लो।
उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, मैंने सोच लिया है।

मगर ऐसा होता है, शाम को तुम सोचते हो एक बात, सुबह तक कहां टिकती है! इतना चित्त थिर भी कहां है! सांझ सोचते होः सुबह पांच बजे उठना है। पांच बजे तुम ही सोचते होः अरे, आज एक दिन और न उठे तो चलेगा।
सांझ मुझसे ही कह कर सोए थे कि सुबह उठाना और मैंने पहले ही कह दिया था
कि शर्त समझ लेना कि मैं बिना उठाए नहीं जाऊंगा। अब मैं उन्हें उठाऊं और वे उठें न। तो मैंने उनका कंबल छीन कर फेंक दिया, तो वे बड़े नाराज होने लगे। उनकी पत्नी भी उठ आई। उनकी पत्नी भी बोली, आप यह क्या कर रहे हैं? कोई ऐसे किसी को उठाया जाता है?
मैंने कहा, बीच में मत बोलो। यह मेरा और उनका मामला है।
जब मैं उन्हें खींचने लगा बिस्तर से तो उनकी पत्नी बोली, आप कर क्या रहे हैं? और वे बिस्तर में दुबकने लगे। सर्दी की सुबह, और मैं समझ सकता हूं। लेकिन मैंने उनसे कहा, आप समझ ही लो, जितनी देर करोगे उतनी ही हुज्जत होगी। उठ ही आओ।
तो बेचारे उठ आए। कहा कि भाई, माफी मांगता हूं। आज उठा दिया ठीक, अब कभी मत उठाना। मैंने जो प्रार्थना की थी वह मैं वापस लेता हूं। मैं तो सोचता था कि दस्तक देकर चले जाओगे, उठना होगा तो उठ आएंगे।
लेकिन मैंने कहा कि जब आपने ही कहा उठना है, तो यह फिर कौन है जो सुबह सोना चाहता है?
हमारे भीतर एक ही मन नहीं है, यह अड़चन है। बहुत मन हैं। एक मन कहता है जागो, एक मन कहता है सोए रहो। एक मन कहता है कि ऐसा कर लो, एक मन कहता है वैसा कर लो। हम सोचते हैं एक मन है हमारे पास। नहीं; महावीर ने ठीक कहा है, मनुष्य के पास एक मन नहीं है, मनुष्य बहुचित्तवान है। महावीर ने पहली दफा मनुष्य के इतिहास में इस शब्द का उपयोग किया--बहुचित्तवान। ढाई हजार साल बाद अब पश्चिम में मनोविज्ञान ने इसको स्वीकार किया है कि मनुष्य के पास एक मन नहीं है, मल्टीसाइकिक! वही बहुचित्तवान।
तो एक मन कुछ कहता, दूसरा मन कुछ कहता, तीसरा मन कुछ कहता। सब मन अलग-अलग धाराओं में खींचते हैं। और फिर तुम जब किसी सोए आदमी से कुछ कहते हो, तो तुम जो कहते हो वही उस तक नहीं पहुंचता, पहुंच ही नहीं सकता। नींद की पर्तों को पार करते-करते अर्थांतर हो जाता है।
तुमने कभी सोचा, कभी देखा? रात तुम अलार्म भर कर सो गए हो कि सुबह पांच बजे उठना है। और जब अलार्म की घंटी बजती है तो तुम एक सपना देखते हो कि मंदिर है और मंदिर में घंटियां बज रही हैं और पुजारी पूजा कर रहे हैं। यह क्या हो रहा है? बाहर अलार्म की घंटी बज रही है और भीतर तुम सपना देख रहे हो कि काशी के विश्वनाथ के मंदिर में मौजूद हो, घंटियां बज रही हैं। यह तरकीब है नींद की, अलार्म को झुठलाने की, ताकि अलार्म तुम्हें जगा न पाए। पहले लोग सोचते थे कि सपना नींद में बाधा डालता है, अब हालत बिल्कुल दूसरी है। जो लोग सपने के ऊपर गहरा शोधकार्य कर रहे हैं... । और पश्चिम में बहुत काम चल रहा है। सिर्फ अमरीका में कम से कम दस विश्वविद्यालयों में सपने के ऊपर बड़ा काम चल रहा है। स्वप्न-विज्ञान खड़ा हो रहा है। उस स्वप्न-विज्ञान की नवीनतम शोधों में एक शोध यह है कि सपना नींद में बाधा नहीं है, सपना नींद की सुरक्षा है। सपना नींद का सिपाही है।
तुम अक्सर लोगों को कहते सुनते हो कि रात बहुत सपने आए, इसलिए सो नहीं सका। उनका कहना बिल्कुल गलत है। अगर सपने न आते तो वे बिल्कुल ही नहीं सो सकते थे। सपने आए तो वे कुछ-कुछ सो सके।
नींद है, और तुम्हें भूख लगी। अगर सपना न आए तो भूख तुम्हारी नींद को तोड़ देगी। लेकिन तुम एक सपना देखते हो कि राष्ट्रपति-भवन में भोज हो रहा है, तुम्हें भी निमंत्रित किया गया है। और तुम्हारे नासापुट सुगंधित खाद्य-पदार्थों का अनुभव कर रहे हैं, और तुम्हारी आंखें सजे हुए थाल देख रही हैं, और तुम भोजन करने बैठ गए, और तुम भोजन कर रहे हो, और तुम डट कर भोजन कर रहे हो। यह सपना क्या है? यह सपना सिर्फ नींद को बचाने का उपाय है; नहीं तो नींद टूट जाएगी, भूख लगी है जोर से! इस तरह झूठा भोजन करके नींद बच गई। तुम्हें भ्रांति दे दी गई, तुम सो गए।

जैसे छोटे बच्चों को मां को दूध नहीं पिलाना होता है तो रबर की चूसनी मुंह में पकड़ा देती है। वे रबर की चूसनी पीते-पीते ही सो जाते हैं। वे सोचते हैं कि मां का स्तन मुंह में है। सपना रबर की चूसनी है। उससे धोखा पैदा हो जाता है।
तुम जब सोए हुए आदमी को जगाते हो तो वह क्या अर्थ लेगा भीतर अपनी नींद में, कहना कठिन है।
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि बताओ शादी के वक्त दूल्हा बजाय घोड़ी के गधे पर बैठ कर क्यों नहीं जाता?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, इसलिए कि दुल्हन दो गधों को एक साथ देख कर
डर न जाए।
एक नदी में एक आदमी डूब रहा है। एक सिपाही आकर किनारे पर खड़ा हो गया है
और उस डूबते आदमी से--क्योंकि सिपाही तो समझता है वह तैर रहा है--पूछता है, तुम्हें यह बोर्ड नहीं दिखाई पड़ता? यहां पर तैरना मना है! सिपाही ने तख्ती की ओर इशारा करते हुए पानी में डुबकियां खाते व्यक्ति से कहा। डुबकियां खाते हुए आदमी ने कहा, लेकिन सिपाही जी, मैं तो डूब रहा हूं। उस व्यक्ति ने हाथ-पांव मारते चिल्ला कर कहा। अच्छा, तब कोई बात नहीं, सिपाही दूसरी ओर जाते हुए बोला। अगर डूब रहे हो तो फिर कोई बात नहीं, नियम का उल्लंघन नहीं हो रहा है।
नींद की व्याख्या होगी, अपनी व्याख्या होगी। एक बुढ़िया सड़क पार करते हुए ठोकर खाकर गिर गई तो एक व्यक्ति ने उसे जल्दी से उठा लिया। बुढ़िया उसके प्रति आभार प्रकट करते हुए बोली, खुदा तुझे लंबी उमर दे! और जैसे तूने मुझे उठाया वैसे ही खुदा भी तुझे जल्दी उठाए।
रामकृष्ण, तुम तो जगा रहे हो, मगर वह सोता आदमी क्या सोच रहा है, इसके संबंध में तुम कुछ भी नहीं जान सकते।
नया कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं,
सब कुछ पुराना है;
मगर वह रंग नूतन है
नया जिससे जमाना है।
कि गा लेता हूं कांटों में भी थोड़ा मुस्कुरा कर मैं, सुना देता हूं रह कर मौन रे इस प्राण का स्वर मैं, मगर सुनता यहां पर कौन? सुनने का बहाना है। हजारों बार स्वर जो जो उठे दुहरा चुका हूं मैं, हजारों बार खाली हाथ जाकर आ चुका हूं मैं,
मगर फरियाद का वह काफिला रुक कर रवाना है।
सुबह के पहले ही देखा कि घर घर शाम आती है,
जगा कर फिर सुलाने का नया पैगाम लाती है,
मगर किस्मत में सोना है, कहां जगता जमाना है।
मगर सुनता यहां पर कौन? सुनने का बहाना है।
लोग सुनते कहां हैं! बस सुन लेते हैं, कान सुन लेता है, हृदय तक बात नहीं पहुंचती। बात बुद्धि की समझ में आ जाती है, प्राण अछूते रह जाते हैं। लेकिन रामकृष्ण, इससे परेशान होने की जरूरत नहीं है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। तुम्हारे मन में ऐसा लगता हो कि सोया आदमी जागे, तो पहला तो काम यह करो कि खुद जागो। अभी तो वह घटना नहीं घटी। और तुम दूसरे सोए हुए लोगों को जगाने की चिंता में मत पड़ जाना।
इसी तरह मिशनरी पैदा होते हैं। ये जितने मिशनरी दिखाई पड़ते हैं दुनिया में, ये सोए हुए लोग हैं जो दूसरे सोए हुए लोगों को जगाने की चेष्टा में लगे हैं। ये बीमार हैं जो दूसरे बीमारों को ठीक करने के उपाय खोज रहे हैं। इनको खुद ईश्वर का कोई पता नहीं और ये दूसरों को ईश्वर समझा रहे हैं। इनको प्रार्थना का कुछ पता नहीं और ये प्रार्थना सिखा रहे हैं। इनका जीवन वैसे ही मूर्च्छा से भरा है जैसे औरों का, मगर ये उपदेश दे रहे हैं जागरूकता का।
मैंने सुना है, एक बहुत सुंदर युवती एक कैथलिक पादरी के पास अपने पाप
की स्वीकारोक्ति, कन्फेसन करने आई। परदे की ओट में पादरी बैठा--एक तरफ

पादरी, दूसरी तरफ युवती। लेकिन पादरी युवती को जानता है, अति सुंदर है! युवती कहती है कि मुझसे कुछ भूल हो गई है, उसके लिए स्वीकार करने आई हूं। क्षमा करने की कृपा करें। कल एक युवक आया, उसने मेरे पैर पर हाथ रखा। पादरी उत्सुक हुआ! पादरी ने कहा, फिर? लेकिन उसके पूछने में कि फिर, बड़ी आतुरता थी! युवती ने कहा, फिर वह मेरी साड़ी खींचने लगा। पादरी की धड़कन बढ़ी और उसने पूछा, फिर? युवती ने कहा, फिर मुझे भी अच्छा लग रहा था तो मैंने साड़ी खींच लेने दी। पादरी ने पूछा, फिर? तो उसने कहा, फिर, फिर मेरी मां भीतर आ गई। पादरी ने कहा, धत तेरे की!
ये मिशनरी हैं, ये सारे जगत को जगाने घूम रहे हैं। ये सारे जगत को धार्मिक बनाने की चेष्टा में संलग्न हैं। ये सारे जगत को जगाना चाहते हैं, परमात्मा की तरफ आतुर करना चाहते हैं।
रामकृष्ण, भूल कर कभी मिशनरी मत बन जाना। मिशनरी सब से गई बीती दशा है।
जागो पहले। अभी तुम यह क्यों चिंता करते हो कि जगाए-जगाए भी लोग जागते क्यों नहीं? अरे महाराज, तुम भी नहीं जाग रहे हो! तुम किनकी बातें कर रहे हो? तुम इस तरह बात कर रहे हो जैसे कोई और है जो जगाए-जगाए नहीं जग रहा है। तुम अपने को बाद दे रहे हो। तुम अपने को गिनती में ले ही नहीं रहे। और असली सवाल तुम्हारे जागने का है। तुम जागो। इससे क्या करना है? दूसरों की तुम्हें क्या पड़ी? अपनी आप निबेर! तुम तो जागो कम से कम!
फिर जब तुम जाग जाओगे तो तुम जानोगे कि दूसरों को भी कैसे जगाएं--कैसे प्रेमपूर्ण ढंग से! कैसे आहिस्ता-आहिस्ता! कैसे धीरे-धीरे फुसलाएं कि वे अपने सपनों से सरक कर बाहर आ जाएं। यह तुम तभी कर सकते हो जब तुम स्वयं जाग गए होओ, क्योंकि तब तुम्हें पता होगा नींद से और जागने का पूरा रास्ता क्या है।
लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि लोग आकर पूछते हैं, मुझसे निरंतर लोग आकर पूछते हैं कि बड़ी अनीति फैल रही है, नीति कैसे फैलाई जाए? अपने को बाद दे रहे हैं! कि दुनिया बड़ी अधार्मिक होती जा रही है, धर्म को कैसे फैलाया जाए? एक बात उन्होंने मान ली है कि वे इसमें सम्मिलित नहीं हैं, वे बाहर हैं।
सच्चा धार्मिक व्यक्ति पूछता है कि मैं सोया हूं, मैं कैसे जागूं? झूठा धार्मिक व्यक्ति पूछता है, लोग नहीं जाग रहे हैं, लोग कैसे जागें? रामकृष्ण, पहले तुम जागो। तुम जागे तो दुनिया जागी। तुम्हारे जागने में ही औरों के जागने का भी द्वार खुलेगा।
मैं यहां लोगों को जगाने वाले लोग तैयार नहीं कर रहा हूं; मैं यहां जागने वाले लोग तैयार कर रहा हूं। मेरा संन्यासी मिशनरी नहीं है। मेरा संन्यासी सेवक नहीं है, उसे किसी की सेवा नहीं करनी है। अपनी ही सेवा कर ले तो बहुत। खुद ही प्रज्वलित अग्नि बन जाए तो बहुत। खुद ही निर्धूम शिखा हो जाए तो बहुत। फिर उस निर्धूम शिखा के आस-पास अपने आप और दीये सरक कर आने लगेंगे। और जो अपने आप आएगा उसको जगाने में मजा है।
जिसको प्यास है वह कुएं पर आ जाता है। कुएं को प्यासे के पास जाने की कोई जरूरत नहीं।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र छठवां प्रवचन

आनंद स्वभाव है

पहला प्रश्नः ओशो, कभी सोचा भी नहीं था कि जीवन इतना स्वाभाविकता से, आनंदपूर्ण जीया जा सकता है। शाम को गायन-समूह में इतनी नृत्यपूर्ण हो जाती हूं। जिस जीवन की खोज थी मुझे, वह मिलता जा रहा है। कहां थी--और कहां ले जा रहे हैं आप! जितना अनुग्रह मानूं, उतना कम है। ऐसा प्यार बहा रहे हो ओशो, चरणों में झुकी जाती हूं मैं!

रंजन भारती, मनुष्य का यही सौभाग्य है, यही दुर्भाग्य भी। सौभाग्य कि उसे शाश्वत आनंद उपलब्ध हो सकता है। उसके भीतर बीज हैं अमृत के। और दुर्भाग्य कि जो उपलब्ध हो सकता है वह उपलब्ध होता नहीं।
मनुष्य परमात्मा होने को पैदा हुआ है, लेकिन मनुष्य भी नहीं हो पाता है, परमात्मा होना तो बहुत दूर। मनुष्य के भीतर संभव है कि आनंद के हजार-हजार कमल खिलें, लेकिन उन कमलों की तो कोई खबर ही नहीं मिलती, वे तो बीजों में ही छिपे पड़े रह जाते हैं, वे तो कीचड़ में ही खोए रहते हैं। और जो ऊर्जा कमल बन सकती थी वही ऊर्जा कांटे बन जाती है। सौभाग्य यही कि मनुष्य आकाश जैसा विराट हो सकता है और दुर्भाग्य यही कि छोटे-छोटे आंगन में सीमित हो गया है।
ये दोनों बातें एक साथ इसलिए संभव हैं कि मनुष्य स्वतंत्र है। मनुष्य अकेला प्राणी है अस्तित्व में जो स्वतंत्र है, जो अपने को चुनता है; शेष सारे प्राणी जैसे हैं वैसे पैदा होते हैं। आम का बीज बोओगे तो आम का वृक्ष होगा और नीम के बीज बोओगे तो नीम का वृक्ष होगा; कोई स्वतंत्रता नहीं है। कार्य-कारण का अपरिहार्य नियम काम करता है। ऐसा संभव ही नहीं है कि नीम के बीज से और आम पैदा हो। नीम को कोई स्वतंत्रता नहीं है। उसे नीम होना ही पड़ेगा। निरपवाद रूप से नीम के बीज नीम होने को बाध्य हैं। कुत्ता कुत्ता होगा, सिंह सिंह होगा, चूहा चूहा, बिल्ली बिल्ली, वृक्ष वृक्ष।
अकेला मनुष्य है, जो केवल अवसर की भांति पैदा होता है--एक संभावना मात्र। सुनिश्चित कुछ भी नहीं। उसे स्वयं ही निर्णय लेना होगा। उसे एक-एक कदम चल कर स्वयं अपने को निर्मित करना होगा। उसका प्रत्येक निर्णय उसकी मूर्ति को गढ़ेगा। यह बड़ा गौरव है कि हम स्वतंत्र हैं, लेकिन यह बड़ा बोझ भी। नीम झंझट के बाहर है; नीम होना निश्चित ही है। नीम का भाग्य है; विधि ने सब लिख दिया है। नीम के बीज में सारे सूत्र छिपे हैं।
मनुष्य पैदा होता है कोरी स्लेट की भांति; उस पर गालियां लिखो तो लिख सकते हो, गीत लिखो तो लिख सकते हो। उपनिषद बन सकते हैं तुम्हारे भीतर। और हो सकता है कि तुम कौड़ियां ही गिनते रहो। यह महान स्वतंत्रता महान दायित्व भी है। स्वतंत्रता हमेशा दायित्व लाती है। और चूंकि मनुष्य की स्वतंत्रता अपरिसीम है, उसका दायित्व भी अपरिसीम है।
चारों तरफ दुखी लोगों की भीड़ है। इसी भीड़ में एक नये बच्चे का आगमन होता है। रंजन, इसी भीड़ में एक दिन तू आई। चारों तरफ दुखी लोग हैं। इन्हीं दुखी लोगों को देख कर हर बच्चे को लगता है कि यही जीवन है--बस यही जीवन है! ये चिंतित, बोझग्रस्त लोग, जिनके जीवन में नृत्य की कोई झलक नहीं, जिनके ओंठों को बांसुरी कभी छुई नहीं, जिनके प्राणों में कोई पुलक नहीं, न उत्सव है, न आनंद है; बस बोझ है एक जीवन कि खींचे चले जाना है; दुख है एक जीवन कि झेल लेना है; कि जिस तरह बन सके, किसी तरह, चार दिन की बात है गुजार लेनी है; फिर तो मौत आएगी और राहत दे देगी। लोग मौत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिगमंड फ्रायड ने अपने जीवन के प्राथमिक वर्षों में पहली खोज की थी,
वह थी लिबिडो की, जीवेषणा की, कि मनुष्य जीने को अपार रूप से आतुर है; कि मनुष्य जीवन चाहता है, जीना चाहता है, जीते ही रहना चाहता है; कि मनुष्य के भीतर जीवन की अदम्य आकांक्षा है। लेकिन जीवन के अंतिम वर्षों में फ्रायड को समझ में आया कि वह बात अधूरी थी। लिबिडो, जीवेषणा आधा सिद्धांत है। तब

उसने दूसरा सिद्धांत खोजा, जिसको उसने थानाटोस कहा। जैसे जीवन की आकांक्षा है, ऐसे ही मृत्यु की भी आकांक्षा है।
फ्रायड बहुत चौंका था, उसे भरोसा न आया था कि ये विपरीत आकांक्षाएं आदमी में कैसे हो सकती हैं! लेकिन मजबूरी थी; जितना आदमी के भीतर झांका उतना ही पाया कि मनुष्य एक सीमा के बाद मरने को आतुर हो जाता है, जीने को नहीं। बच्चे जीने को आतुर होते हैं, शायद जवान भी अभी जीने से आशा रखते हैं; लेकिन जैसे-जैसे जवानी हाथ से बाहर जाने लगती है, पैर कंपने लगते हैं, बुढ़ापा उतरने लगता है, कि गहरे में, कहीं गहरे में एक आकांक्षा उठती है कि अब तो मौत आए, कि अब तो मौत आ ही जाए, कि अब तो मौत विश्राम दे!
रंजन, चारों तरफ तुम्हारे लोग हैं जो दुखी हैं; जिन्होंने जीवन को वस्तुतः जाना ही नहीं; जो पैदा तो हुए लेकिन जन्मे नहीं; जो पैदा तो हुए लेकिन द्विज न बने; जिनका दूसरा जन्म न हुआ; जिनकी आत्मा पैदा न हुई। देह की तरह तो वे हैं, मगर उनकी देह ऐसी है जैसे खाली मंदिर, जिसमें किसी देवता का निवास नहीं। उनकी देह ऐसी है जैसे खाली घर, जिसमें वर्षों से कोई रहा नहीं। धूल-धवांस जम गई है, मकड़ियों ने जाले बुन लिए हैं, सांप-बिच्छुओं का आवास हो गया है।
ऐसी मनुष्य की दशा है। और बच्चा इन्हीं से सीखता है--मां-बाप से, परिवार से, पड़ोस से, शिक्षकों से, पंडित-पुरोहितों से--चारों तरफ जो भीड़ है लोगों की, इन्हीं से सीखता है। और इनसे एक शिक्षा अनिवार्यरूपेण मिल जाती है--अचेतन को मिलती है, चुपचाप उसके अचेतन में यह बात धीरे-धीरे गहन होती जाती है--कि जीवन दुख है, कि जीवन बस दुख है। और फिर साधु-संत हैं जो समझाने को बैठे हैं कि जीवन दुख है, कि आवागमन दुख है। पंडित-पुरोहित हैं, मंदिर-मस्जिद हैं, जहां यही शिक्षा दी जा रही है कि जीवन तुम्हारे पापों का दंड है, कि तुमने किए थे पाप पिछले जन्मों में इसलिए जीवन मिला है। यह एक कारागृह है जीवन, जहां तुम अपना दंड भुगत रहे हो। और यह बात समझ में भी आती है, ठीक भी लगती है, क्योंकि चारों तरफ इसके लिए प्रमाण मिलते हैं।
हंसते हुए अगर तुम किसी को देखो, नाचते हुए तुम अगर किसी को देखो, मस्त-अलमस्त अगर तुम किसी को देखो, तो तुम्हें लगता है कि शायद पागल होगा! क्योंकि समझदार लोग तो ऐसे नहीं करते। समझदार लोग तो ऐसे कोई तानपूरा लेकर नाचते नहीं। समझदार लोग तो मृदंग बजा कर गीत नहीं गाते। हां, कभी होली-दीवाली, छुट्टी के दिन, वह बात और है। उस दिन हम क्षमा कर देते हैं। बाकी वह जीवन का अंग नहीं है, निकास है। जिंदगी में साल भर दुख ही दुख, एक दिन रंग उड़ा लेते हैं, गुलाल उड़ा लेते हैं।
होना तो यह चाहिए था कि रंग रोज उड़ता, गुलाल रोज उड़ती, होली रोज होती
और दीवाली रोज होती। मनुष्य की क्षमता तो यही है कि होली रोज, दीवाली रोज। मगर मनुष्य बन गया है नरक और उसके पीछे कारण है। कारण है सर्वाधिक महत्वपूर्ण कि जिनके हाथ में सत्ता है वे नहीं चाहते कि तुम आनंदित होओ। वे फिर कोई भी हों--राजनेता हों, पंडित हों, पुरोहित हों, धनपति हों--जिनके हाथ में सत्ता है वे नहीं चाहते कि आदमी आनंदित हो। क्यों? क्योंकि दुखी आदमी को गुलाम बनाना आसान है, आनंदित आदमी को गुलाम बनाना बहुत मुश्किल है। दुखी आदमी गुलाम बनने को आतुर होता है। दुखी आदमी तलाश करता है उसकी जो उसे गुलाम बना ले, क्योंकि गुलाम होकर वह सारे उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। सारे बोझ से मुक्त हो जाता है।
आनंदित व्यक्ति में व्यक्तित्व होता है; दुखी व्यक्ति में कोई व्यक्तित्व नहीं होता। दुखी व्यक्ति भीड़ का हिस्सा होता है; आनंदित व्यक्ति व्यक्ति होता है, उसमें एक निजता होती है। और आनंदित व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को किसी भी मूल्य पर खोने को राजी नहीं हो सकता, क्योंकि वह जानता है उसका आनंद भी उसी क्षण खो जाएगा जिस क्षण स्वतंत्रता खोएगी। दुखी आदमी को स्वतंत्रता खोने में अड़चन क्या है? स्वतंत्रता है ही नहीं, कभी रही ही नहीं, खोती हो तो खो जाए; उसका कुछ लुटता नहीं, उसका कुछ जाता नहीं, उसे कोई अड़चन नहीं है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुसे। दरवाजा खुला था, चोर बड़े हैरान हुए! लोग दरवाजे बंद करके सोते हैं। अमावस की

अंधेरी रात, वर्षा के दिन, लोग ऐसे दरवाजा खुला छोड़ कर नहीं सोते। लेकिन हो सकता है, भूल-चूक! भीतर गए। मुल्ला बिस्तर पर लेटा था। सोचा कि सोया है। घर में खोजने लगे। जब वे घर में अंधेरे में खोज रहे थे तभी उन्होंने पीछे देखा कि कोई आया, बहुत घबड़ा गए। मुल्ला पीछे खड़ा था। मुल्ला ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं दीया जला लाऊं। तीस साल से इस घर में मैं खोज रहा हूं, मुझे कुछ नहीं मिला। तुम अंधेरे में खोज रहे हो, मैं रोशनी में खोजता रहा हूं। घबड़ाओ मत जरा भी, मैं दीया जला लेता हूं। दीया जला कर हम दोनों खोजें। मेरे भाग्य में तो कुछ मिला नहीं, शायद तुम्हारे भाग्य से कुछ मिल जाए तो आधा- आधा कर लेंगे।
तुम्हारी जिंदगी में कुछ भी न हो तो तुम दरवाजे भी बंद करके क्यों सोओ! आएं चोर तो आ जाएं।
एक और कहानी मैंने सुनी है। चोर मुल्ला नसरुद्दीन के घर में घुसे। जो कुछ टूटा-फूटा, बर्तन इत्यादि थे, वे इकट्ठे कर रहे थे। मुल्ला कंबल ओढ़ कर सोया था, सर्दी की रातें थीं। जब वे सब टूटे-फूटे बर्तन इत्यादि इकट्ठे करके लौटे, जो कि कुछ भी नहीं था, लेकिन अब आ गए थे तो कुछ जो भी हाथ लगे ले जाना ठीक था। तो बहुत हैरान हुए कि मुल्ला उघाड़ा सो रहा है और उसने कंबल जमीन पर बिछा दिया है। ऐसे भी कुछ खोने का डर नहीं था, कुछ मिला ही नहीं था। चोरों ने कहा कि नसरुद्दीन, यह कंबल तो तुम्हारे शरीर पर था, इसे तो तुम बचा सकते थे।
नसरुद्दीन ने कहा कि भाई, जो भी तुम सामान इकट्ठा कर लिए हो, ले कैसे जाओगे? तो कंबल बिछा दिया, इसमें बांध लो और ले जाओ। मेरी झंझट मिटी। इस कंबल में भी इतने छेद हैं कि किसी काम का नहीं, सर्दी रुकती नहीं, धोखा ही बना रहता है।
चोर तो बड़े घबड़ाए। ऐसा तो कभी हुआ नहीं था कि किसी के घर चोरी करने जाओ, सामान इकट्ठा करो, और वह कंबल भी बिछा दे कि बांध लो! जल्दी से बांधा और भागे। जब भागने लगे रास्ते पर तो मुल्ला भी उनके पीछे-पीछे चला आ रहा था। रुक कर उन्होंने कहा कि भई, तुम क्यों पीछे आ रहे हो? मुल्ला ने कहा, मैं घर बदलने की बहुत दिन से सोच रहा था। चलो तुम ढोए लिए चल रहे हो सामान, अब मुझे कहां छोड़े जाते हो, मुझे भी साथ में ले लो। और सब तो ले ही आए, अब पीछे कुछ बचा भी नहीं है। अब इतना ले आए हो तो मुझे भी सम्हालो। जहां तुम रहोगे वहीं हम भी रहेंगे। अरे दो रूखी-सूखी तुम खाओगे तो हम भी खाएंगे। छप्पर के नीचे तो सोते होओगे तो वहीं हम भी सोएंगे।
जिसके पास कुछ भी नहीं है उसे गुलाम बनाया जा सकता है, उसे लूटा जा सकता है। लेकिन जिनके जीवन में आनंद की थोड़ी किरण है उन्हें तुम लूट न सकोगे, उन्हें तुम गुलाम न बना सकोगे। वे अपनी आनंद की किरण के लिए सब कुछ दांव पर लगा देने को तत्पर हो जाएंगे।
रंजन के जीवन में ऐसा ही हुआ है। रंजन वर्षों बाद भारत लौटी है। पति
तो अमेरिका में हैं, मुझे पत्र लिखते हैं कि रंजन को वापस भेज दें। रंजन वापस जाना नहीं चाहती। पहली बार आनंद की किरण उतरी। पहली बार उत्सव जगा है। पहली बार अनुभव हुआ है कि जीवन क्या है। पहला संस्पर्श--सुबह की ताजी हवा का, सुबह की पहली किरण का! और फूल खिले हैं! और पहली बार पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने शुरू हुए हैं।
ये नहीं चाहते पंडित-पुरोहित, राजनेता, कि लोग आनंदित हों। आनंदित होते ही लोग बगावती हो जाते हैं। तू ही देख, रंजन, तू ही बगावती हो गई। दुखी रहती तो जिस कारागृह में थी उससे कभी छूट नहीं सकती थी। आनंद बरसा तो अब कोई कारागृह तुझे समा नहीं सकता। सब कारागृहों को तोड़ कर तू बह जाएगी।
और ध्यान रखना, यहां आश्रम में रंजन को क्या है? वहां पीछे सब छोड़ कर
आई है--घर-द्वार, संपत्ति, व्यवस्था, सुविधा। पति खूब कमाते हैं, सम्मानित हैं। वहां सब, जिसे हम बाहर की सुविधा कहें, है। यहां आश्रम में क्या है? इस छोटी सी छह एकड़ की जमीन पर चार सौ लोग तो निवास कर रहे हैं! और जो निवास कर रहे हैं वे तो ठीक ही हैं, चार सौ लोग शायद छह एकड़ जमीन पर रहना भी मुश्किल, और कम से कम तीन हजार लोग निरंतर आते-जाते हैं। सुविधा क्या है?

लेकिन सारी सुविधाएं छोड़ कर तू आ सकी, क्योंकि जिसके जीवन में आनंद की थोड़ी सी भी अनुभूति शुरू हो जाए उसके जीवन में पहली बार त्याग करने की क्षमता आती है।
उपनिषद कहते हैंः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः! इस अदभुत वचन के दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ, जो किया जाता रहा है, जो सदियों से दोहराया गया है, और जो गलत है--वह अर्थ है कि त्यागो, छोड़ो भोग को, तो ही उपलब्धि है। मैं कुछ और अर्थ करता हूं। मैं अर्थ करता हूंः त्यागो तो ही भोग है। उन्होंने ही भोगा जिन्होंने त्यागा। लेकिन वे त्याग क्यों सके? वे त्याग इसलिए सके कि भोग सके। भोग पहले उतरा, भोग की किरण पहले आई, फिर त्याग आसान हो गया। पुरानी व्याख्या थी कि पहले त्यागो, छोड़ो, तब जीवन में आनंद उपलब्ध होगा। मेरी व्याख्या है कि जीवन में आनंद उपलब्ध हो तो त्याग अपने आप चला आता है छाया की भांति। छोड़ना नहीं पड़ता, छोड़ना हो जाता है।
रंजन, तू कहती हैः "कभी सोचा भी नहीं था कि जीवन इतना स्वाभाविकता से, आनंदपूर्ण जीया जा सकता है।"
ऐसी ही दशा है अनंत-अनंत लोगों की। उन्होंने सोचा ही नहीं कि जीवन का
और भी रंग हो सकता है, और भी ढंग, और भी शैली हो सकती है। उन्होंने सोचा ही नहीं कि जीवन में छिपी एक वीणा है जिसके तार छेड़ने हैं। उन्हें स्वप्न में भी पता नहीं है कि वे किस संपदा को लेकर आए थे और भिखमंगे बने बैठे हैं; कि उनकी झोली भरी है हीरे-जवाहरातों से और वे कंकड़-पत्थर बीन रहे हैं; कि उनके प्राणों में परमात्मा का राज्य है और वे ठीकरे इकट्ठे कर रहे हैं।
मैं खुश हूं रंजन। मेरे आशीष तेरे लिए! यह नृत्य बढ़ता जाएगा। यह नृत्य रोज गहरा होता जाएगा। इसी नृत्य में डूबते-डूबते एक दिन परमात्मा में लीन हो जाएगी।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप अमृत दे रहे हैं और अंधे लोग आपको जहर पिलाने
पर आमादा हैं। यह कैसा अन्याय है?

सुधीर, अन्याय इसमें कुछ भी नहीं; बस लोगों की पुरानी आदत, सदियों- सदियों का आग्रहपूर्ण चित्त, परंपराओं से बंधे हुए मस्तिष्क, पक्षपातों से घिरे हुए लोग। उन्हें लगता है कि मैं उनकी संस्कृति नष्ट कर रहा हूं, उनका धर्म नष्ट कर रहा हूं। स्वभावतः वे नाराज होते हैं। उन्हें समझ में भी नहीं आता कि मैं वही कह रहा हूं जो उपनिषदों ने कहा था, वही जो कृष्ण ने, वही जो बुद्ध ने।
लेकिन बुद्ध और उनके बीच ढाई हजार साल का फासला है। और ढाई हजार साल में पंडितों ने शब्दों के साथ इस तरह का खिलवाड़ किया है कि बुद्ध ने क्या कहा, यह तो आज तय करना ही मुश्किल है। बुद्ध भी लौट आएं तो उन्हें भी तय करना मुश्किल हो जाएगा कि क्या मैंने कहा था और क्या पंडितों ने जोड़ा है पच्चीस सौ वर्षों में।
कृष्ण भी लौट आएं तो सिर ठोंक लेंगे अपना। क्योंकि उनकी समझ में ही न आएगा कि गीता पर इतनी टीकाएं! मैंने तो सीधी-सादी बात कही थी अर्जुन को। और अर्जुन कोई दार्शनिक नहीं था कि उससे उलझी बातें की जाएं; योद्धा था, क्षत्रिय था। सीधी-सीधी बातें ही उससे की जा सकती थीं।
और गीता बिल्कुल सीधी-साफ है। मगर गीता रहे सीधी-साफ, लोग इरछे-तिरछे हैं। और पंडित तो बहुत ही तिरछा-तिरछा होता है। उसकी तो चाल ही तिरछी- तिरछी होती है। वह तो शब्दों में से ऐसे अर्थ निकालने में कुशल होता है जिनकी कि तुम कल्पना भी न कर सको। वह तो बाल की खाल निकालने में कुशल होता है। उसका सारा जीवन ही बस शब्दों के खिलवाड़ में, शब्दों की शतरंज जमाने में बीतता है। उसने गीता में से ऐसे-ऐसे अर्थ निकाल लिए जिनकी कृष्ण ने कभी कल्पना भी न की होगी। अर्जुन की तो बात ही छोड़ दो। अर्जुन को तो कभी सोच में भी न आया होगा। सब निकाल लिया गीता में से। जिसको जो दिल में आता है वही गीता में से निकाल लेते हैं लोग। तुम्हें जो निकालना हो वही निकाल सकते हो। गीता बिल्कुल असमर्थ है। मालिक तुम हो--शब्दों को तोड़ो-मरोड़ो, नये अर्थ दो, व्याख्याएं ऐसी आरोपित करो जो तुम्हारी अपनी हैं।

तो लोगों को लगता है कि मैं उनके धर्म को नष्ट कर रहा हूं। लोगों को लगता है कि मैं उनकी संस्कृति के आधार छीन रहा हूं। और एक अर्थ में उन्हें ठीक ही लगता है। उनकी जो संस्कृति है, उसको तो मैं निश्चित ही नष्ट करना चाहता हूं। हां, बुद्धों की संस्कृति को बचाना चाहता हूं। कृष्ण की और महावीर की संस्कृति को निश्चित बचाना चाहता हूं। मगर वह तो बात कुछ और है। उसे तो जानना हो तो अपने भीतर जाना पड़े। उसे जानने के लिए शास्त्रों में जाने की जरूरत नहीं है। उसे जानने के लिए आत्मा में जाने की जरूरत है। क्योंकि बुद्ध ने अपने भीतर जाकर जाना था। बुद्ध ने क्या कहा, इसकी फिकर छोड़ो; तुम अपने भीतर जाओ, तुम्हारे भीतर भी वही मूल स्रोत मौजूद है जो बुद्ध के भीतर मौजूद था।
लेकिन लोगों की धारणाओं के विपरीत, मेरा काम उन्हें कष्ट दे रहा है।
वे जहर पिलाने पर अगर आमादा हैं तो बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। सुधीर, इससे परेशान न होओ। यह उन्होंने सदा किया है। उन्होंने कब बुद्धों को जहर नहीं पिलाया या पिलाने की कोशिश नहीं की है? अगर वे मुझे जहर पिलाने को आमादा न हों तो चमत्कार होगा! तो उसका अर्थ होगा कि मनुष्य-जाति रूपांतरित हो गई, क्रांति हो गई। अगर वे मुझे जहर पिलाने को आमादा न हों तो इसका अर्थ हुआ कि जो उन्होंने जीसस के साथ किया और सुकरात के और मंसूर के और बुद्ध और महावीर के, मेरे साथ नहीं करेंगे।
ऐसा सौभाग्य का क्षण अभी नहीं आया है और शायद कभी नहीं आएगा। भीड़ शायद कभी भी इतने बोध को उपलब्ध नहीं हो सकेगी। यह तो बहुत थोड़े से गिने-चुने लोगों की क्षमता है कि वे पहाड़ों के शिखरों पर चढ़ें और वहां से सूर्य के दर्शन करें--बदलियों के पार उठें! इतनी ऊंचाई तक उठना सभी के वश की बात नहीं। और वश की भी हो तो सभी उठना नहीं चाहते।
रामकृष्ण कहते थे, चील बहुत ऊपर उड़ती है, फिर भी उसकी नजर नीचे घूरे पर पड़े हुए मरे चूहे में लगी होती है। चील आखिर चील; ऊपर भी उड़ेगी तो क्या खाक ऊपर उड़ेगी! चांद-तारे उसे दिखाई नहीं पड़ेंगे; उसे दिखाई पड़ेगा चूहा, जो कचरेघर में मरा हुआ पड़ा है। वहीं उसके प्राण अटके हैं।
पंडित अगर ऊंची-ऊंची बातें भी करें तो कुछ ख्याल मत देना। पुरोहित अगर बहुत बड़े-बड़े दार्शनिक लच्छेदार सिद्धांतों की विवेचना में भी उतरें तो उसको कोई मूल्य मत देना। उनकी नजर घूरे पर पड़े किसी मरे चूहे में लगी होगी। और चूंकि मैं चाहता हूं तुम्हारी आंखें मरे चूहों से मुक्त हों, घूरों से मुक्त हों, तुम्हारी आंखें चांद-तारों से भरें, क्योंकि वही तुम्हारा असली अधिकार है--निश्चित ही वे मुझसे नाराज होंगे, वे मुझसे परेशान होंगे।
एक अच्छी बात कम से कम हो रही है। मेरे कारण हिंदू पुरोहित, मुसलमान मौलवी, जैन मुनि, कम से कम मेरे कारण सब एक बात पर सहमत हैं, कम से कम एक बात में उनमें एकता हो रही है। इतना ही क्या कम है! उनमें एकता किसी बात पर नहीं होती, मगर मेरे विरोध में कम से कम वे एक हैं। कानजी स्वामी से लेकर आचार्य तुलसी तक, करपात्री से लेकर पुरी के शंकराचार्य तक एक बात में राजी हैं--मेरे विरोध में। चलो यही अच्छा। चलो कोई बात तो उनमें एकता ला रही है। मगर यह बात बड़ी विचारणीय है कि एक व्यक्ति के संबंध में ये सारे लोग विरोध में हैं, तो जरूर कुछ बात होगी। नहीं तो इतने लोगों को विरोध में होने का कोई कारण नहीं था। वे मेरी उपेक्षा नहीं कर पा रहे हैं। चाहे मेरे कोई पक्ष में हो, चाहे मेरे कोई विपक्ष में हो, उपेक्षा कोई नहीं कर पा रहा है। और यह अच्छा लक्षण है। मैं चाहता हूं इस देश में प्रत्येक व्यक्ति को मैं मजबूर कर ही दूंगा, मेरे संबंध में उसे निर्णय लेना ही होगा--या तो पक्ष या विपक्ष। मैं बीच में किसी को छोडूंगा नहीं; कोई यह नहीं कह सकेगा कि हम तटस्थ।
दागे-दिल देख लिया, गैर ही समझा फिर भी,
हमको तुमसे नहीं, अपने से है शिकवा फिर भी।
जख्म पर जख्म उठाने का मजा देख चुके,
जी में जीने का बदस्तूर है सौदा फिर भी।
हम सराबों में रहे, तुम भी सराबों में रहे,

क्यों रहे? सोच तो लें, सोचना अच्छा फिर भी।
मुझको नादान समझ के वो हंसे, खूब हंसे, जख्म उनका नहीं अपना ही कुरेदा फिर भी।
हौसला हार के जो बैठ गए, बैठ गए,
काफिला चलता रहा, चलता रहेगा फिर भी।
सूरज इक और भी पूरब में उगा है, देखो!
दूर होता नहीं जेहनों से कुहासा फिर भी।
शोरोगुल शगल बना, शगल से मन बहला लो,
अपने इस देश में सन्नाटा रहेगा फिर भी।
दोस्तो, मान लिया रीत भी अब रीत नहीं,
सरफरोशी की कसम भूल न जाना फिर भी।
जहर शिव ने नहीं, हमने भी पिया है रहबर,
यह तसलसल तो तसलसल ही रहेगा फिर भी।
यह कोई शिव ने ही जहर पिया था, ऐसा नहीं है; जब भी कोई शिवता को उपलब्ध होगा उसे जहर पीना ही पड़ेगा, उसे नीलकंठ होना ही पड़ेगा!
जहर शिव ने नहीं, हमने भी पिया है रहबर,
यह तसलसल तो तसलसल ही रहेगा फिर भी।
यह सिलसिला तो पुराना है और यह सिलसिला आगे भी जारी रहेगा।
शोरोगुल शगल बना, शगल से मन बहला लो,
अपने इस देश में सन्नाटा रहेगा फिर भी।
यह देश सदियों-सदियों से मर गया है। हम एक मुर्दा कौम की भांति जी रहे हैं। चलो यही अच्छा, अगर मेरे कारण थोड़ा सन्नाटा भी टूटे। चलो लोग अगर मेरे विरोध में भी शोरगुल करें तो भी मैं खुश होऊंगा कि जिंदगी के कुछ लक्षण तो दिखाई पड़े। न आए फूल, कांटे तो आए! कांटे आए तो फूल भी आते होंगे। चलो कुछ मुर्दे में हलचल तो हुई।
लोग बिल्कुल मर गए हैं। लोगों की जिंदगी में किसी भी चीज पर दांव लगाने की हिम्मत नहीं रह गई है, जोखिम उठाने का अभियान खो गया है। और जोखिम उठाना जिंदगी है।
सूरज इक और भी पूरब में उगा है, देखो!
दूर होता नहीं जेहनों से कुहासा फिर भी।
लोग ऐसे अंधेरे के राजी हो गए हैं कि एक सूरज क्या दो सूरज उग आएं, तो
भी उनके जेहन से, उनकी आत्मा से कुहासा दूर नहीं होगा।
लेकिन कुछ लोग, जिनमें जीवन की थोड़ी सी धारा अभी भी बहती है, आकर्षित होने लगे हैं। वे जहर देने वाले लोग भी इसीलिए तो उत्सुक हो रहे हैं, क्योंकि किन्हीं को अमृत के दर्शन होने लगे हैं। नहीं तो वे जहर देने को भी उत्सुक नहीं होते। उनकी उत्सुकता अकारण नहीं है। जैसे-जैसे मेरे प्रति कुछ लोगों का प्रेम बढ़ेगा, जैसे-जैसे मेरे पास दीवानों का, मस्तों का समूह इकट्ठा होगा, वैसे-वैसे जहर देने वाले भी जहर देने की तैयारी में लग जाएंगे।
हम सराबों में रहे, तुम भी सराबों में रहे,
क्यों रहे? सोच तो लें, सोचना अच्छा फिर भी।
लोग मृगतृष्णा में जीए हैं, मृगतृष्णा में जी रहे हैं; सोचना भी भूल
गए हैं। मैं उनसे इतना ही कह रहा हूं कि एक बार जरा सोच लें, फिर से पुनर्विचार कर लें। मैं समस्याओं को फिर से जगा रहा हूं। लोग इससे नाराज होते हैं, क्योंकि वे मानते थे समस्या हल हो चुकी। वे मानते थे हमने समाधान पा लिया, अब क्या करना है? अब तो तानो चादर और सोओ। समाधान हमें मिल गया है। उपनिषद में मिल गया, वेद में मिल गया, गीता में, धम्मपद में। समाधान हमें मिल चुका है, अब करना क्या है?
लेकिन धर्म का समाधान ऐसा समाधान नहीं है जैसे विज्ञान के समाधान होते हैं। इस भेद को खूब समझ लेना। विज्ञान में अगर एक बात एक बार खोज ली जाती है तो हर व्यक्ति को उसे बार-बार नहीं खोजना पड़ता। क्योंकि विज्ञान बाहर है और बाहर से उसकी शिक्षा दी जा सकती है। जैसे अलबर्ट आइंस्टीन ने सापेक्षवाद का सिद्धांत खोज लिया तो बात खत्म हो गई; अब हर विद्यार्थी को,

जो भौतिकी पढ़ने गया है विश्वविद्यालय में, उसे सापेक्षवाद के सिद्धांत को फिर-फिर नहीं खोजना पड़ेगा। बिजली एक बार खोज ली गई, खोज ली गई; अब ऐसा नहीं है कि हर एक को बिजली खोजना पड़े। जिसने बिजली खोजी उसे जीवन भर लग गया खोजते-खोजते; और तुम्हें बिजली के संबंध में सीखना हो तो दिनों में यह काम हो जाएगा, वर्षों का सवाल नहीं; क्योंकि खोज तो हो गई है। जिसने रेडियो बनाया उसे तो बहुत समय लगा। लेकिन अब? अब तुम्हें रेडियो बनाने में क्या अड़चन है? जरा से सीखने की बात है। मूल आधार तो जान लिया गया है, अब तो सिर्फ तकनीक सीखने की बात है। विज्ञान तो निर्धारित हो गया।
इसलिए विज्ञान की शिक्षा हो सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि धर्म अंतस-जगत का अनुभव है। बुद्ध ने जाना अपने अंतरतम को और खूब हमसे कहा भी। लेकिन फिर भी जब हमें जानना होगा तो हमें ही जानना होगा; हम बुद्ध की बातों को मान कर नहीं बैठे रह सकते। हमें स्वयं ही बुद्ध होना होगा। हमें फिर उसी रास्ते से गुजरना होगा जिससे बुद्ध गुजरे। उसी ध्यान, उसी समाधि की हमें तलाश करनी होगी।
धर्म को प्रत्येक व्यक्ति को फिर-फिर खोजना होता है। यह धर्म और विज्ञान का भेद है। विज्ञान की परंपरा होती है, धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। और हालतें बड़ी उलटी हैंः हमने धर्म की परंपरा बना ली। धर्म की परंपरा होती ही नहीं। सत्य की कोई परंपरा नहीं होती। परंपरा का अर्थ होता हैः जो बाप तुम्हें दे दे, पुरानी पीढ़ी तुम्हें दे जाए।
निश्चित ही, जब तुम्हारे पिता विदा होंगे तो तुम्हें धन दे जाएंगे, मकान दे जाएंगे, जमीन दे जाएंगे, जिंदगी भर उन्होंने जो चोरी-चपाटी की थी उसका अनुभव भी शायद दे जाएं। लेकिन अगर उन्होंने परमात्मा को जाना था, तो बस गूंगे का गुड़! वह अनुभव तुम्हें नहीं दे जाएंगे। इतना ही काफी है कि वे तुमसे कह जाएं कि यही जिंदगी सब कुछ नहीं है, और भी ज्यादा है; मैंने जाना है, तू भी खोजना। तुम्हें खोज की अभीप्सा दी जा सकती है, लेकिन खोज का निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता।
और मैं उसी अभीप्सा को फिर जगाने की कोशिश कर रहा हूं। इससे बहुत लोग,
जो मानते थे कि समाधान मिल गया, बेचैन होंगे। स्वभावतः, उनके समाधान छीन रहा हूं मैं। फिर से उन्हें समस्या पकड़ा रहा हूं। मेरे पास जो आता है उससे मैं समाधान छीन लेता हूं, उसका शास्त्र छीन लेता हूं, उसके सिद्धांत छीन लेता हूं; उसे फिर से नये प्रश्न देता हूं। फिर उसे लंबी यात्रा करनी होगी। जो उसने मुफ्त और सस्ते में मान लिया था, वह उसे जानना होगा। और जानना जोखिम भरा काम है।
इसलिए लोग अगर नाराज हों, सुधीर, तो इसमें अन्याय कुछ भी नहीं, स्वाभाविक है। मैं उनके जीवन को प्रश्नों से भर रहा हूं। मैं उनकी सारी सांत्वना को खंडित किए दे रहा हूं। उन्होंने किसी तरह अपने को समझा-बुझा कर संतोष मान रखा था, मैं उनका संतोष तोड़े डाल रहा हूं। मैं उन्हें फिर असंतुष्ट कर रहा हूं। क्योंकि मेरे देखे, जब तक परमात्मा को जानने की गहन अभीप्सा पैदा न हो--ऐसी प्यास, ऐसी प्यास, जैसी कि रेगिस्तान में भटके किसी आदमी को लगती है--तब तक कोई परमात्मा को जान नहीं पाता। अभीप्सा कीमत है परमात्मा को जानने की। तिल-तिल जलना होगा। रोआं-रोआं प्यासा होगा। धड़कन-धड़कन पुकारेगी उसे। श्वास-श्वास बस उसी की याद से भर जाएगी, तब मिलन होगा। तो स्वभावतः बहुत लोग नाराज होंगे। उन्हें नाराज होने दो, तुम उन पर नाराज मत होना। तुम यह भी मत सोचना कि वे अन्याय कर रहे हैं। तुम उन पर दया करना, उन पर करुणा रखना। मुझे गालियां पड़ें, मुझ पर जहर फेंका जाए, तुम चिंता न लेना। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। तुम तो अपनी मस्ती में मस्त रहना। तुम्हारी मस्ती ही मेरी सुरक्षा है। तुम्हारी करुणा ही, तुम्हारा प्रेम ही मेरी सुरक्षा है। तुम अगर करुणा से भरे रहे तो मुझ तक कोई जहर नहीं पहुंच पाएगा--तुम्हारी करुणा से गुजरते-गुजरते अमृत हो जाएगा। लेकिन तुम्हारा मन भी जल्दी से नाराज हो जाता है। कोई मुझे गाली दे तो मेरे संन्यासी को क्रोध आना स्वाभाविक लगता है। मैं उसकी गाली को माफ कर सकता हूं, तुम्हारे क्रोध को माफ नहीं कर सकूंगा। तुम अक्षम्य हो अगर तुमने क्रोध किया। उसने तो ठीक ही किया, मैंने उसके घाव छू दिए।

और तुम अगर गीत गाते ही रहो, उसकी गालियां तुम्हारे गीत में बाधा न बनें, और तुम्हारी बीन बजती ही रहे, तो आज नहीं कल उसे समझना होगा। आज नहीं कल उसे खोजना होगा कि बात क्या है? मेरी गालियां व्यर्थ हुई जा रही हैं! मेरा जहर काम नहीं कर रहा है! बस वही बात उसे भी शायद मेरे पास ले आए। वही बात शायद उसे भी, जैसे तुम मुझमें डूब गए हो, डुबाने का कारण बन जाए। और कुछ उसे मेरे पास नहीं ला सकता। तुम्हारे विवाद से यह नहीं होगा। तुम तर्क से उसे न समझा सकोगे। तर्क काम नहीं पड़ेगा। तुम्हारा प्रेम ही काम पड़ सकता है।
और प्रेम से बड़ा कोई तर्क है भी नहीं। प्रेम अंतिम तर्क है। जो प्रेम
से नहीं हो सकता वह हो ही नहीं सकता है। और तर्क से किसी को आज समझा लो, कल वह बड़ा तर्क खोज लेगा। तर्क से ज्यादा से ज्यादा लोगों के मुंह बंद किए जा सकते हैं, किन्हीं की आत्माएं रूपांतरित नहीं होतीं। तर्क रूपांतरकारी नहीं है। तर्क की वह क्षमता नहीं है।
प्रेम करो! जितनी गालियां मुझ पर बरसें, उतना प्रेम करो। जितना जहर मेरी तरफ फेंका जाए, उतना तुम अमृत दो। नाचो! तुम्हारी मस्ती को फैलने दो! तुम्हारी अलमस्ती चारों तरफ फैलती जाए। एक बात तुम्हें सिद्ध कर देनी है कि मेरा संन्यासी आनंदित है। बस तुम्हारा आनंद ही प्रमाण होगा कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, कोकिल की कुहू-कुहू और आपका प्रवचन, दोनों इकट्ठे चलते हैं। किस पर ध्यान करें? कृपया बताएं!

शांति स्वरूप, चुनो ही क्यों? दोनों को साथ-साथ चलने दो। कोयल की कुहू-कुहू मेरे प्रवचन में बाधा नहीं है, पृष्ठभूमि है। कोयल की कुहू- कुहू, मैं जो कह रहा हूं उसी को समर्थन है; मैं जिस मस्ती का पाठ पढ़ा रहा हूं उसी मस्ती के लिए आधार है।
लेकिन हमें साधारणतः एक बात सिखाई गई है--एकाग्रता। और एकाग्रता और ध्यान में हम भेद नहीं कर पाते। किताबों में लिखा हैः ध्यान यानी एकाग्रता।
इससे गलत कोई और बात नहीं हो सकती। ध्यान और एकाग्रता बिल्कुल भिन्न बातें हैं। एकाग्रता का अर्थ होता हैः सब तरफ से ध्यान को खींच लो और एक जगह लगा दो। एकाग्रता का अर्थ होता हैः चित्त को संकीर्ण कर लो। ध्यान का अर्थ होता हैः चित्त को विस्तीर्ण करो! ध्यान का अर्थ होता हैः सब द्वार-दरवाजे खोल दो। कोयल ने गीत गाया है, वह भी आए; और यह ट्रेन की आवाज, वह भी समाहित हो; और मैं जो बोल रहा हूं, वह भी। इन सब में विरोध करने की कोई जरूरत नहीं है। ये सब एक साथ आत्मसात कर लेने हैं।
और तुम चकित होओगे, बहुत चकित होओगे। एकाग्रता से तनाव होता है, तनाव में जल्दी ही थक जाओगे। एकाग्रता जबरदस्ती है, प्रयास है। ध्यान अप्रयास है। ध्यान विश्राम है, एकाग्रता श्रम है।
तुम मुझे ध्यान से सुनो, एकाग्रता से नहीं। और ध्यान से सुनने का यह अर्थ नहीं है कि बस बिल्कुल अकड़ कर, सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद करके, टकटकी मुझ पर बांध दो। तब तो तुम बहुत कुछ चूक जाओगे। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वही कोयल कह रही है। कोयल अपनी भाषा में कह रही है। और निश्चित ही उसकी भाषा बहुत प्रीतिकर है। उसे वंचित न करो। शांत, सब तरफ से खुले हुए मेरे पास बैठो। और तुम हैरान होओगे, बाधा नहीं पड़ेगी।
तुम्हारी धारणा यह है कि अगर तुमने कोयल को सुना तो डिस्ट्रैक्शन होगा, विघ्न हो जाएगा। कोयल को सुनोगे तो मुझको कैसे सुनोगे? मुझको सुनोगे तो कोयल को सुनना बंद करना होगा।
तुमने कभी प्रयोग नहीं किया। यह तुम्हारी धारणा आमूल रूप से गलत है। तुम दोनों को सुनो। और देखो, कोई विघ्न नहीं पड़ेगा। कोयल क्यों विघ्न डालेगी? कोयल पृष्ठभूमि बन जाएगी। और कोयल की पृष्ठभूमि में मेरे वचन ज्यादा सार्थक होंगे, कम सार्थक नहीं। मेरे वचनों में ज्यादा संगीत भर जाएगा। जो मैं नहीं कर सकता वह कोयल कर सकती है।

और एक बार तुम यह प्रयोग करोगे तो तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा अनुभव से
कि विघ्न किसी चीज से नहीं पड़ता, विघ्न पड़ता है एकाग्र होने की चेष्टा से। चूंकि तुम एकाग्र होना चाहते हो, इसलिए कोयल से बाधा पड़ती है, क्योंकि कोयल की आवाज तुम्हें एकाग्र नहीं होने देती। और अगर तुम एकाग्र होना ही नहीं चाहते, फिर कौन विघ्न डाल सकता है? और जहां विघ्न नहीं है वहीं ध्यान है।
फिर क्या फर्क पड़ता है कि कोयल की आवाज और मेरी आवाज दोनों मिल गईं? तुम्हें डर है कि कहीं कोई एकाध शब्द मेरा चूक न जाए! कहीं ऐसा न हो कि कोयल की आवाज में एकाध शब्द मेरा सुनाई न पड़े!
चलेगा! शब्दों में बात है भी नहीं। शब्द सुन भी लिए तो कुछ मिलने वाला नहीं है। शब्द न भी सुन पाए तो कुछ खो नहीं जाएगा। शब्द से भी ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ यहां घटित हो रहा है। मेरी-तुम्हारी सन्निधि, मेरा- तुम्हारा पास-पास होना घटित हो रहा है। यह सामीप्य, यह सत्संग, यह महत्वपूर्ण है। शब्द तो सिर्फ बहाना है। शब्द तो सिर्फ एक बहाना है। अन्यथा निःशब्द घटित हो रहा है। और जब तक तुम्हें मेरा निःशब्द समझ में न आएगा तब तक तुम मुझे न समझ पाओगे। मेरी बातें मेरी बातों में नहीं हैं। मेरी बातें मेरे शून्य में हैं।
कोयल को भी सुनो। ये जो और पक्षी गीत गाते हैं, इनको भी सुनो। यह वृक्षों से गुजरती हुई हवाओं की आवाज, यह ट्रेन, यह हवाई जहाज, यह रास्ते पर शोरगुल, यह सब--सब परमात्मा है! इसलिए किसी को छोड़ो मत। किसी को काटो मत। किसी तरफ अपने द्वार-दरवाजे बंद मत करो। आने दो इस सब को। तुम इस सब को अंगीकार करो, आलिंगन करो। और तब देखो, उस आलिंगन में कैसा आनंद है!

चौथा प्रश्नः ओशो, सत्य कहां है?

धीरेन्द्र, सत्य यहां है! कहां की क्यों पूछते हो? कहां यानी कहीं और-- काबा में, काशी में? कहां यानी कहीं और--गिरनार में, शिखर जी में? कहां यानी कहीं और--हिमालय पर, तिब्बत में?
नहीं-नहीं, यहां! और यहां में सब सम्मिलित है--काशी भी, काबा भी, कैलाश भी। क्योंकि काशी भी यहां के बाहर नहीं है। और कैलाश भी यहां के बाहर नहीं है।
यह सारा अस्तित्व इकट्ठा है। यहां खंड-खंड नहीं हैं, टुकड़े-टुकड़े नहीं हैं। एक ही सागर है। एक ही समय है। एक ही आकाश है।
तो ऐसा मत पूछो कि सत्य कहां है, क्योंकि प्रश्न ही तुम गलत पूछ रहे हो। तुम पूछ रहे होः कहां जाऊं? कहां खोजूं? कहीं जाना नहीं है। जाना बंद करो, खोजना छोड़ो, और सत्य मिलेगा। खोजा कि चूके। खोजने का अर्थ ही है कि बाहर खोजना। और जिसने बाहर खोजा वह चूका।
मैं कहता हूं, खोजो मत। इस सन्नाटे में, इस क्षण में--जहां मैं खो गया हूं, जहां तुम खो गए हो, जहां अस्तित्व अपनी शुद्धता में हमें घेरे हुए है-- इस परिपूर्णता में, इस आह्लाद में, इस ठहरे हुए समय में, इस क्षण की शाश्वतता में, बस यहीं है सत्य। तुम काश सारी आकांक्षाएं, इच्छाएं, वासनाएं, सत्य को खोजने की आपाधापी, दौड़, सब छोड़ कर चुप हो जाओ, तो मिल गया! लेकिन सदियों-सदियों से हमें सिखाया गया है। पूछो, सत्य कहां है? तो कोई कहेगा, सातवें आसमान पर। बात जंचती है, उससे एक राहत मिलती है। तो फिर ठीक है, इसीलिए मुझे नहीं मिला सत्य क्योंकि सातवें आसमान पर है और मैं जमीन पर हूं। मिले तो कैसे मिले? जब सातवें आसमान पर पहुंचूंगा तब मिलेगा। इससे राहत भी मिल गई, भविष्य के लिए आशा भी मिल गई, और तुम जैसे थे वैसे के वैसे रहे, क्रांति से भी बच गए।
मैं तुमसे कहता हूंः यहां! मैं तुम्हें बेचैन कर दूंगा। सातवें आसमान
पर नहीं। जो सातवें आसमान पर है वह अगर मुझसे पूछेगा तो उससे भी कहूंगाः यहां! अगर मैं काबा में होता तो भी यही कहताः यहां! और काशी में होता तो भी कहताः यहां! मेरा शब्द वही होता, मेरा उत्तर वही होता।

लेकिन सदियों से कहा गया है कि सत्य धरती पर कहां, आकाश में है, स्वर्ग में है! तुम्हें धरती के खिलाफ बहुत शिक्षा दी गई है। और मजा यह है कि रहना धरती पर, जीना धरती पर। प्रेम यहां, मैत्री यहां, करुणा यहां, पुण्य यहां, पाप यहां! श्वास यहां लेनी और सत्य आकाश में, सातवें आकाश पर! तो तुम्हारा जीवन अगर थोथा न हो जाए तो क्या हो?
चांद दूज का
पूजा करते सभी
पर छा जाते हैं बादल भी कभी-कभी
और कभी आंखों के अंधड़
कभी धूल की छाया
तथा कभी मिट्टी की माया
या काया पानी की
जिसको जग आंसू कहता है
हर लेती है किरण नयन की
खो जाती अभिलाषा
बीहड़ वन की चौड़ी लंबी हरियाली में जैसे पगडंडी जीवन की
या कि प्रेम में भाषा।
हर पखवारे
मगर चांद पर
फूल चढ़ाने
चारण बन कर
गीत सुनाने
आ जाते हैं अनगिन प्यासे स्नेह लुटाने
दीप जलाने।
पारस का चुंबन
नित कदंब का फूल है
जिसकी शोभा शूल है
मूल छिपा है यहीं धूल में सत्य छिपा है कहीं भूल में ज्यों धारा को
ठांव ठिकाना
मिलता है बस कूल से।
पांव न धरती पर जम पाया
पर उड़ते आकाश में
सुमन शून्य के
मन के बुल्ले
फलते बिना बतास के
आस निगोड़िन
गोड़ा करती
खेत हरे विश्वास के
पर मानव कितना भोला है
सहता आया कोटि-कोटि वर्षों से सुनता आया बड़ा झमेला है
युग युग से
पर जीवन का सदा
उपासक रहा
सिंधु का पानी उस पर दहा
मगर फिर भी जो नहीं ढहा
धर्म धरती का
विश्वासों का मेला है।
हम अपनी आशाओं में, विश्वासों के खेतों को पानी सींचते रहते हैं।

पांव न धरती पर जम पाया
पर उड़ते आकाश में
ऐसी हमारी दशा है। पैर जमीन पर नहीं जम पाए और बातें आकाश की। जमीन पर चलना नहीं आया और आकाश में उड़ने की बातें। हम ऐसे वृक्ष हैं जिसने जड़ें तो फैलाईं नहीं जमीन में और बदलियों से ऊपर उठने की आतुरता पैदा हो गई।
पांव न धरती पर जम पाया
पर उड़ते आकाश में
सुमन शून्य के
मन के बुल्ले
फलते बिना बतास के
आस निगोड़िन
गोड़ा करती
खेत हरे विश्वास के
पर मानव कितना भोला है
सहता आया कोटि-कोटि वर्षों से सुनता आया बड़ा झमेला है
युग-युग से
पर जीवन का सदा
उपासक रहा
सिंधु का पानी उस पर दहा
मगर फिर भी जो नहीं ढहा
धर्म धरती का
विश्वासों का मेला है।
यहां हमने कितने विश्वास बना लिए हैं! पृथ्वी पर तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्मों के कम से कम तीन हजार संप्रदाय होंगे। इस छोटी सी पृथ्वी पर इतने धर्म, इतने संप्रदाय, इतने विश्वास, इतनी मान्यताएं! निश्चित ही कहीं कुछ चूक हो गई है, कहीं कुछ भूल हो गई है। कहीं कोई बहुत बुनियादी भूल हो गई है।
मूल छिपा है यहीं धूल में
सत्य छिपा है कहीं भूल में
बस इसे न जानने से ही बड़ी भूल हो गई है। हमारे इस जीवन में ही, जैसे हम हैं, इसमें ही कहीं सत्य छिपा है। इस पृथ्वी में ही, इस मृण्मय में ही कहीं चिन्मय का आवास है। इस मिट्टी की देह में ही कहीं परमात्मा विराजमान है। इस प्रेम में ही, इस पार्थिव प्रेम में ही प्रार्थना का फूल खिलेगा, परमात्मा का मंदिर बनेगा।
मत पूछो सत्य कहां है! सत्य यहां है, अभी है! कहां की बात पूछ कर तुम अपने को समझा लेना चाहते हो कि बहुत दूर हो तो अच्छा, जितना दूर हो उतना अच्छा, मृत्यु के पार हो तो बहुत अच्छा, तो जिंदगी हमें जैसे जीनी है वैसे जी लें और फिर देखेंगे, जब समय आएगा तब देखेंगे।
एक बौद्ध भिक्षु श्रीलंका में अपने मरण के करीब आया। उसने सुबह-सुबह घोषणा कर दी कि आज सांझ सूरज के डूबते मैं समाप्त हो जाऊंगा। उसके हजारों शिष्य थे, वे सब इकट्ठे हुए। सांझ होते-होते बड़ी भीड़ हो गई। कोई अस्सी वर्ष का वृद्ध भिक्षु था और कोई पचास वर्ष से लोगों को समझा रहा था--निर्वाण, निर्वाण, निर्वाण! शिष्य सोच रहे थे कि मरते वक्त देखें वह क्या कहता है! अधिक को तो आशा थी वह फिर निर्वाण की ही कुछ बात करेगा। पचास साल से सुनते- सुनते उनके कान भी पक गए थे।
और वही हुआ। मरने के ठीक पहले उसने आंख खोली और कहा कि एक बात पूछ लूं? तुम्हें मैंने पचास वर्ष तक समझाया कि मुक्त होने का रास्ता क्या है, मार्ग क्या है, निर्वाण पाने की विधि क्या है; मगर तुमने न सुना, न तुम समझे; तुम टालते रहे कल पर। अब कोई कल नहीं होगा, मैं जा रहा हूं। तो मैं पूछता हूं, अगर किसी को निर्वाण पाना हो तो खड़ा हो जाए। तो मैं साथ ही उसे ले चलूं।

वहां हजारों लोग इकट्ठे थे, एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। देखने लगे होंगे एक-दूसरे की तरफ कि भाई उठो, हमें तो और भी पच्चीस काम हैं, तुम क्या कर रहे हो बैठे-बैठे? लेकिन कोई उठा नहीं। एक आदमी ने सिर्फ हाथ उठाया। फकीर ने कहा, सिर्फ हाथ उठाते हो, मैंने कहा उठ कर खड़े हो जाओ!
उसने कहा, हाथ सिर्फ पूछने के लिए उठा रहा हूं कि क्या बता सकते हैं कि निर्वाण को पाने की विधि क्या है?
उसने कहा, नासमझ, विधि का सवाल ही नहीं, मैं ले जाने को तैयार हूं। अब
तू विधि का क्या करेगा?
उसने कहा, विधि इसलिए कि अभी मैं जाने को तैयार नहीं हूं। विधि बता जाएं, जब जाना होगा तो विधि का उपाय कर लेंगे। कहां है निर्वाण, इसके कुछ इशारे कर जाएं, कुछ इंगित कर जाएं, कोई नक्शा दे जाएं। अभी मुझे जाना नहीं है, आपसे साफ कह दूं। मेरे उठे हाथ को देख कर कुछ गलती न समझ लेना। इसीलिए मैं उठ कर खड़ा भी नहीं हुआ।
और भी अनेक हाथ उठ गए। उन्होंने कहा कि हम भी जानना चाहते हैं। अब आप
जा ही रहे हैं तो जाते वक्त कम से कम विधि बता दें।
तुम सोचते हो यह दयनीय दशा! वह भिक्षु हंसा और बिना कुछ बताए विदा हो गया। उसने आखिरी मजाक किया। पचास साल से विधियां सुन रहे हैं और नहीं समझे, और अभी भी विधि पूछ रहे हैं!
विधि पूछना चालबाज मन की तरकीब है। मन कहता हैः कभी करेंगे! और जब भी तुम किसी सदगुरु के पास पहुंचोगे तो वह कहेगा--अभी! कभी की बात मत उठाओ। समय को बीच में मत लाओ।
तुम पूछते हो धीरेन्द्रः "सत्य कहां है?"
मैं कहता हूंः यहां! अभी! तुम्हारे भीतर! तुम्हारे अंतरतम में! तुम सत्य हो! तत्वमसि! शांत होकर, मौन होकर, डुबकी मारो, भीतर डुबकी मारो।

पांचवां प्रश्नः ओशो, आत्मज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति अपने जीवन में परम आनंद पाता है और यह बात यथार्थ मालूम होती है। लेकिन मृत्यु के बाद ऐसे व्यक्ति की आत्मा अस्तित्व में खो जाती है, जैसे नमक का पुतला सागर में खो जाता है। फिर यह प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में मुक्ति का यह प्रयत्न क्या अर्थ रखता है? आत्मा की अनुपस्थिति में मुक्ति का यह अनुभव कौन करेगा? कृपया स्पष्ट करने की कृपा करें!

हिम्मत भाई भूता, अनुभव करना है? गलना है नमक के पुतले की भांति सागर में? या कि सिर्फ काल्पनिक प्रश्न उठाने हैं? यह प्रश्न काल्पनिक है कि यदि ऐसा होता है तो फिर आदमी क्यों प्रयत्न करे? तुमने एक ही बात देखी कि नमक का पुतला सागर में गल गया; तुमने यह नहीं देखा कि नमक का पुतला सागर हो गया। तुमने एक ही बात देखी कि आत्मा अस्तित्व में लीन हो गई; तुमने यह नहीं देखा कि अस्तित्व आत्मा में लीन हो गया।
कबीर कहते हैंः हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराई, बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाई। कि हे सखी, खोजते-खोजते कबीर तो खो गया, बूंद सागर में चली गई, अब उसे वापस निकालने का कोई उपाय नहीं। और फिर दूसरा पद भी लिखा तत्क्षण कि हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराई, समुंद समाना बुंद में सो कत हेरी जाई। कि हे सखी, कबीर तो खो गया खोजते-खोजते और समुद्र बूंद में समा गया है, अब उसे निकालने का क्या उपाय?
ये दोनों बातें सच हैं। जब बूंद सागर में समाती है तो सागर भी बूंद में समाता है। यह एकतरफा नहीं हो सकता। जब आत्मा अस्तित्व में लीन होती है--तो तुम एकतरफा सोच रहे हो--अस्तित्व भी आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा मिटती नहीं, विराट होती है। बूंद सागर होती है। और विराट होने में आनंद है, क्षुद्र होने में दुख है।
तुम जब तक हो तब तक दुखी रहोगे। तुम्हारा अनुभव दुख के पार नहीं जा सकता। लेकिन हिम्मत भाई की इच्छा यह है कि खुद बचें और आनंद का अनुभव करें। यह असंभव है। मैं बचा तो आनंद का अनुभव हो ही नहीं सकता। आनंद का अनुभव ही मैं के खो जाने पर होता है। लेकिन मैं के खो जाने से घबड़ा मत जाना

एकदम कि जब मैं खो ही गया तो अनुभव किसको होगा! अनुभव परमात्मा को होगा। परमात्मा सदा आनंद का अनुभव कर रहा है। इसलिए हमने परमात्मा की व्याख्या की--सच्चिदानंद! वह सत्य है, चैतन्य है, आनंद है। आनंद पराकाष्ठा है। तुम हो, यही दुख है।
लेकिन यह प्रश्न बहुतों के मन में उठता है कि जब खो ही जाना है तो यह
भी अजीब बात है, खोने के लिए क्यों मेहनत करें? बचने के लिए मेहनत करना समझ में आती है। कोई ऐसी तरकीब बताइए कि बच जाएं। आप तरकीब बताते हैं खोने की, तो खोने के लिए मेहनत क्या करनी?
लेकिन तुम जरा अपने ऊपर पुनर्विचार करो। तुम हो क्या सिवाय दुख की एक गांठ के? तुम हो क्या एक अंधेरी रात के सिवाय? तुम्हारा होना सत्य नहीं है, झूठ है। इसलिए जो मिटेगा वह झूठ मिटेगा। सत्य तो कभी मिटता नहीं। तुम्हारी अवस्था वैसी है जैसा अमरीका में एक बार हुआ। लिंकन की शताब्दी मनाई जा रही थी। सारे अमरीका में खोज की गई कि कोई आदमी लिंकन की शक्ल-सूरत का मिल जाए। एक आदमी मिल गया। उस आदमी को लिंकन का पार्ट दिया गया। और सारे अमरीका में वह नाटक-मंडली घूमी। एक साल लगा। गांव-गांव, नगर-नगर, शहर-शहर नाटक किया गया। और वह आदमी एक साल तक अब्राहम लिंकन का पार्ट करता रहा। वैसे ही चलता; लिंकन कुछ थोड़ा सा लंगड़ाता था, तो वैसे ही लंगड़ाता। और लिंकन कुछ थोड़ा सा बोलते समय तुतलाता था, तो वैसा ही तुतलाता। लिंकन जिस ढंग से बोलता था वैसे ही बोलता; वैसे ही चलता; वही ढंग, वही कपड़े, सब वही साल भर तक। साल भर के बाद जब नाटक-मंडली समाप्त हुई, वह आदमी घर आया, तो वह लिंकन के ही कपड़े पहने हुए है, लिंकन की ही लिंकन-छाप छड़ी, वैसे ही लंगड़ाता। और जब पत्नी से आकर तुतला कर बोला तो पत्नी ने समझा कि मजाक कर रहा है। घर के लोग हंसे, उन्होंने कहा कि अब छोड़ो, अब खत्म हो गया नाटक। मगर वह आदमी मजाक नहीं कर रहा था। उसे तो साल भर में यह भरोसा आ गया था
कि वह लिंकन है। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई, वह माने ही नहीं। वह वैसे ही चले, वैसे ही उठे, उसी ढंग से बोले। गांव भर में मजाक फैलने लगी। जो आए वही समझाए कि भई, नाटक अब खतम हो गया। मगर वह आदमी कहेः कैसा नाटक! आप किस नाटक की बात कर रहे हैं? मैं अब्राहम लिंकन हूं!
अब्राहम लिंकन को तो मारा गया, हत्या की गई। गांव में यह खबर फैल गई कि
जब तक इसको मारा नहीं जाएगा तब तक अक्ल नहीं आएगी। यह मरेगा तभी समझ में इसको आएगा। मगर तब फायदा क्या समझ में आने का! समझाने वाले थक गए, बड़े बुद्धिमान थक गए। आखिर उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक ने भी बहुत उपाय किए, कोई उपाय काम न करे। वह आदमी माने ही नहीं। वह कहेः हद हो गई! जब मैं अब्राहम लिंकन हूं तो मैं कैसे कहूं कि मैं नहीं हूं!
तभी-तभी एक नयी मशीन ईजाद की गई थी अमरीका में। अब तो उसका अदालतों में उपयोग होता है। वह मशीन झूठ को पकड़ने की मशीन है। आदमी को खड़ा कर दिया जाता है, उसे पता भी नहीं होता कि जिस स्थान पर वह खड़ा है, नीचे मशीन छिपी है। वह मशीन हृदय की धड़कनों को उसी तरह ग्राफ बनाती है जैसे कॉर्डियोग्राम ग्राफ बनाता है। और तुमने भी अनुभव किया होगा कि जब तुम झूठ बोलते हो तो हृदय को एक धक्का लगता है। क्योंकि जानते तो तुम हो कि सच क्या है, मगर सच को दबाते हो और झूठ बोलते हो, तो हृदय एक झटका खा जाता है। वह झटका ग्राफ पर आ जाता है।
तो तरकीब यह है कि पहले ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिसमें आदमी झूठ बोल
ही न सके। मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि घड़ी में देखो कितने बजे हैं? उस आदमी ने कहा, नौ बज कर बीस मिनट। ग्राफ बन रहा है। मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मेरे हाथ में क्या है? उस आदमी ने कहा, किताब। कौन सी किताब? उसने कहा, बाइबिल। ग्राफ बन रहा है। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा कि दरवाजा खुला है या बंद? उसने कहा, खुला है। ग्राफ बन रहा है। ऐसी बहुत सी बातें जिसमें वह झूठ बोल ही न सके।
और तब उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि तुम कौन हो? वह आदमी थक गया था, कब
तक विवाद करता रहे लोगों से! तो उसने उस दिन सोचा कि झंझट खत्म ही कर दो, साफ कह दो कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। एक दफा इस बात को खत्म करो। अपने

दिल में तो जानता ही हूं कि हूं, मगर अब लोगों से कब तक सिर-माथापच्ची करो! इसमें ही जिंदगी बीत जाएगी। क्या तुम अब्राहम लिंकन हो?
उसने कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं! और मशीन ने नीचे बताया
कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। इतनी गहरी बात बैठ गई हृदय में! नाटक इतना वास्तविक हो गया!
क्या तुम सोचते हो, अगर इस आदमी को यह कहा जाए कि अब्राहम लिंकन तुम न
रह जाओगे तो अच्छा होगा, तुम स्वस्थ हो जाओगे। वह कहेगा, स्वस्थ कौन होगा फिर? जब अब्राहम लिंकन ही न रहा तो स्वस्थ कौन होगा? इस आदमी को अगर हम कहें कि अगर तुम अब्राहम लिंकन होने का ख्याल छोड़ दो तो तुम्हारा यह मानसिक रोग चला जाएगा। मगर वह कहेगा, फिर फायदा ही क्या? जब रहे ही न और मानसिक रोग भी न रहा, तो न रहा बांस न बजेगी बांसुरी, वह तो ठीक ही है; मगर जब रहे ही नहीं तो फायदा क्या?
यही, हिम्मत भाई, आपका प्रश्न है। आप कहते हैं, जब मैं ही न रहूंगा तो अनुभव किसको होगा? अनुभव उसको होगा जो तुम वस्तुतः हो। और तुम जो अभी अपने को समझे बैठे हो वह सिर्फ नाटक है।
समझो, जब तुम पैदा हुए थे तो तुम्हारा नाम हिम्मत भाई भूता तो नहीं था। बिना नाम के आए थे। लेकिन अब तुम्हारा नाम हिम्मत भाई हो गया। अब रास्ते पर कोई मिल जाए और कह दे कि ऐ उल्लू के पट्ठे, कहां जा रहे? तो झगड़ा हो जाए। तुम फौरन पूछोगे, तुमने हिम्मत भाई भूता को तो नहीं कहा? अगर किसी और को कहा तो तुम्हारी मर्जी। मगर याद रखना, हिम्मत भाई भूता से इस तरह की बात की तो मुझसे बुरा कोई नहीं! अब हिम्मत भाई भूता को कोई गाली दे दे तो झगड़ा हो जाएगा; हालांकि जब तुम पैदा हुए थे, तुम्हारा कोई नाम नहीं था। जब तुम पैदा हुए थे, हिम्मत भाई भूता को कोई कितनी ही गालियां देता, तुम मजे से अपना अंगूठा चूसते रहते, बिल्कुल फिकर न करते--कि भाड़ में जाएं हिम्मत भाई और भाड़ में जाएं गाली देने वाले, अपने को क्या लेना-देना! अपना क्या नाता!
जब तुम पैदा हुए थे तब तुम हिंदू नहीं थे, मुसलमान नहीं थे, ईसाई नहीं थे। अगर कोई बाइबिल को जलाता तो क्या तुम उचक कर खड़े हो जाते कि जान चली जाए मगर बाइबिल न जलने दूंगा? झंडा ऊंचा रहे हमारा! जान जाए पर आन न जाए! या कोई अगर गणेशजी की मूर्ति लुढ़का देता तो क्या तुम नाराज हो जाते कि मैं गणेश भक्त हूं?
नहीं; तुम पड़े-पड़े देखते रहते, शायद हंसते, खिलखिलाते कि वाह क्या रही! लुढ़काने ही योग्य मालूम होते थे ये गणेशजी, ठीक किया जो लुढ़का दिए! तुम शायद प्रसन्न ही होते।
लेकिन फिर धीरे-धीरे धारणाएं जमाई गईं कि तुम हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि यह रहा तुम्हारा नाम, यह तुम्हारी जाति, यह तुम्हारा गोत्र। और धीरे-धीरे यह धारणा मजबूत होती चली गई।
यह नाटक ही है। उस आदमी ने एक साल में भूल की थी, तुमने पचास साल में भूल की; मगर सालों से तो फर्क नहीं पड़ता।
जब ज्ञानी कहते हैं कि तुम मिट जाओगे तो वे इस तुम के मिटने की बात कर रहे हैं जो कि झूठा है, कृत्रिम है, बनाया गया है। उस तुम के मिटने की बात नहीं कर रहे हैं जो तुम वस्तुतः हो। वह तो कैसे मिटेगा? जो है, है; उसके मिटने का कोई उपाय नहीं। सत्य न मिटता है, न मिट सकता है। झूठ बनता है और मिटता है। झूठ पानी का बुलबुला है।
तुम पूछते हो, आनंद किसको होगा?
निश्चित ही हिम्मत भाई भूता को नहीं, इतना तो मैं पक्का कह देता हूं। लेकिन हिम्मत भाई भूता से तुम ज्यादा हो, बहुत ज्यादा हो। हिम्मत भाई भूता तो कुछ नहीं, सिर्फ एक लेबल। भीतर विराट छिपा है, जिसका न कोई नाम है, न कोई धाम है, न कोई जाति है, न कोई गोत्र है, न कोई धर्म है, न कोई वर्ण है। निश्चित ही यह जो नमक का पुतला है, समाप्त हो जाएगा--मगर जो तुम हो, जन्म के पहले जो तुम थे, वह तुम मृत्यु के बाद भी रहोगे। तुम शाश्वत हो! स्वयं को मिटाने के लिए प्रयास--तुम पूछते हो--हम करें क्यों?

और तुम्हारी बात तर्कयुक्त है। लेकिन बस तर्क पर ही जीए तो जीवन में
जो महत्वपूर्ण है उसे जानने से वंचित रह जाओगे। जीवन तर्क ही नहीं है, जीवन तर्कातीत है। थोड़ा-थोड़ा मिट कर देखो। एकदम से नहीं कहता कि एकदम नमक का पुतला डुबा ही दो, क्योंकि एकदम से डुबाओ और फिर समझ में आए कि अरे यह तो बड़ी गड़बड़ हो गई, अब आनंदित कौन हो! तो थोड़ा-थोड़ा डुबाओ, कभी-कभी डुबाओ, चौबीस घंटे में एक घंटा डुबा कर देखो। उस एक घंटे को मैं ध्यान कहता हूं। एक घंटा डुबा दो। एक घंटा भूल जाओ कि मैं हूं। एक घंटा न हो जाओ। और फिर देखो क्या होता है!
एकदम आनंद की झड़ी लग जाती है। और तब तुम बड़े चकित होओगे कि हिम्मत भाई भूता तो हैं ही नहीं और आनंद की झड़ी लगी! तब तुम्हें यह भी समझ में आएगा कि जैसे ही हिम्मत भाई भूता वापस लौटे कि झड़ी बंद हो जाती है। जैसे ही मैं-भाव आया, आनंद गया। मैं-भाव नरक है। और जैसे ही मैं-भाव गया, आनंद आया। कभी-कभी आकस्मिक रूप से भी हो जाता है। सुबह-सुबह उठ गए हो, ताजी हवा है, पक्षी गीत गा रहे हैं, वृक्षों में फूल खिले हैं, झील में कमल नाच रहे हैं, सूरज निकला है, आकाश में बगुलों की कतार उड़ गई है--और एक क्षण को तुम भूल गए कि मैं हूं! फूल रहे, आकाश रहा, बगुले रहे, सूरज रहा, सुबह की ताजी हवा रही--तुम न रहे! एक क्षण को भूल ही गए! एक क्षण को बिल्कुल लीन हो गए! और उसी लीनता में आनंद है। फिर तुम बार-बार कहोगे, आज सुबह बड़ा आनंद मिला! लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि तुम यह भूल ही जाओगे कि आनंद जब मिला था
तब तुम नहीं थे। और अब जब तुम कह रहे हो कि आज सुबह बहुत आनंद मिला, तब तुम हो। अब तुम सिर्फ स्मृति की बात कर रहे हो। जब तुम बिल्कुल मिट गए थे, तब भी तुम्हारा मस्तिष्क टेपरिकार्डर की भांति सब चीजों को रिकार्ड कर रहा था। वह तो यंत्र है। उसने रिकार्ड कर ली यह घड़ी भी। बाद में यह रिकार्ड दुहराया जाएगा, अहंकार लौट आएगा, रिकार्ड का मालिक हो जाएगा और कहेगा कि आज सुबह मैंने बड़ा आनंद पाया!
मगर यह बात झूठ है। मैं तो था ही नहीं जब आनंद हुआ। आनंद और मैं का एक साथ अस्तित्व न कभी हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि मैं झूठ है। ब्रह्म सत्य, अहं मिथ्या! लोग कहते हैं, जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य। मैं कहता हूं, ब्रह्म सत्य, अहं मिथ्या। जगत से क्या लेना-देना है? अहंकार ही जगत है। मगर यह अनुभव की बात। पहले से ही तुम तय करोगे तो बहुत मुश्किल होगी। थोड़ा-थोड़ा रसमग्न होना शुरू करो। कभी संगीत में डूब जाओ, कभी नृत्य में डूब जाओ, कभी प्रकृति के सौंदर्य में। और जब यह डुबकी लगे तभी देखना कि मैं कहां है? मैं नहीं पाओगे और आनंद का अनुभव होगा। तब तुम्हारे जीवन में एक बात स्पष्ट हो जाएगी कि आनंद हो सकता है बिना मैं के। होता ही है बिना मैं के।
लेकिन यह प्रश्न तो हाइपोथेटिकल है, परिकल्पित है--कि यदि ऐसा होगा तो।
यह ऐसा ही है जैसे एक अंधा आदमी पूछे कि अगर मेरी आंख खुल जाएगी तो फिर मैं जिस लकड़ी को टेक-टेक कर चलता हूं, इसका क्या होगा? तो हम उससे कहेंगे, तू इसकी फिकर मत कर, आंख तो खुलने दे। फिर तू ही तय कर लेना कि लकड़ी को रखना कि नहीं रखना। वह कहेगा, यह मैं पहले तय कर लेना चाहता हूं, अगर मेरी लकड़ी खो गई तो मैं चलूंगा कैसे?
अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में जो भी प्रश्न उठाएगा, अपने संबंध में
जो भी प्रश्न उठाएगा, वे गलत ही होंगे। उसे कोई अनुभव नहीं है प्रकाश का। बुद्ध के पास एक अंधे आदमी को लाया गया था। गांव भर थक गया था समझा- समझा कर, मगर वह मानता ही नहीं था। वह कोई साधारण अंधा नहीं था, दार्शनिक था। और साधारण अंधा तो मान भी जाए, दार्शनिक अंधा तो बड़ा मुश्किल हो जाता है मामला। वह बड़ी ज्ञान की बातें करे! वह कहे कि अगर है प्रकाश तो लाओ मेरी मुट्ठी में रखो, मैं जरा टटोल कर देखूं। अब प्रकाश को मुट्ठी पर कैसे रखो! और ऐसा नहीं है कि प्रकाश मुट्ठी पर नहीं रखा जाता। तुम सूरज के नीचे हाथ खोल दो, तुम्हारे हाथ पर प्रकाश ही प्रकाश है; मगर स्पर्श का पता तो नहीं चलता। तुम मुट्ठी नहीं बांध सकते।

वह कहता, चलो अगर नहीं मुट्ठी में बंधता, मेरी जबान पर रख दो, मैं जरा स्वाद ले लूं। जरा सा एक टुकड़ा, जैसे कि शक्कर की डली कोई रख दे, ऐसा मेरे मुंह पर रख दो। चलो यह भी नहीं होता, जरा प्रकाश को बजाओ, ठोंको, तो मैं आवाज सुन लूं। जरा मेरे नासापुटों के पास ले आओ तो मैं सुगंध ले लूं, कोई तो गंध होगी न!
प्रकाश की गंध क्या है? प्रकाश का स्वाद क्या है? प्रकाश का रूप क्या है? प्रकाश की ध्वनि क्या है? कुछ भी नहीं।
गांव थक गया। बुद्ध गांव में आए, लोगों ने कहा कि चल तुझे बुद्ध के पास
ले चलते हैं। हम तो साधारण प्रकाश जानते हैं, वे महाप्रकाश जानते हैं, शायद वे तुझे समझाने में समर्थ हो जाएं। बुद्ध ने उस अंधे आदमी को देखा और जो मित्र उसे ले आए थे उनसे कहा कि भाइयो, इस आदमी की कोई गलती नहीं, यह ठीक कहता है। गलती तुम्हारी है। तुम इसे समझाते हो? समझाने में समय गंवाते हो? अरे इसे किसी चिकित्सक के पास ले जाओ, जो इसकी आंख का इलाज कर दे। इसकी आंख पर जाली है, वह कट जाए, तो फिर समझाना नहीं पड़ेगा।
उस अंधे को चिकित्सकों के पास ले जाया गया। किसी चिकित्सक ने उसका इलाज किया। छह महीने में उसकी आंख की जाली कट गई।
बुद्ध तो बहुत दूर निकल गए थे छह महीने में, दूसरे-दूसरे गांव में यात्रा कर गए थे। वह बुद्ध को खोजता हुआ दूसरे गांव पहुंचा, बुद्ध के चरणों में गिरा। और उसने कहा, अगर आप न मिले होते तो मेरे गांव के लोग तर्क कर-कर के मुझे सदा अंधा ही रखते, क्योंकि उनका हर तर्क मैं खंडित कर रहा था। और हर तर्क जब उनका खंडित होता था तो मुझे लगता था कि मैं सही और ये गलत। और ये किस तरह के आंख वाले हैं जो गलत! और ये किस तरह के आंख वाले हैं जो प्रकाश को सिद्ध नहीं कर सकते! इनसे तो मैं अंधा बेहतर। फिर तो मुझे धीरे-धीरे शक होने लगा था कि ये सब अंधे हैं, मेरे ही जैसे अंधे हैं, सिर्फ प्रकाश का सपना देख रहे हैं। या यह भी हो सकता है कि प्रकाश की बातें करते हैं मुझे अंधा सिद्ध करने को। आपने बड़ी कृपा की जो मुझे चिकित्सक के पास भेजा!
बुद्ध ने कहा, मैंने तुझे चिकित्सक के पास भेजा, क्योंकि मैं खुद भी चिकित्सक हूं। मेरा भरोसा चिकित्सा में है।
हिम्मत भाई, मेरा भरोसा भी चिकित्सा में है। उपदेश में नहीं, उपचार में। आओ यहां। यहां धीरे-धीरे नमक के पुतले को डुबाओ। यह संन्यास कुछ और नहीं है, यह नमक के पुतले को डुबाने की तरकीब है, एक उपाय है। ये ध्यान की बहुत सी प्रक्रियाएं जो यहां चल रही हैं, और कुछ नहीं हैं, अलग-अलग घाट! क्योंकि नमक के पुतलों की भी बड़ी जिद होती है। कोई कहते हैं, हम इस घाट से उतरेंगे; हमारे बाप-दादे इसी घाट से उतरते रहे, हम किसी और के घाट से क्यों उतरें? तो हम कहते हैं, चलो यहीं! मरो तो, किसी घाट से उतरो! डूबो तो! घाट तो सब हैं। घाट बहुतेरे। लेकिन जहां डूबना है वह तो एक ही है।
तो कोई कहता है, हम तो विपस्सना करेंगे, क्योंकि हम बौद्ध परिवार से आते हैं। हम कहते हैं, चलो विपस्सना घाट चलेगा। इससे ही डूबो, इससे ही मरो। कोई कहता है कि मैं तो मुसलमान हूं, मैं तो सूफी हूं। तो हम कहते हैं, ठीक, सूफियों के लिए अलग घाट बना दिया है। कोई जैन आ जाता है, उसके लिए भी घाट बना दिए हैं। जितने लोग हैं, यहां इरादा यही है कि एक ऐसा तीर्थ बने, जहां सब घाट हों। जिस घाट से मौज हो वहां से छलांग लगाओ। गिरोगे एक ही सागर में। और मिटोगे तो जानोगे कि आनंद क्या है! और तब कभी भूल कर न पूछोगे ऐसा प्रश्न कि अगर हम ही मिट जाएंगे तो आनंद किसको होगा।
आनंद किसी को नहीं होता, आनंद तुम्हारा स्वभाव है। मैं में आच्छादित होने के कारण आनंद का स्वभाव प्रकट नहीं हो पा रहा है। मैं का आच्छादन टूट जाए, आनंद प्रकट हो जाएगा। आनंद अनुभव नहीं है, स्वभाव है।

छठवां प्रश्नः ओशो, मैंने अनेक बार आपके साक्षात दर्शन अपने घर अमृतसर में किए और अनेकों संघर्षों में आपको अपने ऊपर बरसते पाया, देखा, अनुभव किया। जब मैं संघर्ष से छटपटा जाता हूं और जब कोई भी रास्ता नजर नहीं आता, तो आप साक्षात मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। इसमें न कोई

स्वप्न की अवस्था, न कोई निद्रा की अवस्था ही होती है। आप आकर खड़े होकर मुझे कहते हैं कि तुम खामख्वाह क्यों चिंता लेते हो? मैं जो हूं! सब छोड़ दो मुझ पर! तो तत्क्षण निर्भार हो जाता हूं। और आप मेरे जीवन में ऐसी-ऐसी उलझनों में रक्षा करते हैं, जिसका वर्णन मैं अपनी जुबान से नहीं कर सकता। और भी अनेक प्रमाण मेरे अनुभव में हैं, क्या बताऊं आपको! आप सब कुछ जानते ही हैं। कोई बात भी आपसे छिपी हुई नहीं है। इतना कुछ होते हुए भी कई बार मैं आपका विरोध करता हूं। ओशो, इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें!

असंग, अमृतसर से हो, यही काफी है। तुम लाख कहो कि तुम निद्रा में नहीं होते, तुम स्वप्न में नहीं होते, मुझे राजी न कर सकोगे। यह सब तुम्हारी निद्रा ही है, तुम्हारे स्वप्न ही हैं। ये तुम्हारी कल्पनाएं ही हैं। सुंदर कल्पनाएं! और इन कल्पनाओं से तुम्हें राहत भी मिलती होगी, सांत्वना भी मिलती होगी, चित्त निर्भार भी हो जाता होगा।
मगर मैं तुमसे अपनी तरफ से कहे देता हूं कि अमृतसर मैं जाता ही नहीं। सालों से नहीं गया। मगर अमृतसर में जो न हो सो थोड़ा।
मैंने सुना है, अमृतसर के एक मालिक ने अपने नौकर को समझाते हुए कहा, देखो चरणसिंह, तुम जिस दुकान पर सामान खरीदने जाते हो वह दुकानदार बड़ा ही काइयां है, बड़ा मक्कार है। ऐसे तो ऊपर से जपुजी पढ़ता रहता है, लेकिन भीतर छंटा हुआ बदमाश है। तुम जरा सम्हल कर रहना। जब वह कोई सामान तौलता है तो वह देखते ही देखते सामने वालों की आंखों में धूल झोंक देता है। तो मैं तुम्हें सावधान करता हूं। उसकी दाढ़ी, उसका जपुजी, उसका ऊपर से सरदार का रूप, इन सबके धोखे में मत पड़ना।
चरणसिंह ने कहा, मालिक, मैं भी सरदार हूं। और अगर वह अमृतसर का है तो मैं कोई बाहर का? अगर वह काइयां है तो मैं भी कुछ कम नहीं। जपुजी मैं भी पढ़ता हूं। मुझे तो यह पहले से ही पता था, मालिक, कि वह ग्राहकों की आंख में धूल झोंक देता है। तो जब भी वह कोई सामान तौलता है तो मैं अपनी आंखें बंद ही रखता हूं। कोई उससे कम थोड़े ही हूं! अरे मैं भी सरदार हूं, मेरी आंखों में धूल झोंकना इतना आसान नहीं है!
तुम कह रहे हो कि न सपना, न मूर्च्छा। मगर ये सब मन की ही कल्पनाएं हैं। आंख खुली हो तब भी मन की कल्पनाओं को तुम देख सकते हो। और तुम कहते होः जब मैं संकट में होता हूं, दुविधा में होता हूं, विवादग्रस्त होता हूं, कुछ राह नहीं सूझती, तब आप दिखाई पड़ते हैं।
उस समय तुम चाहते हो कि मैं दिखाई पडूं। उसी समय तुम चाहते हो। जब तुम सुविधा में होते हो तब? तब मैं दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि तब तुम्हें कोई जरूरत ही नहीं होती। जब सब ठीक चल रहा होता है तब तुम्हें याद ही नहीं आती होगी। वह तो जब सब गलत चल रहा होता है, सब गड़बड़ चल रहा होता है, जब तुम अपने हाथ से कोई रास्ता नहीं निकाल पाते, तब मजबूरी में तुम मुझे याद करते होओगे, असहाय अवस्था में!
और निश्चित ही, अगर तुम किसी को भी याद करोगे असहाय अवस्था में, तो एक बात से तो राहत मिलती है कि तुम अकेले नहीं हो। और अगर याद बहुत तीव्रता से की तो इस तरह के अनुभव हो सकते हैं। मगर ये सब अनुभव स्वप्नवत हैं। और यह मैं खुद ही कह रहा हूं। इसलिए खूब सोच लेना। तुम्हारा मन तो कह रहा होगा कि नहीं-नहीं, मेरे अनुभव और स्वप्नवत?
अभी तुम सोए ही हुए हो, इसलिए तुम जो भी अनुभव करोगे वे सभी स्वप्नवत होंगे।
बुद्ध ने कहा हैः अगर कभी मैं तुम्हारे मार्ग में आ जाऊं तो तलवार उठा
कर मेरी गर्दन काट देना।
किस अर्थ में कहा है? इसी अर्थ में कहा है। क्योंकि जो भी बुद्ध तुम देखोगे अपने मार्ग पर, वह तुम्हारी ही कल्पना होगी। मैं तुम्हें अपने पर निर्भर नहीं करना चाहता। और तुम निर्भर होओगे तो फिर दूसरा कष्ट पैदा होगा।
तुम पूछते हो कि फिर भी कभी-कभी मैं आपका विरोध क्यों करता हूं?

वह इसीलिए विरोध करते हो। ऐसे व्यक्ति को हम क्षमा कर ही नहीं सकते जिस पर हमें निर्भर होना पड़े। तुम मुझे माफ नहीं कर पाते। तुम्हें धीरे- धीरे अनुभव होने लगा कि तुम्हारी मुसीबत मेरी मौजूदगी में कम हो जाती है। तुम्हें धीरे-धीरे यह प्रतीति होने लगी कि तुम्हारी समस्याएं मेरी मौजूदगी से हल हो जाती हैं। तुम मुझे माफ कैसे करोगे? तुम मुझसे नाराज रहोगे। इतना निर्भर कोई किसी पर होना नहीं चाहता। मैं भी चाहता नहीं कि तुम मुझ पर निर्भर होओ, क्योंकि मैं जानता हूं, जो लोग निर्भर होंगे वे नाराज भी होंगे। मैं तो चाहता हूं कि तुम बिल्कुल मुझसे मुक्त रहो। फिर विरोध भी खो जाएगा।
जीवन के बड़े अनूठे गणित हैं। हम उस आदमी को कभी माफ नहीं कर पाते जिस
पर हमें निर्भर होना पड़ता है। इसलिए बच्चे अपने मां-बाप को माफ नहीं कर पाते। इसलिए बच्चे, जब मां-बाप बूढ़े हो जाते हैं, तो उनसे बदला लेते हैं। कैसे माफ करें? इतनी निर्भरता! बचपन में इतनी निर्भरता जानी है मां-बाप के ऊपर कि उनके ही इशारों पर जीए हैं; उन्होंने ही बचाया है तो बचे हैं; उन्होंने ही सम्हाला है तो सम्हले हैं। आज अहंकार को चोट लगती है। बड़े होकर अहंकार को अड़चन होती है।
बच्चे अनेक-अनेक ढंग से मां-बाप से बदला लेने लगते हैं। वह बदला बिल्कुल अचेतन है बड़ा, लेकिन है उसके पीछे बड़ी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि। और उससे भी बड़ी घटना घटती है गुरु और शिष्य के बीच। अगर शिष्य निर्भर हो जाए गुरु पर तो वह बदला लेगा। क्योंकि निर्भरता गुलामी है। और गुलामी कौन पसंद करता है!
असंग, तुम यह निर्भरता छोड़ दो। जब मुसीबत हो, जब असहाय अनुभव करो, हल न होता हो, मुझे याद न करो, ध्यान करो। उस समय शांत बैठो, मौन बैठो। तुम्हारी बुद्धि का ऊहापोह अगर रास्ता नहीं खोज पा रहा है, तो बुद्धि को एक तरफ रख दो, हृदय में डुबकी लगा जाओ, वहां से रास्ता मिलेगा।
और वहीं से रास्ता मिल रहा है अभी भी। तुम नाहक मुझे धन्यवाद दे रहे हो। रास्ता वहीं से मिल रहा है। रास्ता सदा वहीं से मिलता है। तुम मुझे धन्यवाद न दो, क्योंकि तुम्हारा धन्यवाद मंहगा है। तुम धन्यवाद दोगे आज तो कल तुम नाराज होओगे। फिर विरोध होगा। फिर तुम कोई छोटा-मोटा बहाना निकाल कर विरोध करोगे। विरोध करके तुम अपने भीतर एक समतुलता पैदा करोगे। और तुम मेरी पक्की मानो, अमृतसर जाना मैंने बिल्कुल बंद कर दिया है। इतनी बड़ी दुनिया पड़ी है जाने को, अमृतसर तो समझो आखिरी। जब कहीं जाने को न बचे तो अमृतसर।
अमृतसर के स्टेशन पर जब टिकट चेकर आया तो सरदार जी ने देखा कि उनके बगल में बैठे सज्जन ने कह दिया कि मैं तो नेताजी हूं, और टिकट चेकर आगे बढ़ गया। इसी तरह स्टेशन के गेट पर भी वे बाहर निकल गए, कुली को भी उन्होंने पैसे नहीं दिए। सरदार जी यह देख कर अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने भी यह तरकीब अपनाने की सोची। अगली बार जब वे कहीं जा रहे थे तो उन्होंने भी टिकट नहीं खरीदी। टिकट चेकर ने पूछा, टिकट दिखाइए!
अरे भाई, टिकट मांगते शर्म नहीं आती? मैं इस देश का नेता हूं?
माफ करिए--टिकट चेकर बोला--आपका शुभ नाम क्या है?
सरदार जी ने इसका कोई उत्तर तो सोचा नहीं था। सो वे घबड़ा गए और घबड़ाहट में बोले, अरे मुझे जानते नहीं, मैं इंदिरा गांधी हूं!
टिकट चेकर भी सरदार था, पैर छूकर बोला, भैया, बड़े दिनों से दर्शन की अभिलाषा थी, आज पूर्ण हुई।
अमृतसर से तो जितना बचो उतना अच्छा। मुसीबतें जरूर तुम पर आती होंगी, क्योंकि अमृतसर में मुसीबतें न आएं यह हो ही नहीं सकता। बड़ी झंझटें आती होंगी, जिनको तुम जुबान से कह भी नहीं सकते। चारों तरफ झंझटी लोग हैं। मैं अमृतसर जाता था। फिर झंझटें बहुत बढ़ने लगीं, फिर अमृतसर में काम करना ही असंभव हो गया। स्टेशन से ही झंझटें शुरू हो जाती थीं। स्टेशन पर दो सौ आदमी विरोध में काले झंडे लिए दिखा रहे हैं, आवाज लगा रहे हैं। दो सौ आदमी पक्ष में खड़े हैं। मार-पीट की नौबत है। एक बार तो विरोधी डंडे लेकर आ गए। तो जो पक्षपाती थे वे भी कुछ पीछे थोड़े ही रह सकते थे। सरदार तो सरदार,

वे गए और स्वर्ण-मंदिर से नंगी तलवारें धारण करने वाले कुछ सेवादार ले आए। मैंने तमाशा देखा। मैंने कहा कि भई, अगर यह सब होना है, एक तरफ डंडे लिए लोग खड़े हैं, और दूसरी तरफ तलवारें, नंगी तलवारें! मुझे लेकर स्टेशन के बाहर चले तो तीन आदमी नंगी तलवारें लिए आगे चल रहे, तीन पीछे चल रहे। मैंने कहा कि... बस मैंने कहा, यह अब आखिरी है, अब दुबारा इस उपद्रव में पड़ने से कोई मतलब नहीं है।
जहां सभा हो उसके सामने ही विरोधी माइक लगा कर बैठ जाएं। चलो कुछ नहीं, रामधुन ही कर रहे हैं! ऐसी कोई सभा मुश्किल जहां उपद्रव और झगड़ा न हो, जहां मार-पीट की नौबत न आ जाए।
तो अमृतसर तो एक चमत्कार है। यह भी तुम काफी समझो कि मैं तुम्हारे सपनों में आ जाता हूं, ऐसे मैं सपनों में भी नहीं आना चाहता। तुम बख्शो मुझे।
ये सब मन की कल्पनाएं हैं। इन मन की कल्पनाओं को त्यागो। मैं तुम्हें मुक्त करने को हूं, किसी तरह के बंधन में डालने को नहीं हूं। मैं चाहता हूं तुम अपने भीतर जाओ, मेरे पीछे नहीं। अपनी आत्मा को जगाओ। तुम्हारा समाधान मुझमें नहीं है, तुम्हारा समाधान तुम्हारी समाधि में है।
असंग, समय खराब न करो। सारी ऊर्जा, सारी शक्ति उसी समाधि के लिए लगा दो। फिर न तो तुम मुझ पर नाराज होओगे और न मुझे धन्यवाद दोगे। फिर यह राग और घृणा का नाता टूट जाएगा। और जब शिष्य और गुरु के बीच राग और घृणा का नाता टूट जाता है तो पहली बार प्रेम की घटना घटती है, अभूतपूर्व घटना घटती है। उस प्रेम में फिर कोई विरोध नहीं है, क्योंकि उस प्रेम में कोई निर्भरता नहीं है, स्वतंत्रता है। उस प्रेम में फिर कभी कोई वैमनस्य नहीं है, क्योंकि उस प्रेम में तुम किसी के अंग नहीं बन रहे हो, किसी के जीवन का अनुकरण नहीं कर रहे हो। वह प्रेम मोक्ष लाता है, मुक्तिदायी है।
असंग, मेरा प्रत्येक संन्यासी इस सूत्र को ठीक से ध्यान में रखे। जैसा मैं तुमसे कह रहा हूं, ऐसा सबसे कह रहा हूं। मुझ पर निर्भर मत होना, अन्यथा तुम मुझे माफ न कर सकोगे। मुझसे मुक्त रहना। मुझे समझो, मुझे पीओ, मगर मेरे अनुकरण करने की कोई जरूरत नहीं है।
और ये सब छोटी बातें हैं कि तुम्हारी समस्याएं मैं सुलझाने आऊं; कि तुम इनकम टैक्स में उलझ गए तो तुम मुझे बुलाओ; कि तुम चोरी में फंस गए तो मैं तुम्हें बचाऊं। यह सब बकवास छोड़ो। इन सबसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है।
मैं तो तुम्हें सूत्र दिए दे रहा हूं--सारी झंझटों के पार हो जाने का सूत्र! उसको ही मैं ध्यान कहता हूं; उसकी ही पूर्णाहुति समाधि है।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र सातवां प्रवचन

संन्यास: परमात्मा का संदेश

पहला प्रश्नः भगवान, उन्नीस सौ चौंसठ के माथेरान शिविर में आपसे प्रथम मिलन हुआ था। माथेरान स्टेशन पर जिस प्रेम से आपने मुझे बुलाया था, वे शब्द आज भी कान में गूंजते हैं। उस दिन जो आंसू झर-झर बह रहे थे, वे आंसू अब तक आते ही रहते हैं। आपको सुनते समय, आपके दर्शन के समय यही स्थिति रहती है।
आपके साथ रहने का, उठने-बैठने का सौभाग्य काफी सालों तक मिलता रहा है। आपसे प्राप्त प्रेम की जो परिपूर्ण अवस्था उस दिन थी, वही परिपूर्ण अवस्था आज भी है। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी और आश्चर्यजनक घटना मानती हूं। यह प्रेम की अवस्था मेरे जीवन के अंत समय तक रहे, ऐसा आशीर्वाद आपसे चाहती हूं।

सोहन, प्रेम हो तो सदा पूर्ण ही होता है; अपूर्ण प्रेम जैसी कोई अनुभूति ही नहीं है। जैसे वर्तुल हो तो पूर्ण ही होता है; अपूर्ण वर्तुल जैसा कोई वर्तुल नहीं होता; होगा तो फिर उसे वर्तुल न कह सकेंगे। वैसे ही प्रेम सदा ही पूर्ण है। इसीलिए प्रेम परमात्मा के अत्यधिक निकट अनुभव है।
जिसने प्रेम जाना उसे परमात्मा को जानना कठिन न रहेगा; जैसे एक कदम बस और। प्रेम आखिरी सीढ़ी है परमात्मा के मंदिर की; उसके बाद मंदिर में प्रवेश है। जीसस ने कहा है: परमात्मा प्रेम है।
मैं तो थोड़ा और एक कदम आगे जाता हूं। जाना भी चाहिए, दो हजार वर्ष बीत
गए जीसस के वक्तव्य को दिए हुए। दो हजार वर्षों में मनुष्य की चेतना ने नये आयाम छुए हैं। जीसस कहते हैं, परमात्मा प्रेम है। मैं कहता हूं, प्रेम परमात्मा है। जीसस के वक्तव्य में परमात्मा महत्वपूर्ण बना रहता है; प्रेम उसका एक सदगुण। मेरे वक्तव्य में प्रेम महत्वपूर्ण हो जाता है; परमात्मा केवल उसका दूसरा नाम।
लेकिन जिस प्रेम को हम जानते हैं साधारण जगत में, वह तो पूर्ण नहीं है;
वह तो प्रेम भी नहीं है। प्रेम के नाम से न मालूम क्या-क्या, प्रेम का मुखौटा ओढ़ कर, प्रेम के आच्छादन में छिपा हुआ जीवन में चलता है। घृणा भी चलती है तो प्रेम का मुखौटा ओढ़ लेती है।
तुम जिसे साधारणतः प्रेम कहते हो, विचारना, खोदना। जरा खोदोगे और पाओगे: प्रेम तो तिरोहित हो गया, कुछ और छिपा है--दूसरे पर मालकियत करने का भाव छिपा है; स्वामित्व की आकांक्षा छिपी है; दूसरे पर अपना अहंकार आरोपित कर देने की राजनीति छिपी है; दूसरे को दबाने, शोषित करने, दूसरे का साधन की तरह उपयोग कर लेने की दूषित भावना छिपी है।
इसीलिए तो तुम्हारे प्रेम र्में ईष्या जन्मती है। अन्यथा प्रेम में और्र ईष्या जन्मे? र् ईष्या होनी चाहिए हिस्सा घृणा का। र् ईष्या जैसा जहर और प्रेम से निकलेगा? असंभव! लेकिन तथाकथित प्रेम र्से ईष्या निकलती है, जलन निकलती है, क्रोध निकलता है। जरूर जिसे हम प्रेम कह रहे हैं वह सिर्फ ऊपर-ऊपर प्रेम है, भीतर कुछ और है--ठीक उलटा प्रेम से कुछ और है।
प्रेम मुक्तिदायी है। लेकिन जिसे हम प्रेम कहते हैं वह तो बंधन बन जाता है; वह तो जंजीरें ढालता है। जिसे हम प्रेम कहते हैं वह तो कारागृह है; उसमें दो व्यक्ति निरंतर संघर्ष में लगे रहते हैं कि कौन जीते, कौन हारे। जिसे हम प्रेम कहते हैं वह तो एक सतत कलह है; संवाद भी नहीं है, बस विवाद है।
प्रेम के नाम से जगत में कुछ और ही चल रहा है। कुछ झूठ, कुछ कृत्रिम।
और कारण उसका है कि हम बचपन से ही प्रेम कोझूठ करने का आयोजन करते हैं। छोटे-छोटे बच्चों से हम कहते हैं: प्रेम करो, मैं तुम्हारी मां हूं! प्रेम करो, मैं तुम्हारा पिता हूं! प्रेम करो, यह तुम्हारा भाई है! प्रेम करो, यह तुम्हारी बहन है! जैसे प्रेम भी किया जा सकता है! जैसे प्रेम भी किसी के हाथ में है!

तो बच्चा क्या करे? अगर हम उससे आग्रह करते हैं--और हम बलशाली हैं; बच्चे का जीवन हमारे हाथ में है; बच्चे को बचना है तो हमारे साथ चलना होगा-- तो बच्चा क्या करे? कहां से प्रेम लाए? घर में जो नया-नया बच्चा पैदा हुआ है उससे घृणा पैदा होती है बड़े बच्चे को, प्रेम नहीं। वह शत्रु की तरह मालूम पड़ता है, मित्र की तरह नहीं। क्योंकि वह मां का ध्यान ज्यादा आकर्षित करेगा। अब तक जो बच्चा मां के ध्यान का केंद्र था वह परिधि पर हट जाएगा, नया बच्चा केंद्र पर होगा। वह नये बच्चे की ज्यादा देखभाल करेगी, सेवा-शुश्रूषा करेगी, चिंता करेगी।
स्वभावतः नया बच्चा, ज्यादा जरूरत है उसकी, उसके बचाव के लिए, सुरक्षा
के लिए ज्यादा आयोजन करना है। बड़ा बच्चा उपेक्षित होने लगेगा। इस नये बच्चे के प्रति बड़े बच्चे के मन में प्रेम पैदा होता है? असंभव! मनोवैज्ञानिकों से पूछो। वे कहते हैं, भयंकर्र ईष्या पैदा होती है। अगर बड़े बच्चे का वश चले तो छोटे की गर्दन दबा दे। कभी-कभी दबाता भी है मौका देख कर। कम से कम प्रार्थना तो करता है कि यह उपद्रव भगवान और कहां से भेज दिया! इसको उठा ही लो! यह झंझट किस अशुभ घड़ी में घर में आ गई!
लेकिन हम कहते हैं: यह तुम्हारा छोटा भाई है, इससे प्रेम करो! और हम शक्तिशाली हैं तो उसे प्रेम दिखाना पड़ता है। कर तो नहीं सकता, लेकिन प्रेम दिखाना पड़ता है। अभिनय करना पड़ता है।
फिर, तुम मां हो या पिता हो, इससे प्रेम के पैदा होने की कोई अनिवार्यता है? लेकिन हम कहते हैं: प्रेम करो, क्योंकि यह तुम्हारी मां, यह तुम्हारे पिता, यह बहन, यह भाई।
तो एक अभिनय का जाल शुरू होता है, एक पाखंड शुरू होता है। बच्चा धीरे- धीरे अभिनय करना सीख जाता है। भीतर दबाता रहता है सब घृणा, सब वैमनस्य। स्मरण रहे, प्रत्येक बच्चे के मन में मां के प्रति क्रोध उठता है। उठेगा ही, क्योंकि मां उसके जीवन को नियोजित करना चाहती है। और मां को नियोजित करना ही पड़ेगा। ये अनिवार्यताएं हैं जीवन की। आखिर बच्चा आग की तरफ जा रहा होगा तो मां को रोकना ही पड़ेगा। अगर बच्चा गिरने की तरफ जा रहा होगा तो मां को रोकना ही पड़ेगा; कुएं के पास जा रहा होगा तो आवाज देनी ही पड़ेगी कि रुक, वहां मत जाना! अगर भूल-चूक करेगा तो कभी धमकाना भी पड़ेगा, कभी मारना-पीटना भी पड़ेगा। और इस सबसे बच्चे के मन में बड़ा क्रोध पैदा होता है। बच्चे के भीतर बड़ी आग जलती है।
मगर उसे प्रकट तो कर नहीं सकता, उसे दबाए रखता है, उसे दबाए चला जाता है। वह अचेतन में गहन हो जाती है। ऊपर से प्रेम प्रकट करता है, मां के पैर छूता है, पिता के पैर छूता है; और भीतर कहीं गहरे में यह विचार चलता है कि कभी समय मिला तो मजा चखाऊंगा, कभी मुझे मौका मिला तो मैं भी देख लूंगा।
और मौका कभी न कभी मिलेगा, मां-बाप एक न एक दिन बूढ़े होंगे और असहाय हो जाएंगे, वैसे ही असहाय जैसा बच्चा कभी असहाय था। एक दिन आएगा कि मां-बाप बूढ़े होंगे और बच्चा शक्तिशाली होगा और मां-बाप शक्तिहीन हो जाएंगे, तब बदला लेने का क्षण आ गया।
लोग कहते हैं कि क्यों मां-बाप का सम्मान नहीं हो रहा है दुनिया में? इसीलिए नहीं हो रहा है, क्योंकि दबे हुए क्रोध के भाव अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। बच्चे का पहला पाठ ही प्रेम का गलत हो जाता है; क ख ग ही गलत हो जाता है। फिर यही प्रेम एकमात्र उसकी पहचान बन गई। यही प्रेम वह पत्नी से भी करेगा।
और इसलिए सारी दुनिया में, सारे तथाकथित समाजों ने कम से कम आज तक ऐसा आयोजन किया था कि पत्नी भी मां-बाप चुनें; युवक न चुनें, युवतियां न चुनें। जीवन का सर्वाधिक मूल्यवान क्षण भी दूसरे चुनें। ज्योतिषी चुनें, मां-बाप चुनें। जन्मकुंडलियों के द्वारा चुना जाए, गणित बिठाया जाए। अब पश्चिम में कंप्यूटर बन गए हैं और कंप्यूटर चुन देता है कि किसके साथ विवाह करना ठीक रहेगा।
कोई बच्चा अपनी बहन तो नहीं चुन सकता, अपना भाई तो नहीं चुन सकता; ये
तो उपलब्ध होते हैं जन्म के साथ। चुनाव का तो एक ही मौका था, एक ही स्वतंत्रता थी--अपनी पत्नी या अपने पति को चुन सकता। वह भी छीन लिया। उसे

भी हमने आयोजित विवाह में रूपांतरित कर दिया। उतनी स्वतंत्रता भी न बचने दी पृथ्वी पर।
फिर हम कहते हैं: तुम्हारी पत्नी है, प्रेम करो! तुम्हारा पति है, प्रेम करो! पति तो परमात्मा है! इसलिए प्रेम करना पड़ता है, होता नहीं। और जो किया जाता है वह झूठा; जो होता है वह सच्चा। जो किया जाता है, कागजी; असली फूल नहीं, उसमें सुगंध नहीं होती। जो होता है! प्रेम एक अपूर्व घटना है।
इस तरह हमने सारी मनुष्य-जाति को एक झूठे प्रेम के जाल में उलझा दिया है। फायदा है कुछ लोगों को इससे। पंडित-पुरोहित को फायदा है, राजनेताओं को फायदा है। मां-बाप को सुविधा है। प्रेम कोझूठा करके हमने मनुष्य के जीवन से स्वतंत्रता का सूत्र कम कर दिया। क्योंकि स्वतंत्र व्यक्ति खतरनाक मालूम होते हैं। स्वतंत्रता का अर्थ होता है--तुम उन्हें गुलाम न बना सकोगे। वे जीवन दे देंगे, लेकिन अपनी आजादी न देंगे। वे मरने को राजी हो जाएंगे, लेकिन अपनी स्वतंत्रता को न खोएंगे। क्योंकि स्वतंत्रता का मूल्य जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। वे अपने प्रेम को न गंवाएंगे, चाहे स्वयं को गंवा दें। क्योंकि प्रेम की वेदी पर स्वयं को चढ़ा देना सौभाग्य है। इसलिए न हम जगत में प्रेम चाहते रहे अब तक, न स्वतंत्रता चाहते रहे अब तक। न हम चाहते हैं कि लोग सोच-विचारपूर्ण हों, न हम चाहते हैं चैतन्य हों। हम चाहते हैं बिल्कुल गोबर गणेश, कि गुलामी, आज्ञाकारिता, कि हम उनसे जो कहें वही किए चले जाएं। कि हम कहें हिरोशिमा पर एटमबम गिराओ, तो आज्ञाकारी सैनिक हिरोशिमा पर एटमबम गिरा दे। एक लाख निर्दोष लोगों को खाक कर दे क्षण भर में और उसके मन में जरा भी... निश्चिंत रहे... जरा भी चिंता न आए। क्षण भर को भी उसे संकोच न उठे, संदेह न उठे, प्रश्न न उठे।
काश, इस व्यक्ति ने किसी को प्रेम किया होता! जरा सोचो, जिस व्यक्ति ने हिरोशिमा पर एटमबम गिराया इसने अगर किसी को प्रेम किया होता तो क्या यह संभव था कि यह हिरोशिमा पर बम गिरा सकता? इसे याद आया होता अपना प्रेम। इसे याद आया होता कि यह लाखों लोगों ने भी प्रेम किया होगा। प्रेम की इस बगिया को उजाड़ दूं? सिर्फ आज्ञाकारिता के थोथे सिद्धांत के आधार पर एक लाख लोगों की बलि चढ़ा दूं? अगर इसने प्रेम किया होता और स्वतंत्रता का स्वाद लिया होता तो इसने इनकार कर दिया होता। इसने कहा होता कि नहीं, यह नहीं होगा, चाहे मेरी गर्दन कटती हो तो कट जाए।
अगर दुनिया में थोड़े प्रेम का अनुभव हो तो युद्ध बंद हो जाएं। क्योंकि कौन लड़े, कौन मारे? किसलिए लड़े, किसलिए मारे?
लेकिन युद्ध बंद हो जाएं तो राजनेता का क्या हो? युद्ध बंद हो जाएं तो शासन-सत्ताओं का क्या हो? युद्ध बंद हो जाएं तो जो रुग्णचित्त लोग नेतृत्व कर रहे हैं, उनका क्या हो? और अगर युद्ध बंद हो जाएं और आज्ञाकारिता के झूठे दंभ टूट जाएं, लोग सोचें, विचारें, फिर कदम उठाएं, लोग अपने प्रेम, अपने अनुभव से जीएं, तो इस दुनिया में हिंदुओं का क्या होगा? मुसलमानों का क्या होगा? ईसाइयों का क्या होगा? लोग होंगे, स्वतंत्र लोग होंगे।
और स्वतंत्र व्यक्ति न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न ईसाई होता है। स्वतंत्र व्यक्ति तो सिर्फ मनुष्य होता है। स्वतंत्र व्यक्ति न भारतीय होता है, न पाकिस्तानी होता है, न चीनी होता है, न अमरीकी होता है। स्वतंत्र व्यक्ति तो केवल मनुष्य होता है। स्वतंत्र व्यक्ति तो कहेगा: सारी पृथ्वी हमारी है, सारा अस्तित्व हमारा है। क्यों हम खंडों में बांटें? क्योंकि सब खंडों में बांटना आज नहीं कल युद्ध का कारण बनता है।
लकीरें खींचो, कि उस तरफ संगीनें खड़ी हो गईं और इस तरफ संगीनें खड़ी हो गईं।
फिर लकीरों को जरा यहां-वहां किसी ने पार किया कि बंदूकें चलीं। जब तक जमीन के नक्शे पर लकीरें रहेंगी तब तक जमीन कभी शांति से नहीं जी सकती।
प्रेम के बिना शांति की कोई संभावना नहीं है।
इसलिए पहला सूत्र समझ लेना चाहिए कि हम जिसे प्रेम कहते हैं वह झूठा प्रेम है। मैं जिसे प्रेम कह रहा हूं वह कोई और ही बात है। वह है तुम्हारे

हृदय का आविर्भाव। तुम जिसे प्रेम कहते हो वह है केवल मस्तिष्क का गणित, हिसाब-किताब।
सोहन, प्रेम तो जब भी होता है पूर्ण ही होता है। और तू धन्यभागी है कि वैसे पूर्ण प्रेम की एक झलक तुझे मिली। इस जगत में बहुत कम लोग इतने धन्यभागी हैं। और पूर्ण कभी घटता नहीं; पूर्ण तो और पूर्ण से पूर्णतर होता चला जाता है। पूर्ण तो और आभायुक्त होता चला जाता है। पूर्ण में तो और पंखुरियों पर पंखुरियां निकल आती हैं। पूर्ण ह््रास जानता ही नहीं, सिर्फ विकास जानता है।
और निश्चित ही जब प्रेम का अनुभव होगा तो आंसुओं की झड़ी लगेगी। उस आंसुओं की झड़ी के पीछे दो पहलू हैं। एक पहलू पीड़ा का है कि अब तक का जीवन व्यर्थ था, कि अब तक जो जाना वह सही नहीं था, सत्य नहीं था। एक पहलू पश्चात्ताप का, पीड़ा का, कि यह कल क्यों न हुआ, परसों क्यों न हुआ? यह और जल्दी क्यों न हुआ? इतनी देर क्यों हुई?
और एक पहलू अपूर्व आनंद का, कि जब हुआ तब भी जल्दी है। आज हो गया, कौन निश्चय था कि आज ही होता! आज भी न होता, यह भी हो सकता था। एक पहलू विषाद का, अतीत की तरफ; और एक पहलू उल्लास का, भविष्य की तरफ।
और आंसू आंखों से जरूर गिरते हैं, लेकिन आते तो हृदय से हैं, उठते तो हैं हृदय से। जैसे मेघ उठते तो सागर में हैं, बरसते पृथ्वी पर हैं--ऐसे ही प्रेम के आंसू उठते तो हृदय के सागर में हैं, बरसते आंखों से हैं। आंखें तो केवल माध्यम हैं।
फिर, जितना ही प्रेम सघन होता है उतना ही जीवन की और सारी चीजें व्यर्थ मालूम होने लगती हैं। जितना प्रेम का अनुभव प्रगाढ़ होता है, बस प्रेम की ही अहर्निश धुन लगी रहती है।
उमड़ता सावन, उमड़ती हैं घटाएं,
यहनिगोड़ेनैनको क्याहो गयाहै?
कह दिया शायद हमारा राज तुमने,
पीर से पाषाण पिघले जा रहे हैं;
इस तरह टूटा गगन से एक तारा,
चांदके, लो, प्राणओंठोंआरहेहैं; बिलखता अंबर, बिलखती हैं दिशाएं, आज की इस रैन को क्या हो गया है? उमड़ता सावन, उमड़ती हैं घटाएं यहनिगोड़ेनैनको क्याहो गयाहै? पांव छू आए हमारे जिस डगर को, धूल तक उसकी हुई है अगरू-चंदन; पर जहां विश्राम करना चाहते हैं, छांहतकदेतीवहांकीदाह-दंशन; दहकता आंगन, दहकते द्वार, राहें, यह अजाने चैन को क्या हो गया है? उमड़ता सावन, उमड़ती हैं घटाएं, यहनिगोड़ेनैनको क्याहो गयाहै?
एक ध्वनि है, जो न आती पास अपने, एक प्रतिध्वनि, जो न पीछा छोड़ती है, जिंदगी नाता जगत से, जागरण से, राम जाने, तोड़ती या जोड़ती है; जिंदगी नाता जगत से, जागरण से, रामजाने, तोड़तीयाजोड़तीहै;
बहकते हैं स्वर, बहकती हैं सदाएं, यह हठीले बैन को क्या हो गया है? उमड़ता सावन, उमड़ती हैं घटाएं, यहनिगोड़ेनैनको क्याहो गयाहै? मुस्कुराएं हम, चमन सब झूम जाए, जोहती हैं बाट आने की बहारें;

आज सुधि शायद तुम्हें आई इधर की,
द्वारदस्तकदेरहींहल्कीफुहारें;
सहमता उपवन, सहमती हैं हवाएं,
इस हठी उपरैन को क्या हो गया है?
उमड़ता सावन, उमड़ती हैं घटाएं,
यहनिगोड़ेनैनको क्याहो गयाहै?
पहली बार जब प्रेम की अनुभूति की बदली हृदय में घनी होती है तो जरूर बहुत आंसू झरते हैं--आंसू, जो कि आंखों को ही नहीं स्वच्छ कर जाएंगे, बल्कि प्राणों को भी। आंसू, जो कि जीवन को, चैतन्य को, चैतन्य के दर्पण को धूल से मुक्त कर जाएंगे। और ये आंसू ऐसे नहीं हैं कि चुक जाएं। इसलिए सोहन, वे आज भी बह रहे हैं, वे बहते ही रहेंगे। उन्हीं आंसुओं के आनंद में डूबी तुम इस संसार से विदा होगी। उन्हीं आनंद-अश्रुओं में डूबी, प्रार्थना से भरी, प्रेम से परिपूर्ण अगर इस संसार से कोई विदा हो सके तो फिर लौटने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
पूर्णता का कोई भी अनुभव मुक्तिदायी है, फिर आवागमन नहीं है।
पांव छू आए हमारे जिस डगर को,
धूलतकउसकीहुईहैअगरू-चंदन;
प्रेम भरा व्यक्ति जहां चल जाए वहां धूल भी अगरू-चंदन हो जाती है।
पांव छू आए हमारे जिस डगर को,
धूल तक उसकी हुई है अगरू-चंदन;
पर जहां विश्राम करना चाहते हैं,
छांहतकदेतीवहांकीदाह-दंशन;
फिर इस संसार में कुछ भी भाता नहीं। इस संसार के पार की एक बूंद भी कंठ में उतर जाए तो इस संसार में फिर कुछ भाता नहीं। फिर यहां कोई छाया नहीं है। फिर यहां दंश ही दंश है। भक्तों की यही तो पीड़ा है, प्रेमियों की यही तो उलझन है। उन्हें वह दिखाई पड़ गया है जो साधारणतः अदृश्य है। उन्हें भीनी-भीनी उसकी महक आ गई है। और उसकी महक के आते ही यह सारा जगत दुर्गंधयुक्त हो जाता है।
श्री अरविंद ने कहा है: जब तक प्रकाश को, असली प्रकाश को नहीं जाना था,
तब तक जिसे हम प्रकाश जानते थे वह प्रकाश नहीं था, वह अंधेरा था। जब असली प्रकाश को जाना तो पहचाना कि अब तक जो प्रकाश मान रखा था वह अंधेरा था। और जब असली जीवन को जाना तो जाना कि जिसे अब तक जीवन जाना था वह जीवन नहीं था, केवल मृत्यु की एक लंबीशृंखला थी।
जैसे ही जीवन में अज्ञात की कोई किरण उतरती है, यह सारा जीवन एकदम असार मालूम होने लगता है। इस सारे जीवन के बीच रहते हुए भी व्यक्ति असंलग्न हो जाता है, असंग हो जाता है।
इस असंगता को ही मैं संन्यास कहता हूं, सोहन। संन्यास यानी कहीं भाग जाना नहीं, कोई पलायन नहीं। संन्यास यानी असंग भाव। संन्यास यानी जानते हुए जीना कि यह जगत काफी नहीं है, सीढ़ियां है, बस सीढ़ियां। मंदिर का शिखर दिखाई पड़ने लगे। और उस मंदिर का शिखर प्रेमपूर्ण आंखों को ही दिखाई पड़ता है। प्रेम के अतिरिक्त उस मंदिर का शिखर किसी को दिखाई नहीं पड़ता। उस प्रेम को ही चाहो श्रद्धा कहो; उस प्रेम को चाहे आस्था कहो, भाव-भक्ति कहो, जो नाम देना हो दो। लेकिन प्रेम बहुत प्यारा नाम है।
मेरा चुनाव प्रेम के लिए है। भक्ति कहो तो भक्ति थोड़ी सीमित हो जाती है। फिर भक्ति सिर्फ भगवान की तरफ--संकरा रास्ता हो जाता है। भक्ति में इस जगत के प्रति, इस जीवन के प्रति एक तरह का निषेध हो जाता है। प्रेम में स्वीकार है। प्रेम में कीचड़ से लेकर कमल तक सभी कुछ स्वीकार है। प्रेम एक सीढ़ी है जिसमें नीचे से नीचे सोपान हैं और ऊपर से ऊपर सोपान हैं। नीचे सीढ़ी के पैर पृथ्वी पर अटके हैं और ऊपर का छोर आकाश से जुड़ा है। प्रेम विराट है--भक्ति से कहीं ज्यादा विराट! भक्ति तो सिर्फ ऊपर के सोपान की बात है, आखिरी छोर की; लेकिन प्रेम में पूरी सीढ़ी समाहित है।
मेरा चुनाव प्रेम के लिए है। क्यों?

एक सूफी फकीर बूढ़ा हो गया है। उसके बेटे को बेटा हुआ है। वह उस छोटे से बेटे को लेकर फकीर के पास आया है। फकीर भी प्रसन्न है कि आज वह दादा बना। उसने बेटे को गोद में ले लिया है। उसे बड़े प्यार से खिला रहा है। और तभी उसे भीतर एक ख्याल आता है कि मैं इस बेटे को इतना प्रेम दे रहा हूं, इतना आनंद-मग्न हूं, क्या मेरा यह प्रेम देना मेरी ईश्वर भक्ति के पक्ष में है या विपक्ष में? जैसे ही उसे यह ख्याल आया उसने अपने नाती को धक्का देकर गोद से नीचे गिरा दिया।
उस बच्चे का बाप तो बहुत हैरान हुआ कि अभी आप इतने प्रेम से उसे थपथपा रहे थे, फिर क्या हुआ?
उसने कहा, मुझे याद आया कि मैं इस बच्चे को प्रेम करने में परमात्मा
को भूल गया। इसे ले जाओ, इसे यहां से हटा लो। इसे कभी यहां मत लाना। मेरे लिए यह बच्चा तो शैतान जैसा है।
मैं जब यह कहानी पढ़ रहा था तो मैंने सोचा, जो भक्ति इतनी संकीर्ण हो जाए, उस भक्ति से क्या कोई मुक्त हो सकेगा? जो भक्ति इतनी ओछी हो जाए, इतर्नी ईष्यालु हो जाए, भगवान इतना छोटा पड़ जाए कि उसमें यह बेटा भी न समा सके, तो यह भगवान का आकाश न हुआ, यह किसी मस्जिद का आंगन हो गया, किसी मंदिर का आंगन हो गया।
भगवान का प्रेम तो इतना बड़ा होना चाहिए कि और सारे प्रेम उसमें समा जाएं, जैसे सागर में सारी नदियां समा जाती हैं। और सागर यह भी तो नहीं कहता कि ऐ नदियो, मत गिरो मुझमें! न मालूम कहां-कहां की गंदगियां लेकर तुम आती हो, न मालूम किन नगरों, न मालूम किन रास्तों की धूल-धंवास, कूड़ा-कर्कट लेकर तुम आती हो, मुझमें न समाओ! मुझे गंदा न कर देना!
नहीं, सागर सबको आत्मसात कर लेता है। सागर की क्षमता ऐसी है कि जो उसमें गिरेगा वह पवित्र हो जाएगा। सागर अपवित्र नहीं होता।
ऐसे ही, परमात्मा की अगर सच में ही प्रार्थना जगी हो, प्रेम जगा हो, तो
उस प्रेम के कारण तुम्हारे और प्रेम खंडित नहीं होते, बल्कि पहली बार तुम्हारे और प्रेम भी पूर्ण होने लगते हैं। पहली बार तुम्हारे और प्रेम भी सच्चे होने लगते हैं। पहली बार तुम्हारे और प्रेम भी प्रामाणिक होने लगते हैं। फिर तुम पत्नी को इसलिए नहीं चाहते कि वह पत्नी है, तुम्हारी है; बल्कि इसलिए चाहते हो कि उसके भीतर भी परमात्मा प्रकट हुआ है। तुम बेटे को फिर इसलिए नहीं चाहते कि वह तुम्हारा है; फिर इसलिए चाहते हो कि उसके भीतर भी परमात्मा प्रकट हुआ है। फिर तो सब के भीतर परमात्मा प्रकट हुआ है--कौन अपना, कौन पराया! एक का ही वास है।
इसलिए मैं भक्ति से भी मूल्यवान प्रेम शब्द को मानता हूं, क्योंकि प्रेम निषेध नहीं करेगा। भक्ति में डर है। भक्तों ने अक्सर निषेध किया है। भक्त अक्सर डर गए हैं। और जो डर जाएं वे कोई भक्त हैं? जो भयभीत होकर अपने नाती को हटा दिया गोद से, यह आदमी कभी परमात्मा को पा सकेगा? हालांकि यह सोच रहा है कि यह पुण्य-कर्म कर रहा है। और सूफी इस कहानी को इस तरह लिखते हैं जैसे कि फकीर ने बहुत अच्छा किया! बड़ी प्रशंसा से लिखते हैं। और जब मैं सूफी किताबों में इस तरह की कहानियां देखता हूं तो एक बात पक्की हो जाती है कि जिसने भी यह किताब लिखी वह सूफी नहीं है, उसे प्रेम का कोई पता नहीं है; पंडित होगा, लेकिन उसे जीवन के रहस्यों का कोई बोध नहीं है। सोहन, प्रेम तो पूर्ण है--इतना पूर्ण कि सारे अस्तित्व को समा ले अपने में और फिर भी शेष रह जाता है। अस्तित्व छोटा पड़ जाता है, प्रेम इतना पूर्ण है। और जो पूर्ण है वह घटता नहीं, बढ़ता ही जाता है। प्रेम के इस जगत में पूर्णिमा के बाद फिर चांद छोटा नहीं होता, चांद रोज बड़ा होता जाता है, चांद ही चांद रह जाता है। कंकड़-पत्थर भी चांद हो जाते हैं। सब तरफ चांदनी हो जाती है।
तू कहती है कि प्रेम की जो परिपूर्ण अवस्था उस दिन थी वही परिपूर्ण अवस्था आज भी है।
ऐसा ही होना चाहिए। वैसा ही हुआ है। तू क्षण भर को भी नहीं डगमगाई है।
बहुत इस बीच मेरे पास आए हैं लोग और गए हैं, लेकिन एक क्षण को भी, इंच भर को भी तू दूर नहीं हटी है।

मेरे साथ चलना आसान काम नहीं है। मुझसे प्रेम करना मंहगा सौदा है। क्योंकि मुझसे प्रेम करने में तुम्हें न मालूम कितने नाते-रिश्ते, न मालूम कितने संबंध, न मालूम कितनी सांसारिक औपचारिकताएं तोड़नी पड़ेंगी। लेकिन तूने सब आनंद से स्वीकार कर लिया है। यह तभी संभव हो सकता है जब हीरा हाथ लगा हो, तो कंकड़-पत्थर छोड़ने में किसको अड़चन होती है!
यहां तो बहुत लोग आएंगे और जाएंगे; राज तो उनके ही हाथ लगेगा जो टिकेंगे, आने-जाने वालों के हाथ नहीं, यात्रियों के हाथ नहीं। आने-जाने वाले आते-जाते रहेंगे। उनकी भी जरूरत है। हलन-चलन होता रहता है, गति होती रहती है। पानी रुकता नहीं, ठहरता नहीं। उनका भी उपयोग है।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहा करता था... । उसके कहने के ढंग जरा कठोर थे। वह आदमी जरा और ही ढंग का आदमी था। उसका बोलना ऐसा था जैसे कोई लट्ठ मार दे सिर पर। किसी ने गुरजिएफ को पूछा, इतने लोग आते हैं, जाते हैं, उसमें से थोड़े से लोग टिकते हैं, इस संबंध में आपका क्या कहना है? तो उसने कहा, तुम भोजन करते हो तो भोजन में नब्बे प्रतिशत तो रफेज होता है। दस प्रतिशत पचता है, मांस-मज्जा बनता है, नब्बे प्रतिशत तो मल-मूत्र से बाहर निकल जाता है। जो लोग आते-जाते रहते हैं, उसने कहा, उनकी भी जरूरत है--रफेज! अगर तुम सिर्फ पौष्टिक आहार ही करोगे जिसमें रफेज नहीं है, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। मल-मूत्र का निष्कासन कैसे होगा?
जरा कठोर भाषा है। गुरजिएफ की भाषा ऐसी ही थी। सीधी-सीधी बात कह देता था; वैसी ही कह देता था जैसी कहनी चाहिए, बिना लाग-लगाव के।
जो लोग कब्जियत से बीमार होते हैं, उनको हम क्या सलाह देते हैं? उनको कहते हैं, पालक की सब्जी लो, और सब्जियां लो, हरी सब्जियां लो, कच्ची सब्जियां लो। क्यों? क्योंकि इनमें से अधिक पचेगा नहीं। इसमें अधिक कूड़ा- कर्कट है, घास-पात है। लेकिन वह घास-पात का वजन जरूरी है, ताकि तुम्हारी अंतड़ियां साफ होती रहें। गुरजिएफ ने भी खूब उदाहरण लिया कि वे जो नब्बे प्रतिशत लोग आते-जाते रहते हैं, वे सिर्फ अंतड़ियों को साफ करने के लिए हैं, इससे ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो उनका है जो टिक रहे हैं, जो हड्डी-मांस-मज्जा बने हैं।

सोहन, तू टिक रही और इतनी टिक रही कि अब तो जाने का सवाल ही नहीं उठता।
एक सीमा है, उसके पार जाने का सवाल नहीं उठता। एक सीमा है जब पहचान ऐसी गहरी हो जाती है कि फिर जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। एक समझ है अंतरतम की। जो बुद्धि से ही मुझे समझते हैं, वे हो सकता है आज नहीं कल चले जाएं। क्योंकि बुद्धि का कोई भरोसा नहीं। बुद्धि में कभी कोई श्रद्धा उमगती ही नहीं। बुद्धि तो केवल गणित बिठालती रहती है। आज कोई बात अच्छी लगी तो मेरे साथ हो गए, कल कोई बात अच्छी नहीं लगी तो मेरा साथ छोड़ दिया। हृदय जानता है गहराइयां। हृदय बातों से नहीं जुड़ता, प्राणों से जुड़ता है। हृदय के सुनने का ढंग ही और है, समझने का ढंग और है। हृदय के तर्क ही कुछ और हैं, जिनको बुद्धि न तो समझती है, न समझ सकती है। बुद्धि बिल्कुल उपयोग की चीज है बाहर के जगत में, मगर भीतर के जगत में बिल्कुल निरुपयोगी है, बोझ है, बाधा है, दीवार है।
सोहन, तूने प्रेम से समझा, हृदय से सुना। तूने समीप रहने की हिम्मत रखी। जब दूसरे छोड़ कर जा रहे थे तब भी तूने फिकर न की। तेरा प्रेम परिपक्व हुआ। इसलिए प्रेम बढ़ता गया है, और-और पूर्णतर होता गया है।
तूने कहा कि यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी और आश्चर्यजनक घटना मानती हूं।
है ही प्रेम जीवन की सबसे बड़ी और सबसे आश्चर्यजनक घटना। क्योंकि जिसको प्रेम की नाव मिल गई, समझो कि उसको वह किनारा मिल गया। जिसको प्रेम की नाव मिल गई अब दूसरा किनारा ज्यादा दूर नहीं।
तृण की तरी
तीर पर ठहरी,
पांथ
पार जो जाओ!
व्यर्थ धर्म नय पंथ, दर्शन मत,

यान ज्ञान--विज्ञान के महत यह तृण तरणी
सीमा ही में लय
असीम तुम पाओ!
हरित-पंख तृण तरी क्षिप्रतर, भव सागर अब और न दुस्तर,
नव आस्था में डूब
हृदय का
कल्मष भार डुबाओ!
सृजन गुहा की द्वार यह तरी, प्राण चेतना ज्वार से भरी, आर पार का भ्रम न वहां
तुम इसमें जहां समाओ!
तरी सिंधु, सब सिंधु ही तरी, दृष्टि हृदय की हो जो गहरी
प्रति कण तीर;
काल-लहरों पर
शशि-कर नीड़ बसाओ
पांथ
पार जो जाओ!
नाव तेरे हाथ लग गई, अब दूसरा किनारा बहुत दूर नहीं है, आधी यात्रा पूरी हो गई। तूने चाहा है कि यह प्रेम की अवस्था मेरे जीवन के अंत समय तक रहे, ऐसा आशीर्वाद आपसे चाहती हूं।
तू चाहे आशीर्वाद मांगे या न मांगे, आशीर्वाद तुझ पर बरस ही रहा है। आशीर्वाद मांगने से थोड़े ही मिलता है, पात्रता से मिलता है। अपात्र मांगे भी तो भी क्या किया जा सकता है? उसके पास पात्र ही नहीं है जिसमें वह सम्हाल सकेगा आशीर्वाद। और अगर पात्र भी है तो इतना गंदा है कि आशीर्वाद भी उसमें गिर कर अभिशाप हो जाएगा। जिनके पास पात्र है उसमें आशीर्वाद बरसता ही है, मांगने की जरूरत ही नहीं पड़ती।
बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून! रहीम ठीक कहते हैं। पात्रता
हो तो बस बिना मांगे मोती बरस जाते हैं। और तूने खूब प्रमाण दिए हैं पात्र होने के। आशीर्वाद बरस ही रहा है। और जो आज तेरे साथ है वह जीवन के अंतिम क्षण में तो बहुत गहन होकर साथ होगा। क्योंकि जीवन का अंतिम क्षण है क्या? सारे जीवन का निचोड़, सारे जीवन का इत्र, सारे जीवन के फूलों का इत्र! अगर आज तेरा सुंदर है तो कल सुंदरतर होगा, परसों और सुंदरतर। और जिसका जीवन सुंदर है, प्रेमपूर्ण है, आनंद-उल्लास से भरा है, उत्सवपूर्ण है, उसकी मृत्यु भी उत्सव होगी, महोत्सव होगी। क्योंकि मृत्यु है क्या? सारे जीवन की पराकाष्ठा! मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, जीवन की पूर्णाहुति है।
दूसरा प्रश्नः भगवान, एक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा कि पत्नी को दुख मत दो। संन्यास की जल्दी न करो। अगर जल्दी करोगे, तो तुम ही मेरे और तुम्हारी पत्नी के बीच एक दीवार बनोगे।
भगवान, ठीक यही मेरे साथ हुआ है। आखिर पत्नी को साथ ले चलना इतना असंभव सा क्यों लगता है? क्या यह आकांक्षा ही गलत है?

अजित सरस्वती, आकांक्षा गलत तो नहीं है, आकांक्षा तो ठीक ही है। क्योंकि तुम्हें अमृत मिले और तुम पत्नी को आमंत्रित न करो, यह कैसे संभव होगा? तुम्हारे जीवन में रसधार बहे और तुम पत्नी को छोड़ ही दो एक किनारे, उपेक्षित, यह कैसे होगा?
जब तुम्हारे जीवन में नये का आविर्भाव होगा तो स्वाभाविक है कि जिन्हें तुमने चाहा है, जिन्हें तुमने निकट पाया है, तुम उन्हें भी निमंत्रित करो। तुम्हारा पत्नी को निमंत्रण देना एकदम स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक होने से ही तो कुछ बातें पूरी नहीं हो जातीं। जीवन बहुत अटपटी व्यवस्था है। जीवन कोई नियम से थोड़े ही चल रहा है--बड़ा बेबूझ है!

इसीलिए तो कबीर कहते हैं: एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आगि। नदी में आग लगी हुई है। होना नहीं चाहिए, स्वाभाविक नहीं है; मगर जीवन अचंभों से भरा है। इनमें सबसे बड़ा अचंभा यह है: तुमने जिसे चाहा है, तुम जरूर चाहोगे कि तुम्हारे जीवन में आनंद आए तो उसे भी तुम भागीदार बनाओ। मगर यही अड़चन बन जाएगी। नदिया लागी आगि! मुश्किल हो जाएगा।
पति पत्नी को अगर लाना चाहे किसी दिशा में तो कठिनाई शुरू हो जाती है, क्योंकि यह नाता ही कुछ हमने गलत ढंग का निर्मित किया है। यह नाता ही गलत है। यह आकांक्षा तो सही है, मगर पति-पत्नी का नाता अस्वाभाविक है। चौंकोगे तुम मेरी बात सुन कर। यह आकांक्षा स्वाभाविक, लेकिन पति-पत्नी का नाता अस्वाभाविक है। मनुष्य को छोड़ कर और तो कहीं कोई पति-पत्नी नहीं होते। मनुष्य ने ही यह संस्था ईजाद की है।
संस्थाओं में जीना जरा कठिन काम है। क्योंकि संस्थाएं नियम से चलती हैं; और संस्थाएं दमन से चलती हैं। और सब संस्थाओं में कुछ न कुछ हिंसा होती है। संस्था मात्र हिंसा पर निर्भर होती है। इसलिए सबसे बड़ी संस्था, राज्य, शुद्ध हिंसा पर खड़ी है। हालांकि तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। अगर कोई आदमी चोरी करता है तो हमें हिंसा दिखाई पड़ती है; और चौरस्ते पर खड़ा हुआ पुलिस का सिपाही बंदूक लिए खड़ा है, हमें हिंसा नहीं दिखाई पड़ती। अगर राज्य किसी को फांसी की सजा देता है तो हमें हिंसा नहीं दिखाई पड़ती। और अगर कोई आदमी किसी को मार डाले तो हिंसा। हमने राज्य की हिंसा को स्वीकार कर लिया है। हमने मान ही लिया है कि वह ठीक है।
संस्थागत हिंसा को हम सदा से स्वीकार करते रहे हैं। तुम्हारे बच्चे
को अगर स्कूल में शिक्षक पिटाई कर देता है तोबिल्कुल ठीक है। लेकिन कोई दूसरा आदमी रास्ते में तुम्हारे बच्चे को मार दे, तो चाहे कितना ही ठीक कारणों से मारे, तुम लड़ने पहुंच जाओगे। लेकिन शिक्षक ने मार दिया, तो तुम कहोगे, शिक्षक नहीं मारेगा तो क्या करेगा? बिना मारे कहीं ज्ञान आया है? मारने से विद्या छम-छम करती आती है।
संस्थागत हिंसा स्वीकार हो जाती है।
मैं रायपुर में एक घर में रहता था। पड़ोस में एक सज्जन अपनी पत्नी को मार रहे थे। मैं उठा और मैंने उनको कहा कि बस अब रुक जाओ, काफी हो गया। मैंने सोचा था कम से कम पत्नी तो मुझे धन्यवाद देगी। लेकिन पत्नी ने भी मुझसे क्या कहा, मालूम है--कि आप बीच में बोलने वाले कौन होते हैं? पत्नी ने मुझसे कहा! वही पिट रही थी! कि आप बीच में बोलने वाले कौन होते हैं? ये मेरे पति हैं! यह पति-पत्नी का मामला है। आप जाइए।
संस्थागत हिंसा इतनी स्वीकृत हो जाती है कि वह जो पिट रहा है वह भी संस्थागत हिंसा को समादर देता है। पति-पत्नी का नाता मौलिक रूप से अस्वाभाविक है। इसका कोई भविष्य नहीं है। जैसे ही आदमी थोड़ा और सुसंस्कृत होगा, पति-पत्नी का हिसाब दुनिया से विदा हो जाने वाला है, देर-अबेर विदा होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्त्री-पुरुष प्रेम नहीं करेंगे। प्रेम करेंगे; और प्रेम करेंगे तो साथ भी रहेंगे; लेकिन उनका साथ रहना स्वेच्छा होगी, कोई कानूनी बंधन नहीं। असल में जहां बंधन है वहां प्रतिशोध पैदा होता है।
अजित सरस्वती, तुम्हारी पत्नी बंधन अनुभव करती होगी। सभी की पत्नियां अनुभव करती हैं। पति भी अनुभव करते हैं--पति, जो कि ज्यादा ताकतवर हैं; जिन्होंने कि स्त्रियों कोबिल्कुल गुलाम बना कर रखा है। मगर स्त्रियां भी बदला लेती हैं; जहां ले सकती हैं, जितना ले सकती हैं, उतना बदला लेती हैं। और सब तरफ से तो हमने उनको पंगु कर दिया है, लेकिन कुछ बातों में तो वे इनकार कर सकती हैं। अब जैसे मेरे पास तुम अगर पत्नी को लाना चाहो... ।
मुझे पूना आए पांच वर्ष हो गए। अजित सरस्वती, जो लोग मेरे बहुत समीप हैं, उनमें से एक हैं; जिनको मैं अपने गणधर कहूं, उनमें से एक हैं; जिन्होंने मुझे गहराई से समझा है, उनमें से एक हैं; जो मेरी बात को लोगों तक कभी पहुंचाने में समर्थ हो जाएंगे, उनमें से एक हैं। स्वभावतः पत्नी को तुम लाना चाहोगे। मगर और तरह से तो पत्नी तुम्हारी स्वामित्व की जो व्यवस्था है उसको नहीं तोड़ सकती, मगर ऐसी बातों में तो तोड़ सकती है। वह

कहेगी कि वहां हमें नहीं जाना है। मैं तो मंदिर जाऊंगी, मंदिर काफी है। मैं तो गीता पढूंगी या रामायण पढूंगी। मुझे तो परंपरागत धर्म पर्याप्त है। मुझे कोई नये विचारों में रस नहीं है। तुम्हें जाना है, तुम जाओ।
यह प्रतिरोध है, यह प्रतिशोध है। अन्यथा अगर पति इतना आनंदित हो रहा है--और तुम आनंदित हुए हो, शांत हुए हो--तुम्हारी पत्नी को यह दिखाई नहीं पड़ेगा तो किसको दिखाई पड़ेगा? सब दिखाई पड़ रहा है, लेकिन फिर भी अहंकार उसका रोकेगा। पत्नी और पति का संबंध इतना अस्वाभाविक है, इसीलिए उसमें इतनी कलह है। चौबीस घंटे छोटी-छोटी बातों में कलह है। वे बातें महत्वपूर्ण नहीं हैं। बच्चे के लिए कौन सा खिलौना खरीदना है, इस पर झगड़ा हो जाता है। जैसे झगड़े की तलाश ही चलती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन को उल्लू पालने का अजीब शौक सूझा। शौक तो शौक ही हैं और शौक तो अजीब ही होते हैं। और फिर मुल्ला तो उलटी खोपड़ी का आदमी है। कोई मोर को पाले, समझ में आए; उसको उल्लू पालना। वैसे उल्लू प्रतीक है--सिर्फ भारत को छोड़ कर सारी दुनिया में--ज्ञान का। क्योंकि उसको रात में दिखाई पड़ता है, अंधेरे में दिखाई पड़ता है। जिसको अंधेरे में दिखाई पड़े, अब और क्या ज्ञान का इससे महत्वपूर्ण प्रतीक हो सकता है! उल्लू तो समझो महर्षि। अंधेरे तक में दिखाई पड़ता है! इसलिए सारी दुनिया में--भारत को छोड़ कर--सारी दुनिया में उल्लू ज्ञान का प्रतीक है। एक दिन वह बाजार से उल्लू खरीद कर एक पिंजरे में घर ले आए। मालूम है, उल्लू को देख कर उनकी पत्नी क्या बोली? उसने कहा, कान खोल कर सुन लो जी! इस घर में दो उल्लू नहीं रहेंगे, एक ही रहेगा! तय कर लो, या तो यह उल्लू रहेगा या तुम, दो में से एक ही रह सकता है। एक को ही सह रही हूं, यही काफी है।
और यह मत तुम सोचना कि उल्लू के लाने की वजह से यह हुआ। मैं तुमसे कहता हूं, अगर मुल्ला नसरुद्दीन मोर भी लाया होता तो भी यही होता, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये तो बहाने हैं।
पति-पत्नी कोझगड़ते हुए बहुत देर हो गई थी, तो एक पड़ोसी ने पति से पूछा, भाई, आखिर झगड़ा किस बात का है? पति ने पत्नी की ओर इशारा करके कहा, मुझसे क्या पूछते हो, इन्हीं से पूछ लो। पत्नी ने झल्ला कर कहा, तीन घंटे से भी ज्यादा हो गए, अब तक क्या मुझे याद रहेगा कि मैंने किस बात के लिए झगड़ना शुरू किया था?
झगड़े के लिए झगड़ा चल रहा है। जैसे कला के लिए कला! लोग कहते हैं न, आर्ट फॉर आर्ट्स सेक! ऐसा पति-पत्नी के बीच जोझगड़ा चल रहा है, वह झगड़े के लिए झगड़ा है। कहीं कुछ घाव हैं भीतर जो एक-दूसरे ने एक-दूसरे पर आरोपित कर दिए हैं। उन घावों की सीधी-सीधी बात नहीं हो सकती, क्योंकि वह नियम के प्रतिकूल है बात करना।
पति पत्नियों को समझाते रहे हैं कि पति परमात्मा है। चूंकि सभी शास्त्र पुरुषों ने लिखे। स्त्रियों को न तो पढ़ने दिया; जब पढ़ने ही नहीं दिया तो लिखने का तो सवाल कहां! तो सभी शास्त्र पुरुषों ने लिखे, इसलिए स्त्री नरक का द्वार है! और पति? पति परमात्मा है! जिन मूढ़ों ने ये बातें लिखी होंगी उनको यह भी ख्याल नहीं है कि अपने मुंह मियां मिट्ठू बन रहे हो! खुद को पत्नी से पुजवाने की आकांक्षा! तो फिर पत्नी पूजती है--दोनों अर्थों में! औपचारिक रूप से दिखाने के लिए पहला अर्थ पूजा का--चरण छूती है, थाल सजाती है, आरती उतारती है। वह दूसरों को दिखाने के लिए। और जैसे ही दूसरे गए कि रखी उसने आरती एक तरफ और असली पूजा शुरू की।
स्त्री और पुरुष के साथ अब तक न्याय नहीं हो सका है। दोनों के सोचने, समझने, जीने के ढंग अलग हैं। दोनों की जीवन पर पकड़ अलग है।
मनोवैज्ञानिक अब इस खोज पर पहुंचे हैं कि मनुष्य के भीतर दो मस्तिष्क हैं, एक मस्तिष्क नहीं। हमारे दाएं हाथ से बाएं हिस्से का मस्तिष्क जुड़ा है। बाएं हिस्से का जो मस्तिष्क है वह पुरुष है। और इसीलिए दाएं हाथ को हमने श्रेष्ठता दे दी है--दायां हाथ ब्राह्मण और बायां हाथ शूद्र! अंग्रेजी में तो कहावत है: राइट इज़ राइट एंड लेफ्ट इज़ रांग। क्योंकि दायां हाथ पुरुष का प्रतीक है। वह जो बायां मस्तिष्क है वह दाएं हाथ से जुड़ा है। बायां मस्तिष्क तर्क करता है, गणित बिठाता है, व्यवसाय चलाता है,

विज्ञान की खोज करता है, आक्रामक है, हिंसक है, राजनीतिक है। और बाएं हाथ से जुड़ा है दायां मस्तिष्क; वह स्त्रैण है। वहां काव्य का जन्म होता है, सौंदर्य की अनुभूति होती है, प्रेम का आविर्भाव होता है। वहां गणित नहीं है, तर्क नहीं है; वहां अनुभूति है, भावना है। इन दोनों मस्तिष्कों के बीच अब तक हम ठीक-ठीक सेतु नहीं बिठा पाए।
स्त्री और ढंग से सोचती है, पुरुष और ढंग से सोचता है; उनके बीच वार्तालाप भी संभव नहीं है। हां, यदि प्रेम से संबंध हुआ हो तो शायद वार्तालाप संभव हो सके; और अगर प्रेम पर ही संबंध निर्भर हो और तब तक ही संबंध रहे जब तक प्रेम है, तो वार्तालाप संभव है। लेकिन अगर प्रेम की जगह हम कानून को बिठा लेते हैं और प्रेम तो एक तरफ हट जाता है या प्रेम होता ही नहीं, विवाह एक सामाजिक संस्था होती है, करना चाहिए इसलिए कर लेते हैं, मां-बाप चुन लेते हैं, जन्मकुंडली मिला लेते हैं, तो फिर तालमेल कभी भी बैठ नहीं पाएगा, सुरबद्धता नहीं हो पाएगी।
प्रेमी ने प्रेमिका से कहा, प्रिये, जब मैं तुम्हें देखता हूं, तब मेरा दिल तेजी से धड़कने लगता है। दिमाग संज्ञा-शून्य हो जाता है। गला सूख जाता है।
तुम प्रेम प्रदर्शित कर रहे हो या अपनी बीमारियां बता रहे हो? उसे रोकते हुए प्रेमिका ने कहा।
ध्यान रखना, जब तुम किसी स्त्री से बात कर रहे हो और वह स्त्री अगर तुम्हारी पत्नी है तो बहुत ध्यान रखना। एक-एक शब्द का ध्यान रखना। अगर किसी पुरुष से तुम बात कर रही हो और वह पुरुष तुम्हारा पति है, तो एक-एक शब्द का ध्यान रखना। क्योंकि दो जगत, दोबिल्कुल विपरीत जगत करीब खड़े हैं; नासमझी सुगमता से हो जाएगी, समझदारी बहुत मुश्किल है। और इसलिए पति-पत्नी झगड़ते ही रहते हैं, झगड़ते ही रहते हैं। झगड़ा ही जैसे उनका संबंध हो जाता है! और अगर झगड़ा कभी बंद भी होता है तो वह तभी बंद होता है जब दोनों थक चुके, ऊब चुके--यानी अब उन्होंने प्रेम की आशा भी छोड़ दी।
मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि पति-पत्नी अगर झगड़ रहे हैं तो उसका अर्थ
है कि अभी उनको आशा है कि कोई रास्ता निकल आएगा। और अगर उन्होंने झगड़ा बंद कर दिया तो उसका मतलब यह है कि अब उन्होंने आशा भी छोड़ दी; रास्ता निकलने वाला नहीं, अब स्वीकार ही कर लेना ठीक है; जो है और जैसा है, ठीक है।
फिल्म चल रही थी। अचानक पर्दे पर दहाड़ता हुआ एक शेर प्रकट हुआ, तो एक सज्जन बौखला कर अपनी सीट से उठ खड़े हुए। साथ बैठे उनके मित्र ने कहा, क्या आप शेर से डर गए?
जी नहीं, उन सज्जन ने कहा, बीबी की याद आ गई। अब मुझे घर चलना चाहिए, काफी देर हो गई है।
ऐसी ही दशा है। और ये व्यंग्य और ये लतीफे झूठे नहीं हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर से भाग गया। पत्नी ने इतना सताया! कहीं जगह न मिली; सराय बंद, होटलों में जगह नहीं। सर्कस ठहरा हुआ था गांव में, तो सोचा कि जाकर सर्कस में ही सो जाऊं। वहां भी कोई जगह न मिली, सिर्फ शेर के पिंजड़े का दरवाजा खुला छूट गया था। सो वह अंदर होकर, दरवाजा बंद करके, शेर की पीठ का तकिया बना कर सो रहा।
सुबह उसकी पत्नी निकली उसे खोजने। थोड़ी रिमझिम बूंदाबांदी हो रही थी,
सो छाता लगा कर गई। सारे गांव में चक्कर लगाया, कहीं न मिला। पुराने अड्डे सब देख डाले, कहीं न मिला। अब सिर्फ सर्कस बचा था तो वह सर्कस में गई, वहां देखा तो वह घर्राटे ले रहा है। तो उसने छाता सींकचों के भीतर से डाल कर उसको हुद्दा दिया और कहा कि अरे कायर, शर्म नहीं आती यहां सो रहा है!
वह सिंह के साथ सोने को राजी और पत्नी उसको कायर कह रही है कि अरे कायर, अरे भगोड़े! घर चल तो तुझे मजा चखाऊं! घर जाने में डर रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी काफी मोटी और काली, जब कि वह स्वयं दुबले- पतले! उनमें किसी बात को लेकर अक्सर झगड़ा हुआ करता। ऐसे ही जब एक बार झगड़ा हुआ और काफी शोर-शराबा हुआ तो उनके एक मित्र उनकी सहायता के लिए आ पहुंचे। वह उन्हें समझाने की खातिर बोले, नसरुद्दीन, पति-पत्नी तो एक गाड़ी के दो पहिए होते हैं। गाड़ी सही ढंग से चलती रहे, इसलिए चाहिए कि दोनों पहियों

में लड़ाई न हो। नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक कहते भाईजान! मगर अगर गाड़ी का एक पहिया ट्रक का और दूसरा साइकिल का हो, तो गाड़ी कैसे चलेगी?
कोई गाड़ी चलती नहीं मालूम पड़ रही, सब गाड़ियां खड़ी हैं। गाड़ी शब्द का अर्थ सोचते हो? गाड़ी का मतलब, जो गड़ी है। बड़ा मजेदार शब्द है! क्यों हम चलती हुई चीज को गाड़ी कहते हैं? पता नहीं किसने यह गहरी सूझ खोजी! शायद पति-पत्नी की गाड़ी को देख कर ही यह ख्याल आया होगा। चलती तो है ही नहीं, गड़ी है बिल्कुल; इंच भर नहीं चलती, जहां के तहां गड़ी है। मगर कहते हैं गाड़ी। और यह भी कहते हैं कि चलती का नाम गाड़ी!
अजित, तुम्हारी आकांक्षा तो अशुभ नहीं, अस्वाभाविक भी नहीं, पर पत्नी
के साथ नाता अस्वाभाविक है। इसलिए मैं तुमसे कहूंगा, तुम यह फिकर ही छोड़ दो। क्योंकि तुम्हारी फिकर, उसे लाने की चेष्टा, उसे मुझसे जोड़ने का तुम्हारा उपाय, बाधा ही बनेगा। वह इसी को मुद्दा बना लेगी अपने अहंकार की घोषणा का। यह ही संघर्ष का कारण हो जाएगा। तुम यह बात ही छोड़ दो। तुम बिल्कुल भूल ही जाओ। इस बात को ही बीच में न आने दो। मेरा नाम भी पत्नी के सामने मत लेना।
अजित दूसरे तरह के उपाय करते रहते हैं। वह कहीं टेप लगा देते हैं, कि पत्नी सुने, कुछ तो उसको अकल आए। मगर इस तरह कोई पति कभी किसी पत्नी को अकल नहीं ला पाया है; और न कोई पत्नी कभी किसी पति को अकल ला पाई है। यहां पत्नियां भी हैं, उनके भी साथ वही दिक्कत है--पति आने को राजी नहीं। पति, और पत्नी के पीछे आए! उसके अहंकार को चोट लगती है। पति, और यह मान ले कि पत्नी ने खोज लिया सदगुरु! असंभव। और वही स्थिति पत्नियों की भी है। सभी पत्नियां समझती हैं कि उनके पतियों से ज्यादा बुद्धू और कोई भी नहीं। कहें न कहें, लेकिन भीतर उनकी समझ यही है, अंतरतम समझ यही है।
इसलिए बेहतर यही है कि अगर कोई पति यहां आ गया है तो पत्नी को लाने की जरा भी चेष्टा न करे। आकांक्षा उठेगी; पी जाना उस आकांक्षा को। मत चेष्टा करना। तो शायद पत्नी उत्सुक हो जाए। तुम बात ही मत उठाना। तुम्हारी तरफ से कोई प्रयास न हो तो एक संभावना है उसके आने की। तुम्हारा प्रयास, और उसका विरोध निश्चित हो जाएगा। जीवन बड़ा अटपटा है! यहां निषेध निमंत्रण बन जाते हैं।
मेरे एक मित्र हैं, वकील हैं। वकील हैं तो वकील के ढंग से सोचते हैं। नया मकान बनाया उन्होंने, तो उनकी दीवाल के आस-पास बैठ कर कुछ लोग पेशाब कर जाते। तो उन्होंने दीवाल पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखवा दिया कि यहां पेशाब करना मना है। तब से तो बड़ा उपद्रव हो गया। वहां से जो निकले वही पेशाब करे। वे मुझसे कहने लगे, यह भी हद हो गई बात! पहले कुछ लोग करते थे, और अब तो यहां से जो निकलता है वह छोड़ता ही नहीं।
मैंने कहा, वह जो तुमने लिखवा रखा है इतने बड़े-बड़े अक्षरों में, उसको देख कर किसी को भी याद आ जाती होगी कि भाई कर ही लो। और चूंकि दीवाल पर तुमने लिख रखा है और नीचे कई जगह पहले पेशाब किए हुए लोगों के निशान बने हैं, तो वह सोचता होगा कि यह मामला क्या है, स्थान करने योग्य है। तुम यह तख्ती मिटा दो।
तो उन्होंने कहा, फिर क्या करूं? मैंने कहा, तुम यहां लिख दो कि यहां
से जो बिना पेशाब किए जाएगा वह अपने असली बाप का बेटा नहीं है। उन्होंने कहा, और मारे गए! लोग मेरे घर में घुस कर करने लगेंगे। मैंने कहा कि तुम लिखो तो--सावधान, यहां पेशाब करना ही पड़ेगा!
और उन्होंने लिखा। और जो उसको पढ़े कि सावधान, यहां पेशाब करना ही पड़ेगा! लोग ऐसे ही गुजरने लगे, बिना पेशाब किए। ऐसे कोई करवा सकता है! यह किसकी आज्ञा! क्या समझ रखा है इस वकील के बच्चे ने! हम कोई इसकी आज्ञा मानेंगे!
निषेध निमंत्रण बन जाता है। तुम देखते हो, रास्ते से अगर कोई बुरका ओढ़े हुए स्त्री निकल जाए तो सब झांक-झांक कर देखने लगते हैं। चाहे बुरके के भीतर स्त्री हो या न हो, कोई पाकिस्तानी जासूस हो तो भी चलेगा, मगर लोग झांक-झांक कर देखने लगते हैं। छिपी हुई चीज को उघाड़ने का मन हो जाता है।

अजित, तुम मुझे छिपा लो। तुम बिल्कुल मेरी बात ही मत करो। तुम्हारी पत्नी बात भी छेड़े यहां-वहां से--छेड़ेगी वह--तुम टाल ही जाना। तुम दूसरी बातें करना, मेरी बात ही मत करना। तो शायद उत्सुकता जगे। तो उसे लगे कि शायद हीरा हाथ लग गया। अब छिपा रहे हो, मुझे बताना नहीं चाहते, मुझे भागीदार नहीं बनाना चाहते!
जिंदगी बड़ी उलटी है। और इस जिंदगी के उलटे नियमों को समझ ले जो वही जीवन को रूपांतरित करने में सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं।

तीसरा प्रश्नः भगवान, जीवन व्यर्थ क्यों मालूम होता है?

जीवन तो कोरा कागज है; जो लिखोगे वही पढ़ोगे। गालियां लिख सकते हो, गीत लिख सकते हो। और गालियां भी उसी वर्णमाला से बनती हैं जिससे गीत बनते हैं; वर्णमाला तोनिरपेक्ष है, निष्पक्ष है। जिस कागज पर लिखते हो वह भी निरपेक्ष, निष्पक्ष। जिस कलम से लिखते हो, वह भी निरपेक्ष, वह भी निष्पक्ष। सब दांव तुम्हारे हाथ में है। तुमने इस ढंग से जीया होगा, इसलिए व्यर्थ मालूम होता है। तुम्हारे जीने में भूल है। और जीवन को गाली मत देना।
यह बड़े मजे की बात है! लोग कहते हैं, जीवन व्यर्थ है। यह नहीं कहते कि हमारे जीने का ढंग व्यर्थ है! और तुम्हारे तथाकथित साधु-संत, महात्मा भी तुमको यही समझाते हैं--जीवन व्यर्थ है।
मैं तुमसे कुछ और कहना चाहता हूं। मैं कहना चाहता हूं: जीवन न तो सार्थक है, न व्यर्थ; जीवन तो निष्पक्ष है; जीवन तो कोरा आकाश है। उठाओ तूलिका, भरो रंग। चाहो तो इंद्रधनुष बनाओ और चाहो तो कीचड़ मचा दो। कुशलता चाहिए। अगर जीवन व्यर्थ है तो उसका अर्थ यह है कि तुमने जीवन को जीने की कला नहीं सीखी; उसका अर्थ है कि तुम यह मान कर चले थे कि कोई जीवन में रेडीमेड अर्थ होगा।
जीवन कोई रेडीमेड कपड़े नहीं है, कोई सैमसन की दुकान नहीं है, कि गए और तैयार कपड़े मिल गए। जिंदगी से कपड़े बनाने पड़ते हैं। फिर जो बनाओगे वही पहनना पड़ेगा, वही ओढ़ना पड़ेगा। और कोई दूसरा तुम्हारी जिंदगी में कुछ भी नहीं कर सकता। कोई दूसरा तुम्हारे कपड़े नहीं बना सकता। जिंदगी के मामले में तो अपने कपड़े खुद ही बनाने होते हैं।
जीवन व्यर्थ है, ऐसा मत कहो। ऐसा कहो कि मेरे जीने के ढंग में क्या कहीं कोई भूल थी? क्या कहीं कोई भूल है कि मेरा जीवन व्यर्थ हुआ जा रहा है? बुद्ध का जीवन तो व्यर्थ नहीं। जीसस का जीवन तो व्यर्थ नहीं। मोहम्मद
का जीवन तो व्यर्थ नहीं। कैसा अर्थ खिला! कैसे फूल! कैसी सुवास उड़ी! कैसे गीत जगे! कैसी मृदंग बजी! लेकिन कुछ लोग हैं कि जिनके जीवन में सिर्फ दुर्गंध है। और मजा ऐसा है कि जो तुम्हारे जीवन में दुर्गंध बन रही है वही सुगंध बन सकती है--जरा सी कला, जीने की कला!
मैं धर्म को जीने की कला कहता हूं। धर्म कोई पूजा-पाठ नहीं है। धर्म
का मंदिर और मस्जिद से कुछ लेना-देना नहीं है। धर्म तो है जीवन की कला। जीवन को ऐसे जीया जा सकता है--ऐसे कलात्मक ढंग से, ऐसे प्रसादपूर्ण ढंग से--कि तुम्हारे जीवन में हजार पंखुरियों वाला कमल खिले, कि तुम्हारे जीवन में समाधि लगे, कि तुम्हारे जीवन में भी ऐसे गीत उठें जैसे कोयल के, कि तुम्हारे भीतर भी हृदय में ऐसी-ऐसी भाव-भंगिमाएं जगें, जो भाव-भंगिमाएं प्रकट हो जाएं तो उपनिषद बनते हैं; जो भाव-भंगिमाएं अगर प्रकट हो जाएं तो मीरा का नृत्य पैदा होता है, चैतन्य के भजन बनते हैं!
इसी पृथ्वी पर, इसी देह में, ऐसी ही हड्डी-मांस-मज्जा के लोग ऐसा-ऐसा सार्थक जीवन जी गए--और सतीश तुम पूछते हो, जीवन व्यर्थ क्यों मालूम होता है?
मौसम आ कर
झूठे रिश्ते-नाते जोड़ गया।
अब गुलाब की पंखुड़ियों सा

बिखरा यहां-वहां
इंद्रधनुष की तरह उजाला
टूटा जहांत्तहां
हम को एक अंधेरे
गलियारे में छोड़ गया।
कालिख पुती हो गई सारी
गुड़हल सी शामें
खुली आंख से देखा तो
हम थे बबूल थामे
यह अनुभव किश्तों में
फिर से हम को तोड़ गया!
जरा आंख खोल कर देखो, कहीं अंधेरे में आंख बंद किए बबूल को तो नहीं पकड़ लिया है? और सोचते हो इसमें गुलाब के फूल लगेंगे! फिर कांटे छिदें तो कसूर किसका है? कहीं बबूल की छाया में तो नहीं बैठे हो? बबूल की कहीं कोई छाया होती है? फिर धूप घनी होगी, लहू पसीना बन कर बहेगा, तो यह मत कहना कि दुनिया की गलती है। यहीं वट-वृक्ष भी थे, जिनके नीचे बहुत छाया थी। मगर तुमने खोजे नहीं। यहीं झरने भी थे, जहां प्यास तृप्त होती। आत्मा की प्यास तृप्त होती! मगर तुम मरुस्थलों में भटकते रहे। मरुस्थलों में भी छिपे हैं मरूद्यान, जरा खोजो! तुम्हारे भीतर ही सारी खोज होनी है।
जो व्यक्ति ध्यान-रहित जीएगा उसका जीवन व्यर्थ होगा, असार होगा। जो व्यक्ति ध्यान-सहित जीएगा उसका जीवन सार्थक होगा। जीवन न तो व्यर्थ होता न सार्थक, ध्यान पर सब निर्भर है। ध्यान है राज। ध्यान है कुंजी।
लेकिन सदियों-सदियों से यही शिक्षा दी गई है कि जैसे जीवन में कोई बना बनाया अर्थ रखा है, जो तुम्हें अपने आप मिल जाएगा।
अपने आप नहीं मिलेगा। बस ढो लोगे बोझ को और मर जाओगे एक दिन। कब्र मिलेगी, अर्थ नहीं मिलेगा। अर्थ तो बड़ी जागरूकता से मिलता है। अर्थ तो निर्मित करना होता है, सृजन करना होता है। अर्थ के लिए तो स्रष्टा होना होता है।
सतीश, लेकिन तुम्हें जो लोग शिक्षा दे रहे हैं, जिन पंडित-पुरोहितों ने, महात्माओं ने तुम्हें समझाया है, उनको खुद भी नहीं मिला था अर्थ, सो वे कहते हैं जीवन व्यर्थ है। और तुम्हें भी यह बात जंच जाती है, क्योंकि तुम्हें भी नहीं मिला है। और तुम्हें बात बिल्कुल प्रामाणिक मालूम होने लगती है, क्योंकि तुम्हारे आस-पास जो लोग हैं उन्हें भी नहीं मिला है। लेकिन वे सभी बैठे रास्ता देख रहे हैं कि गिर पड़ेगा अर्थ कहीं से। ऐसे नहीं होगा।
जैसे मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है, इंच-इंच तोड़ता है पत्थर को, सम्हाल कर, सम्हल कर। बड़ी मुश्किल से मूर्ति निर्मित हो पाती है। और जितनी महान कृति निर्मित करनी हो उतनी मुश्किल हो जाती है।
जीवन को निखारने की कला सीखो। कोई गीता पढ़ रहा है, कोई रामायण रट रहा है, कोई कुरान कंठस्थ किए बैठा है--और सोच रहा है जीवन में अर्थ नहीं मिल रहा है!
अरे पागलो, कुरान कंठस्थ करने से नहीं कुछ होगा; कुरान जन्माना होगा! तुम जब परमात्मा से गर्भित होओगे, जब तुम्हारे गर्भ में परमात्मा पैदा होगा, जब तुम परमात्मा को अपने गर्भ में ढोओगे वर्षों तक, तब तुम्हारे भीतर कुरान पैदा होगा; तब तुम्हारे शब्दों में आयतें उतरेंगी; तब तुम्हारा शब्द-शब्द सुगंध लाएगा आकाश की; तब तुम बन जाओगे सेतु पृथ्वी और आकाश के बीच।
लेकिन हम बड़ी सस्ती शिक्षाओं के आधार पर जी रहे हैं। जिनके पास कुछ नहीं है उनसे हम शिक्षाएं ले रहे हैं। तुम जरा सोचो, तुम किससे शिक्षाएं ले रहे हो? बैठ गए कोई धूनी रमा कर, लीप-पोत ली राख ऊपर, और तुम चले शिक्षा लेने कि बाबा जी गांव में आए हैं! और तुम्हारे आधार क्या हैं इनको स्वीकार करने के? क्योंकि बाबा जी धूनी रमाए हैं, राख लपेटे हुए हैं, जटा बढ़ाए हैं; दिन में एक बार भोजन करते हैं; कि सिर्फ गऊ का दूध ही पीते हैं, दुग्धाहारी

हैं; या कि कपड़ा नहीं पहनते हैं, नग्न बैठे हैं; धूप-धाप आती है, कोई चिंता नहीं, बड़े त्यागी हैं!
मगर इन सब बातों से जीवन की कला का कोई भी संबंध नहीं। यह तो ऐसा ही समझो कि एक आदमी राख लपेट कर बैठ जाए और तुम कहो कि यह देखो, यह आदमी बड़ा चित्रकार है! क्यों? क्योंकि देखो राख लपेटे बैठा है! यह आदमी बड़ा संगीतज्ञ है! क्यों? क्योंकि देखो धूनी रमाए बैठा है!
धूनी रमाने से संगीतज्ञ का क्या लेना-देना? संगीतज्ञ धूनी रमाएगा क्यों? कोई धूनी रमाने से वीणा ज्यादा मधुर बजेगी? यह आदमी उपवास करता है, इसलिए बहुत बड़ा कवि है--ऐसा तो तुम कभी नहीं कहते। और उपवासा आदमी अगर कविता भी करेगा तो उसकी कविता में होगा क्या? भूख होगी, रोटी होगी, साग-सब्जी होगी, चटनी होगी, इस तरह की चीजें होंगी।
जर्मनी का प्रसिद्ध कवि हेन, जंगल में भटक गया एक बार, तीन दिन तक भूखा रहना पड़ा। फिर पूर्णिमा की रात को जब चांद निकला, उसने ऊपर देखा, बहुत हैरान हुआ। जिंदगी भर उसने चांद पर कविताएं लिखी थीं; उस दिन बहुत चौंका, क्योंकि सारी कविताएं गलत हो गईं। अब तक वह चांद में देखता था सुंदर-सुंदर स्त्रियों के चेहरे, रम्य चेहरे, प्रेयसियों के चेहरे। आज चांद में क्या दिखाई पड़ा? एक डबल रोटी आकाश में तैर रही है! उसने आंखें मीड़ कर फिर से देखा कि मुझे कुछ भूल तो नहीं हो रही, डबल रोटी! मगर भूखे आदमी को अगर तीन दिन के बाद चांद में डबल रोटी न दिखाई पड़े तो क्या दिखाई पड़े?
तुम कवि की इसलिए तो प्रशंसा नहीं करते कि यह भूखा है, उपवासा रहता है, लंगोटी पहनता है, जंगल में रहता है, घर-द्वार छोड़ दिया--इसलिए महाकवि है! नहीं, तुम कवि को उसकी कविता से आंकते हो। धर्म भी व्यक्ति के आनंद से मापा जाना चाहिए, और किसी आधार पर नहीं; उसके जीवन की अर्थवत्ता से मापा जाना चाहिए, और किसी आधार पर नहीं।
मगर तुम उन लोगों से शिक्षा ले रहे हो, जिनके जीवन में न कोई अर्थ है, न आनंद है। अब मैं जानता हूं तुम्हारे सारे महात्माओं को। करीब-करीब सभी महात्माओं से मेरा मिलना हुआ है। जैन महात्मा और हिंदू महात्मा और मुसलमान फकीर--सब मुर्दों की तरह; जीवन में न कोई उल्लास है। हो भी कैसे उल्लास? लेकिन ये सूखे-साखे लोग, आत्मघाती लोग, रुग्ण-चित्त लोग, स्वयं को दुख देने में रस लेने वाले लोग--इनसे तुम शिक्षाएं ले रहे हो? इनसे तुम जीवन में अर्थ खोजने चले हो?
सतीश, ऐसे अर्थ नहीं मिलेगा। पहले यह तो पूछ लो कि इन्हें मिला है अर्थ? जरा इनको गौर से तो देखो, इनकी आंखों में तोझांको! वहां दीये जल रहे हैं?
ग्राहक ने दुकानदार से पूछा, गेहूं का क्या भाव है? गेहूं किस भाव बेच रहे हैं आप?
दुकानदार ने उत्तर दिया, एक सौ चालीस रुपये क्विंटल।
ग्राहक बोला, लेकिन सामने वाला दुकानदार तो एक सौ पच्चीस रुपये क्विंटल में बेच रहा है।
तो उस दुकानदार ने चिढ़ कर कहा, तो जाओ, वहीं से ले लो! यहां मेरा सिर क्यों खाने आए?
ग्राहक बोला, लेकिन उसके पास आज हैं नहीं।
तब दुकानदार ने समझाया कि जिस दिन मेरे पास नहीं होते, मैं सौ रुपये क्विंटल बेचता हूं।
जरा पूछ तो लिया करें कि उनके पास हैं भी? जो तुम खरीदने चले हो, जिन हीरों की तुम्हें तलाश है, वे उनके पास हैं भी?
नहीं, लेकिन तुमने तो न मालूम कैसी-कैसी गलत आधारशिलाएं बना रखी हैं! तुमने अब तक धर्म को गलत परिभाषाएं दी हैं। और उसके कारण सारा जगत परेशान हो रहा है। कोई अपनी आंखें फोड़ लेता है, इस डर से कि अगर आंखें रहेंगी तो रूप दिखाई पड़ेगा, रूप दिखाई पड़ेगा तो रूप की वासना पैदा होगी।
आंखें फोड़ने के पहले कुछ दिन पहले आंख पर पट्टी बांध कर बैठ कर तो देख लेना था कि आंख पर पट्टी बांधे रहो तब भी वासना पैदा होती है। असल में और ज्यादा पैदा होती है। और बंद आंखों में स्त्रियां जितनी सुंदर दिखाई पड़ती

हैं उतनी खुली आंखों से कभी दिखाई नहीं पड़तीं। दूर के ढोल सुहावने होते हैं! और जो स्त्रियों के संबंध में सच है वही पुरुषों के संबंध में सच है। लेकिन किसी ने अगर आंखें फोड़ लीं तो हम कहते हैं: अहा, यह रहा महात्मा!
अब इससे तुम शिक्षा लोगे, ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी आंखें फुड़वाएगा,
और क्या करेगा! कोई ने अपना शरीर सुखा लिया। तुम इससे शिक्षा लोगे, तुम्हें सुखाएगा, और क्या करेगा? और अगर न सुखा पाएगा तो कम से कम तुम्हारे मन में ग्लानि और अपराध का भाव तो पैदा कर ही देगा। भोजन करने बैठोगे तब ऐसा लगेगा, पाप कर रहे हो।
अगर जैन मुनि की बातें सुनीं तो भोजन करते समय लगेगा कि पाप कर रहे हो। क्योंकि जैन मुनि सिखा ही यह रहा है कि उपवास, उपवास, उपवास। अगर जैन मुनि की बातें सुनीं तब तो दतौन करना भी पाप मालूम पड़ेगा, क्योंकि जैन मुनि दतौन नहीं करता। दांतों का क्या सजाना है! इस देह में क्या रखा है! यह देह तो कूड़ा-कबाड़ है, मल-मूत्र है, इसमें है ही क्या!
जैन मुनि स्नान नहीं करता। अगर जैन मुनि के पास ज्यादा दिन रहे, स्नान करोगे, लगेगा कि बड़ा पाप कर रहे हैं, नरक का रास्ता खोल रहे हैं! नहा-नहा कर नरक जाओगे। और लक्स टायलेट साबुन वगैरह से तोबिल्कुल दूर रहना, नहीं तो नरक बिल्कुल सुनिश्चित है। लक्स टायलेट साबुन लगाई कि फिसले नरक की तरफ! जितनी अच्छी साबुन उतने जल्दी फिसले!
तुम किस तरह के लोगों से शिक्षा ले रहे हो, सतीश?
जिन्हें जीवन में अर्थ मिला नहीं उनसे शिक्षा ले रहे हो। इससे तो बेहतर हो वृक्षों से पूछो। इससे तो बेहतर हो फूलों से पूछो। इससे तो बेहतर हो पहाड़ों, चांदत्तारों से पूछो। कुछ चमक तो है, कुछ रौनक तो है, कुछ गंध तो है, कुछ गीत तो है! शायद वहां से तुम्हें ज्यादा ठीक-ठीक संदेश मिल जाएगा परमात्मा का। परमात्मा वहां अभी ज्यादा जीवित है; तुम्हारे महात्माओं में तोबिल्कुल मर गया है।
एक सज्जन मुझसे पूछते थे, क्या आप मानते हैं परमात्मा सब जगह है?
मैंने कहा, सब जगह है, केवल महात्माओं को छोड़ कर। क्योंकि महात्मा उसको भीतर ही नहीं घुसने देते। महात्मा इतने सिकुड़ गए हैं कि जगह ही नहीं। मैंने एक कहानी सुनी है। एक नीग्रो ने स्वप्न देखा कि जीसस ने उसे पुकारा है। लेकिन उस गांव में जो चर्च था वह सफेद चमड़ी वालों का था। वे घुसने नहीं देंगे अंदर। यह तो बड़ी अजीब दुनिया है! यहां चमड़ियों से तय होता है, रंगों से तय होता है! और ऐसा मत सोचना कि ऐसा अमरीका में, यूरोप में ही हो रहा है; हमने भी अपने देश में लोगों को वर्णों में बांटा है। वर्ण का अर्थ होता है रंग। ऐसा लगता है, काले-कलूटे लोगों को हमने शूद्रों में डाल दिया होगा। वे जो शूद्र थे वे इस देश के नीग्रो थे। हमारे शास्त्रों में जो राक्षसों की कथाएं हैं, वे कुछ नहीं हैं, वे सिर्फ काले रंग के लोगों की कथाएं हैं, दक्षिण के लोगों की कथाएं हैं। इसलिए दक्षिण में अगर रामायण का विरोध है तो कुछ आश्चर्य नहीं; विरोध होना ही चाहिए। क्योंकि दक्षिण के संबंध में रामायण में जरूर भद्दी बातें हैं।
उस नीग्रो को डर तो बहुत लगा कि जाने भी देंगे सफेद चमड़ी के लोग अंदर? लेकिन फिर भी गया। उसने सुन रखा था कि पादरी बहुत सहृदय है। कम से कम पादरी दिखलाते तो हैं कि सहृदय हैं, होते तो नहीं। क्योंकि सहृदय होकर पादरी होना असंभव है। वे बातें दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं। कुछ बातें हैं जो साथ-साथ चलती ही नहीं। लेकिन इस आशा में गया नीग्रो, गया रात जब कोई न हो चर्च में। दरवाजा खटखटाया, पादरी बाहर आया। अब पादरी को बड़ा संकोच हुआ। नीग्रो ने कहा, मुझे स्वप्न में जीसस ने पुकारा। अब यहां गांव में और तो कोई जीसस का मंदिर नहीं है, मुझे भीतर आने दें। मुझे पूजा करने दें, मुझे प्रार्थना करने दें।
अब पादरी क्या कहे! ऊपर से तो सहृदयता दिखानी ही है। मुस्कुराया और कहा कि बहुत अच्छा हुआ जीसस ने दर्शन दिया। लेकिन इस चर्च में प्रवेश के कुछ नियम हैं। तीन महीने शुद्ध जीवन जीओ; न क्रोध करना, न कामवासना, न लोभ; फिर आना।

यह शर्त पहली बार ही लगाई गई। सफेद चमड़ी वाले लोग जो आते थे, उनके लिए
यह शर्त नहीं थी। नहीं तो एक नहीं आ सकता था वहां। आने की तो बात ही क्या, पादरी को खुद ही बाहर रहना पड़ता। मगर पादरी ने यह आशा रखी कि न यह पूरी कर पाएगा... कौन पूरा कर पाया है! न काम, न लोभ, न क्रोध--तीन महीने! एकाध दफे भी हो जाएगा, बस खत्म; न शर्त होगी पूरी, न यह दुबारा आएगा, न झंझट उठेगी; अपनी सहृदयता, अपना सदभाव भी बचा और अपना धर्म भी बचा। और यह काली चमड़ी के मूरख से छुटकारा भी मिला, इसको भी कहां जीसस सपने में दिखाई पड़े! जीसस को भी क्या सूझी! इतने सफेद चमड़ी वाले लोग, इनको छोड़ कर इसके सपने में गए।
महीना बीतने के करीब हुआ, एक सांझ पादरी द्वार पर खड़ा था चर्च के और देखा कि वह नीग्रो आ रहा है। पादरी ने कहा, मारे गए। उस नीग्रो को देख कर ही उसे लगा कि उसने शर्तें पूरी कर ली हैं। उसके चेहरे पर एक आभा! उसके चलने में एक प्रसाद! उसका करीब आना ही इतना शांतिपूर्ण कि लगा पादरी को कि अब झंझट हुई! दिखता है इसने शर्तें पूरी कर लीं। अब मैं मुसीबत में पडूंगा। लेकिन वह नीग्रो आकर कोई सौ कदम दूर रुक गया रास्ते पर, खिलखिला कर हंसा और लौट गया। पादरी को बड़ी हैरानी हुई कि यह क्या मामला हुआ! बड़ी जिज्ञासा उठी, भागा, नीग्रो को पकड़ा कि भई सुन तो! आना तेरा, फिर चौरस्ते पर खड़े होकर मुझे देखना, फिर खिलखिला कर हंसना, यह क्या मामला है? क्या मजाक? और फिर लौट जाना! बात क्या है?
उसने कहा कि कल रात जीसस मुझे फिर सपने में दिखाई पड़े। और उन्होंने कहा, सुन, नाहक उस चर्च में जाने की कोशिश मत कर, वे तुझे घुसने नहीं देंगे। तू शर्तें कितनी ही पूरी कर, वे नयी शर्तें लगा देंगे। शर्तों में से कुछ और शर्तें निकाल लेंगे। वे तुझे घुसने नहीं देंगे। तो मैंने पूछा कि लेकिन मैं जब सब शर्तें पूरी कर दूंगा, फिर क्यों नहीं घुसने देंगे? उन्होंने कहा, अब तू मानता ही नहीं मेरी तो मैं तुझे सच्ची बात बता दूं। वे मुझे नहीं घुसने देते, तुझे क्या खाक घुसने देंगे! मैं कितने दिनों से कोशिश कर रहा हूं कि भई मुझे भीतर आने दो, मेरा ही चर्च! मगर वे मुझे भीतर नहीं आने देते।
जीसस के नाम पर समर्पित चर्च में जीसस नहीं हैं; और मोहम्मद के नाम पर समर्पित मस्जिद में मोहम्मद नहीं हैं; और कृष्ण के मंदिर में कोई और भला मिल जाए, कृष्ण नहीं मिलेंगे।
तुम्हारे महात्माओं को छोड़ कर और सब जगह परमात्मा है, क्योंकि तुम्हारे महात्मा उसे भीतर ही नहीं घुसने देते। तुम्हारे महात्मा तो ऐसे अकड़ कर बैठे हैं कि कोई घुसना भी चाहे तो कैसे घुसे! तुम्हारे महात्माओं का परमात्मा से कोई संबंध नहीं हो पाता, उनके जीवन में कोई अर्थ नहीं है। और उनसे ही तुम सीखोगे। कुछ चीजें हैं जो साथ-साथ नहीं हो सकतीं--महात्मा और परमात्मा साथ-साथ नहीं हो सकते। परमात्मा को पाने के लिए तोबिल्कुल मिट जाना होता है; कहां के महात्मा, कहां के साधु, कहां के संत, सब समाप्त हो जाता है।
सीखो जीवन को अर्थ देना। जीवन को, उठाओ तूलिका और रंगो। इसीलिए मेरा
यह जो बुद्ध-क्षेत्र है, यहां गीत है, गायन है, नृत्य है, मस्ती है। क्योंकि हम यहां जीवन की कला, जीवन में चार चांद जोड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। यहां तथाकथित धर्म नहीं सिखाया जा रहा है; यहां धर्म की एक नयी अवधारणा हो रही है, एक नया अवतरण हो रहा है। धर्म--जो उत्सवपूर्ण हो!
मेरे संन्यासी को मैं नाचता-गाता हुआ व्यक्तित्व देना चाहता हूं; उदास नहीं, उदासीन नहीं; उल्लासपूर्ण, उमंगपूर्ण, उत्साहपूर्ण, जीवंत! हंसते हुए चलना है उसके द्वार की तरफ, रोते हुए क्या! और अगर कभी रोओ भी तो तुम्हारे आंसू हंसते हुए होने चाहिए, तो ही स्वीकार हो सकेंगे।
जीवन व्यर्थ मालूम होता है, क्योंकि तुमने उसे अब तक, सतीश, सार्थक बनाने की कोई चेष्टा नहीं की है। जीवन व्यर्थ नहीं है, सिर्फ तुम्हें सजग होना है, तुम्हें ध्यानपूर्ण होना है, तुम्हें प्रार्थनापूर्ण होना है-- और जीवन में अर्थ पर अर्थ प्रकट होते जाते हैं। अर्थ पर अर्थ, जैसे शिखरों पर शिखर, अंतहीन शिखर प्रकट होते हैं। जीवन अपूर्व है! मगर तुम्हारी समझ की गहराई पर सब निर्भर करेगा।

एक डाक्टर ने, जो एक छोटे से बच्चे की जांच कर रहा था, उससे पूछा, बेटे, तुम्हें नाक-कान से कोई शिकायत तो नहीं?
उस बच्चे ने कहा, जी है! वे कमीज उतारते समय बीच में आते हैं।
बच्चे की समझ बच्चे की ही समझ होगी। तुम्हारी समझ बचकानी है, सतीश। अमरीका के एक व्यक्ति ने शादी के केवल एक सप्ताह बाद तलाक की दरखास्त
दी और कारण लिखा: जिस समय मैंने शादी की, मेरे चश्मे का नंबर गलत था। सतीश, तुम्हारे चश्मे का नंबर गलत है। तुम चश्मे का नंबर बदलो। अच्छा
तो यह हो कि तुम चश्मा उतार कर ही रख दो। तुम खुली, दृष्टि-शून्य आंखों से देखो, दर्शन-मुक्त आंखों से देखो, तो तुम्हें बहुत अर्थ दिखाई पड़ेगा। पृथ्वी बड़ी रहस्यपूर्ण है। पृथ्वी पर परमात्मा इतना सघन रूप से उतरा है!

आखिरी प्रश्नः भगवान, मैं आपके संदेश के लिए सभी कुछ समर्पित करने को राजी हूं। जीवन तो जाना ही है, बस इतनी ही आकांक्षा है कि आपके किसी काम आ जाऊं। पात्रता तो कुछ भी नहीं है, पर आपके प्रति अगाध प्रेम अवश्य है।

प्रदीप, वही पात्रता है। प्रेम पात्रता है। और क्या पात्रता? अगर प्रेम अगाध है, तो जो चाहिए वह मौजूद है।
और तुम ठीक कहते हो: जीवन तो जाना ही है। इसलिए जीवन की तरफ कोई पकड़ नहीं होनी चाहिए। और जीवन अगर किसी काम आ जाए तो इससे शुभ और क्या होगा! और जीवन अगर परमात्मा की वाणी को गुंजाने के काम आ जाए तो धन्यभागी हो, बड़भागी हो। अगर तुम बुझ भी जाओ लोगों को जगाने में, अगर तुम राख भी हो जाओ, तो भी फिकर नहीं, तुम्हारी राख भी गीत गुनगुनाएगी। तुम्हारा न होना भी लोगों को जगाने के काम आएगा। तुम्हारी मृत्यु भी लोगों को अमृत की तरफ ले चलेगी।
शुभ आकांक्षा है। ऐसी ही आकांक्षा प्रत्येक संन्यासी की होनी चाहिए।
और कुछ देर में, जब फिर मेरे तन्हा दिल को
फिक्र आ लेगी कि तन्हाई का क्या चारा करे
दर्द आएगा दबे पांव, लिए सुर्ख चिराग
वो जो इक दर्द धड़कता है कहीं दिल से परे
शोलए-दर्द जो पहलू में लपक उठेगा
दिल की दीवार पे हर नक्श दमक उठेगा हल्कए-जुल्फ कहीं, गोशा-ए-रुख्सार कहीं हिज्र का दश्त कहीं, गुलशने-दीदार कहीं लुत्फ की बात कहीं, प्यार का इकरार कहीं दिल से फिर होगी मेरी बात कि ऐ दिल ऐ दिल ये जो महबूब बना है तेरी तन्हाई का
ये तो मेहमां है घड़ी भर का, चला जाएगा इससे कब तेरी मुसीबत का मुदावा होगा मुश्तइल हो के कभी उठेंगे वहशी साये
ये चला जाएगा, रह जाएंगे बाकी साये
रात भर जिन से तेरा खून-खराबा होगा
जंग ठहरी है, कोई खेल नहीं है ऐ दिल दुश्मने-जां हैं सभी, सारे के सारे कातिल ये कड़ी रात भी, ये साये भी, तन्हाई भी दर्द और जंग में कुछ मेल नहीं है ऐ दिल लाओ सुलगाओ कोई जोशो-गजब का अंगार
तैश की आतिशे-जर्रार कहीं से लाओ
वो दहकता हुआ गुलजार कहीं से लाओ जिसमें गर्मी भी है, हरकत भी, तवानाई भी हो न हो अपने कबीले का भी कोई लश्कर मुन्तजिर होगा अंधेरे की फसीलों के उधर इनको शोलों के रजज अपना पता तो देंगे खैर, हम तक न वो पहुंचें भी, सदा तो देंगे

दूरकितनीहैअभीसुबह, बतातो देंगे
अगर गिर भी गए कहीं राह में, मिट भी गए कहीं राह में, तो कोई फिकर नहीं। इनकोशोलोंकेरजजअपनापतातो देंगे
पीछे जो लोग आ रहे हैं, उनको पता तो देंगे कि एक और राह भी है, एक और यात्रा भी है!
खैर, हम तक न वो पहुंचें भी, सदा तो देंगे
दूरकितनीहैअभीसुबह, बतातो देंगे
अगर गिर गए तो मील के पत्थर बन जाओगे। और इससे ज्यादा आनंद की क्या घड़ी हो सकती है कि परमात्मा के मार्ग पर तुम मील के पत्थर बन जाओ!
जीवन तो जाएगा, व्यर्थ भी जा सकता है, अधिक लोगों का व्यर्थ ही जाता है। लेकिन अगर तुमने जीवन को परमात्मा को समर्पित किया; अपने को सब भांति उसके हाथों में छोड़ दिया, और कहा, जो तेरी मर्जी हो कर! तो जरूर तुमसे संदेश उठेगा। तुम्हारीश्वासों से परमात्मा काम लेगा। तुमसे उसकी बांसुरी बजेगी।
लेकिन तुम बिल्कुल मिट जाओ तो ही बांसुरी बज सकती है, अन्यथा तुम बीच में बाधा बन जाओगे। उसके स्वर तुमसे बह सकते हैं अगर तुम न रहो तो। और जहां तुम नहीं हो वहीं परमात्मा है।
प्रदीप, ऐसा ही हो जैसा तुम चाहते हो! ऐसा ही होना चाहिए; न केवल तुम्हारे जीवन में, वरन प्रत्येक संन्यासी के जीवन में। संन्यास परमात्मा का संदेश न बन सके तो संन्यास ही नहीं है।

आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र आठवां प्रवचन

मेरी आंखों में झांको

पहला प्रश्नः ओशो, क्या भारतीय संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति नहीं है?

सुरेंद्र कुमार, मनुष्य का अहंकार बहुत से रूप लेता है। अहंकार के खेल बड़े सूक्ष्म हैं। मैं बड़ा हूं, ऐसा सीधा कहना तो मुश्किल है, परोक्ष रूप से ही कहा जा सकता है। मेरा धर्म बड़ा है, मेरा देश बड़ा है, मेरी संस्कृति बड़ी है, इन सबके पीछे घोषणा एक ही हैः मैं बड़ा हूं!
और तुम सोचते हो, तुम्हीं सोचते हो कि भारतीय संस्कृति श्रेष्ठतम है? चीनी सोचते हैं चीनी संस्कृति श्रेष्ठतम है। और अमरीकी सोचते हैं कि अमरीकी संस्कृति श्रेष्ठतम है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जो ऐसा ही न सोचता हो।
जरा इस पर विचार करो! हिंदू सोचते हैं उनका ही धर्म श्रेष्ठ; वही मुसलमान सोचता, वही जैन, वही बौद्ध, वही ईसाई, पारसी, यहूदी। जब सभी ऐसा सोचते हैं तो इसका संबंध धर्म से नहीं होगा; इसका संबंध किसी और गहरी चीज से होगा जो सभी के भीतर छिपी है। हम हर बात में किसी न किसी रूप में अपने अहंकार को सिद्ध करना चाहते हैं।
जरूर खूबियां हैं। चीनी संस्कृति की अपनी खूबियां हैं; लाओत्सु दिया दुनिया को, च्वांगत्सु दिया, कनफ्यूशियस दिया। भारतीय संस्कृति की अपनी खूबियां हैं; बुद्ध दिए, महावीर दिए, कृष्ण दिए। अरबी संस्कृति की अपनी खूबियां हैं; मोहम्मद दिए, बायजीद, बहाऊद्दीन, जलालुद्दीन... । सारी दुनिया की संस्कृतियों की अपनी-अपनी खूबियां हैं; लेकिन श्रेष्ठ कौन, यह बात ही गलत, यह विचार ही भ्रांत। और इसके भीतर मूल आकांक्षा एक ही है कि सब तरह से सिद्ध हो जाए कि मैं श्रेष्ठ हूं। और जो भी यह सिद्ध करना चाहता है कि मैं श्रेष्ठ हूं उसे कहीं भीतर डर है कि वह श्रेष्ठ है नहीं। नहीं तो सिद्ध क्यों करना चाहेगा? हीनता की ग्रंथि ही श्रेष्ठता का दावा करती है। मनस्विदों से पूछो! वे यही कहेंगे, जितना हीन व्यक्ति हो उतना चारों तरफ श्रेष्ठता का शोरगुल मचाता है। इसीलिए राजनीति में सिर्फ हीनता की ग्रंथि से पीड़ित लोग ही उत्सुक होते हैं--निकृष्टतम। क्योंकि भीतर घाव की तरह हीनता काटती है। इसे किसी तरह फूलों से ढांक देना है; सिंहासनों पर विराजमान होकर इसे भुला देना है।
मैंने एक कहानी सुनी है। पेरिस के विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र
का जो विभागाध्यक्ष था, जो हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट था, उसने एक दिन आकर सुबह-सुबह ही अपनी कक्षा में घोषणा की कि मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठतम व्यक्ति हूं!
विद्यार्थी हंसे। झक्की तो वे उसे मानते ही थे। दर्शनशास्त्र का कोई प्रोफेसर और विश्वविद्यालय में झक्की न माना जाए, ऐसा होता ही नहीं। पहली तो बात, दर्शनशास्त्र में झक्की ही उत्सुक होते हैं, ऐसी धारणा है। फिर कोई साधारण झक्की नहीं होगा, जब विभाग का अध्यक्ष हो गया तो असाधारण झक्की होगा। और आज तो हद हो गई। इतने सीधे-सीधे कोई कहता है? लोग छिपा-छिपा कर कहते हैं! इस आदमी ने सीधे ही आकर घोषणा कर दी कि मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठतम व्यक्ति हूं। विद्यार्थी तो सकते में आ गए। लेकिन एक विद्यार्थी ने हिम्मत खड़े होने की की और पूछा कि आप दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं, आप तो जो भी कहते हैं उसके पीछे जरूर कोई तर्क होगा। आपकी इस घोषणा के पीछे क्या तर्क प्रक्रिया है? समझाएं।
तो उस प्रोफेसर ने कहा, मुझे पता था कोई न कोई पूछेगा कि इसके पीछे तर्क की प्रक्रिया क्या है। तो मैं सारी तैयारी करके आया हूं। उसने अपने झोले से दुनिया का नक्शा निकाला, बोर्ड पर टांगा, और कहा, यह दुनिया का नक्शा है। मैं तुमसे पूछता हूं कि दुनिया में सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है?

स्वभावतः सभी फ्रेंच थे; उन्होंने कहा, फ्रांस! इसमें क्या पूछने की बात है? यह तो स्वतः सिद्ध है।
तो उस प्रोफेसर ने कहा, तो बाकी दुनिया छोड़ दें। फ्रांस सबसे श्रेष्ठ देश है, यह सिद्ध हुआ। तुम सब राजी होते हो, हाथ उठा दो। अब इतना ही मुझे सिद्ध करना है कि मैं फ्रांस में सर्वश्रेष्ठ हूं, तो दुनिया में सर्वश्रेष्ठ हो जाऊंगा। और मैं तुमसे यह पूछता हूं कि फ्रांस में सर्वश्रेष्ठ नगर कौन सा है?
तब जरा विद्यार्थी समझे कि अब मामला गड़बड़ हुआ जा रहा है। स्वभावतः वे सभी पेरिस के निवासी थे, उन्होंने कहा, पेरिस। तो प्रोफेसर ने कहा, अब फ्रांस को भी छोड़ दो, अब रहा पेरिस, अब पेरिस में ही निपटारा करना है। और पेरिस में सर्वाधिक श्रेष्ठतम संस्था कौन सी है?
निश्चित ही विश्वविद्यालय! विद्यापीठ! सरस्वती का मंदिर!
और उसने पूछा कि विश्वविद्यालय में सर्वश्रेष्ठ विषय कौन सा है? दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे तो सभी ने कहा, दर्शनशास्त्र। तो उसने कहा, अब भी कुछ बाकी बचा है सिद्ध करने को? मैं दर्शनशास्त्र का प्रधान अध्यापक हूं। मैं दुनिया का श्रेष्ठतम व्यक्ति हूं।
ऐसे ही तर्क... मेरा शास्त्र श्रेष्ठ! मेरा सिद्धांत श्रेष्ठ! मेरी जाति श्रेष्ठ! मेरा वर्ण श्रेष्ठ! लेकिन सीधी-सीधी बात क्यों नहीं कहते? सीधी कहो तो अच्छा। बीमारी साफ हो तो इलाज हो सके। बीमारी जब छुप-छुप कर आती है तो इलाज करना मुश्किल हो जाता है। बीमारी जब नयी-नयी शक्लें लेकर आती है तो इलाज करना मुश्किल हो जाता है, निदान ही मुश्किल हो जाता है। इसीलिए सदियां हो गईं और निदान नहीं हो पा रहा है। अगर तुम कहो कि मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति हूं, तो पहले तो तुम भी डरोगे, छाती कंपेगी, यह कहें कैसे? और सारे लोग संदेह उठाएंगे। लेकिन तुम कहते हो, भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ! अब जिनके बीच तुम कह रहे हो वे भी भारतीय हैं; वे सब तुम्हारे साथ सिर में सिर हिलाएंगे, कहेंगे कि बिल्कुल ठीक, सत्य ही कहते हैं आप, सत्य वचन महाराज! क्योंकि उनका अहंकार भी इसी में सिद्ध हो रहा है जिसमें तुम्हारा। फिर हिंदुओं के बीच कहो कि हिंदू श्रेष्ठ, स्वभावतः! और फिर ब्राह्मणों के बीच कहो कि ब्राह्मण श्रेष्ठ, तो कोई संदेह भी नहीं उठाएगा। मगर इस तरह छिपे रास्तों से, पीछे के रास्तों से कौन आ रहा है तुम्हारे जीवन में? सिर्फ एक अहंकार।
खूबियां हैं संस्कृतियों की, सो सभी संस्कृतियों की खूबियां हैं। और खूबियां हैं धर्मों की, सो सभी धर्मों की खूबियां हैं। अगर वेद सुंदर हैं तो कुरान का भी कोई मुकाबला नहीं। और अगर कुरान सुंदर है तो बाइबिल अनूठी है। अद्वितीय हैं ये सारे स्रोत। मगर इनकी तुलना मत करना; न तो कुरान वेद से श्रेष्ठ है, न वेद बाइबिल से श्रेष्ठ है, न बाइबिल धम्मपद से श्रेष्ठ है। ये सब इतनी अनूठी चीजें हैं कि इनकी तुलना नहीं हो सकती। गुलाब की गेंदे से तुलना कैसे करोगे? और चंपा की चमेली से तुलना कैसे करोगे? चंपा चंपा है, चमेली चमेली है। चमेली की अपनी गंध है, चंपा की अपनी गंध है। और फिर चंपा को प्रेम करने वाले लोग हैं और चमेली को प्रेम करने वाले लोग भी हैं। फिर अपनी-अपनी पसंद है।
कुरान में जो तरन्नुम है, कुरान में जो गीत है, वह दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं। उपनिषदों में जो साफ अभिव्यक्ति है, जो सुस्पष्ट अभिव्यक्ति है, दो और दो चार जैसी, ऐसी दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं। और बाइबिल की भाषा में जैसी पृथ्वी की सुगंध है, जैसा ग्राम्य ताजापन, वैसा दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं। बुद्ध के वचनों में जैसी शांति है, जैसा अपूर्व संगीत है शांति का, शून्य का, वैसा और कहां मिलेगा! लेकिन ये सब अनूठे हैं, इनको तौलो मत। तौलने की दृष्टि भ्रांत है। ये कोई तराजू पर रख कर तौले जाने वाली चीजें नहीं हैं। यह काम तो तुम पागलों पर छोड़ दो। मगर यह जमीन पागलों से भरी है और इसलिए इस तरह की बातें चलती हैं।
मैंने सुना, एक बार दो अफीमची मिले। पहला अफीमची बोला, मेरे दादा का मकान इतना ऊंचा था कि एक बार एक बच्चा ऊपर से गिरा तो जमीन तक आते-आते आदमी बन गया। दूसरा भला क्यों चुप रहता! उसने कुछ कम पी थी! खिलखिला कर हंसा और

बोला कि छोड़ो जी छोड़ो! मेरे दादा के मकान से तो एक बार एक बंदर गिरा था जो जमीन तक पहुंचते-पहुंचते आदमी बन गया था।
अफीमची माफ किए जा सकते हैं। मगर यही दशा तो उनकी है जिनको तुम समझदार कहते हो--पंडित-पुरोहित, तुम्हारे महात्मा। ये सब अफीमची हैं। जरूर इन्होंने कोई सूक्ष्म अफीम पी रखी है--अहंकार की। और अहंकार से बड़ी अफीम क्या है?
जागो! इस तरह की व्यर्थ की बातों से अपने को मुक्त करो।
राजपथ पर जब कभी जयघोष होता है
आदमी फुटपाथ पर बेहोश होता है।
भीड़ भटके रास्तों पर दौड़ती है
जब सफर का रहनुमा खामोश होता है।
एक सुनहरे सांप ने हमसे कहा--
आदमी के दांत में विषकोश होता है।, मील के पत्थर अनंकित मौन हैं
हां, यही इतिहास का आक्रोश होता है।
मंत्र जपते ओंठ जब जलने लगें--
ऋत्विजों के आचरण में दोष होता है।
हम उन्हें आवाज दें मिलकर "मयूख"
साथ जिनके जोश के कुछ होश होता है।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं, जिनमें जोश है, मगर होश नहीं। उनकी संख्या बड़ी है। निन्यानबे प्रतिशत वे ही लोग हैं। जिनमें जोश है, मगर होश नहीं; जिनमें बड़ी सक्रियता है, मगर जरा भी शांति नहीं; जिनमें बड़ी कर्मठता है, मगर जरा भी बुद्धिमत्ता नहीं। यही लोग दुनिया के उपद्रवों के कारण हैं। बुद्धिहीन, लेकिन कर्मठ। होश तो जरा नहीं, मगर जोश बहुत। हिंदू संस्कृति खतरे में है--और जोशीले लोग इकट्ठे हो जाएंगे कि चाहे जान चली जाए, बचा कर रहेंगे। न संस्कृति का कुछ पता है, न संस्कृति के अर्थ का कुछ पता है, मगर जोश है! और जोश को कहीं कोई निकास तो चाहिए। हिंदू- मुस्लिम दंगा हो जाए तो कुछ निकास हो। हिंदुस्तान-पाकिस्तान लड़ें तो कुछ निकास हो। कहीं कुछ उपद्रव हो, घिराव हो, हड़ताल हो, तो कुछ निकास हो। और दूसरी तरफ वे लोग हैं, जिन्हें थोड़ा होश है, लेकिन जिनमें जोश नहीं। जानते हैं, मगर बैठे रहते हैं मुर्दों की भांति।
मैं चाहता हूं, मेरा संन्यासी ऐसा व्यक्ति हो जिसमें होश के साथ जोश हो। मैं चाहता हूं, भविष्य का आदमी होश और जोश को साथ-साथ सम्हाले।
अतीत की यही दुर्घटना रही है कि होश वाले लोग जोश वाले लोग नहीं थे; जोश वाले लोग होश वाले लोग नहीं थे। तो बुद्ध इतिहास के बाहर रह गए और बुद्धुओं ने इतिहास रचा। तैमूर और चंगीज खां और नादिरशाह और सिकंदर और नेपोलियन और हिटलर और माओत्से तुंग, इस तरह के लोग इतिहास लिखे, इस तरह के लोगों ने इतिहास रचा। और बुद्ध और लाओत्सु और च्वांगत्सु और जरथुस्त्र, कहीं इतिहास के किनारों पर रह गए। दुनिया अब ऐसे लोग चाहती है, जिनमें होश भी हो और जोश भी हो और समतुल हो; जिनके भीतर एक सम्यकत्व हो; जिनके भीतर कर्म की और ज्ञान की एक सम्मिलित धारा हो।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। संसार छोड़ कर तुम बुद्ध हो जाओगे; तुममें होश तो होगा, लेकिन जोश नहीं रह जाएगा। और मैं अपने संन्यासी को सिर्फ संसारी भी नहीं रहने देना चाहता, कि जोश तो बहुत हो, होश बिल्कुल न हो। मैं चाहता हूं, तुम संसार में रहो और संन्यासी। बोधिवृक्षों के नीचे बैठ कर तुम बुद्ध मत बनना; तुम्हें दुकानों में, बाजारों में, मकानों में, पत्नी और बच्चों के बीच घिरे हुए, जीवन के सारे संघर्ष के बीच बुद्धत्व को उपलब्ध करना है। तुम्हें यहीं शोरगुल में ध्यान को साधना है। यहीं समस्याओं की भीड़ में तुम्हारी समाधि पके, तो तुम एक नयी मनुष्यता का सूत्रपात कर सकोगे। यह सूत्रपात अत्यंत जरूरी है। रोशनी को कुचल रहे हैं लोग,
वक्त से पहले ढल रहे हैं लोग।
ऊंचे कद और तंग दरवाजे,

कितना झुककर निकल रहे हैं लोग।
जिस्म साबित दिखाई देते हैं,
अपने अंदर पिघल रहे हैं लोग।
एक अंधी सुरंग के भीतर,
एक मुद्दत से चल रहे हैं लोग।
पास आकर भी इन सलीबों के,
कितने खुश हैं, उछल रहे हैं लोग।
बीमारियों पर प्रसन्न हैं लोग। बीमारियों के लिए झंडे ऊंचे किए हैं।
यह हिंदू होने का अहंकार, यह मुसलमान होने का अहंकार, यह भारतीय होने की म.ूढता, यह चीनी होने का पागलपन, इन सबको तुम समझो कि फांसियां हैं। मगर इनको देख-देख कर लोग उछलते हैं, कूदते हैं, शोभायात्राएं निकालते हैं। अपनी ही लाश अपने कंधों पर ढो रहे हो। अपनी ही मौत का आयोजन अपने हाथ से कर रहे हो। प्राणों में कैंसर फैलता जा रहा है। लेकिन उसी कैंसर को तुम समझ रहे हो तुम्हारी जीवन-संपदा।
नहीं सुरेंद्र कुमार, भारतीय संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति नहीं है। न कोई और संस्कृति विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति है। यह सोचने का ढंग गलत। बहुत फूल हैं परमात्मा के इस जगत में, बड़ा वैविध्य है। और वैविध्य है, इसलिए सौंदर्य है। सुंदर है यह जगत। अगर यह गुलाब ही गुलाब से भरा होता तो गुलाब का भी सौंदर्य नष्ट हो जाता। गुलाब भी इसीलिए सुंदर है कि यहां केवड़ा भी होता है। गुलाब भी इसीलिए सुंदर है कि यहां कमल भी होता है।
यह जो विविधता है, इसको नष्ट करने का बड़ा आग्रह है लोगों के मन में। सदियों से लोग कोशिश कर रहे हैं। हिंदू चाहते हैं सारी दुनिया हिंदू हो जाए। मुसलमान चाहते हैं सारी दुनिया मुसलमान हो जाए। ईसाई चाहते हैं सारी दुनिया ईसाई हो जाए। जैन चाहते हैं सारी दुनिया जैन हो जाए। मगर कोई यह नहीं पूछता--वैविध्य मिट जाए तो जिंदगी बड़ी बेरौनक हो जाएगी।
रहने दो सब तरह के लोग। रहने दो ढंग-ढंग की संस्कृतियां। रहने दो ढंग-ढंग के गीत, ढंग-ढंग के वाद्य। इस सारे वैविध्य को मिटाओ मत--बढ़ाओ, सजाओ, संवारो। और फिर भी जानो कि भीतर आदमी एक है। वस्त्र भिन्न हैं, परिधान भिन्न हैं, भीतर आदमी एक है। क्योंकि भीतर आदमी के परमात्मा विराजमान है। परमात्मा पर किसी की बपौती नहीं है--न भारतीय की, न पाकिस्तानी की।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मनुष्य इतना दुखी और उदास क्यों हो गया है?

आज ही हो गया है, ऐसा नहीं। आदमी सदा से दुखी और उदास है। हां, आज दुख
और उदास, यह दुख, यह चिंता, यह उदासी समझने की समझ आदमी में ज्यादा आ गई है। है तो सदा से दुखी, लेकिन इतना बोध नहीं था; इसलिए गुजारे रहा, गुजारे जाता रहा। आदमी सदा से दुखी था, लेकिन उसने अपने दुख को छिपाने की बड़ी सुविधाएं खोज ली थीं--पिछले जन्मों के पापों का फल भोग रहा हूं, तो दुख झेलना आसान हो जाता; कि परमात्मा ने भाग्य में जो लिख दिया है वह होकर रहेगा। तो नियति है, अपने किए क्या होगा! इसलिए जो है ठीक है, जैसा है ठीक है। फिर चार दिन की जिंदगी है, गुजार लो।
आज न तो अतीत के जन्मों के सिद्धांत काम आ रहे हैं, न परमात्मा विधि का लेखक रह गया है। लोगों के मन में बहुत संदेह उठे हैं। संदेह शुभ लक्षण है। संदेह का अर्थ है, समझ पैदा हो रही है। विश्वास खंडित हो गए हैं, अच्छा हुआ, क्योंकि विश्वास आदमी को अंधा रखते हैं।
ध्यान रखना, मैं श्रद्धा का पक्षपाती हूं, विश्वास का विरोधी।
विश्वास का अर्थ होता है दूसरों ने तुम्हें जो दे दिया, उधार। और श्रद्धा का अर्थ होता है अपने अनुभव से जिसे पाया। श्रद्धा का अर्थ होता है स्वयं की प्रतीति। और विश्वास का अर्थ होता है दूसरों के द्वारा डाले गए संस्कार। विश्वास एक तरह की मानसिक आदत है; और श्रद्धा, जीवन-सत्य की खोज। विश्वास संदेह के विपरीत है। विश्वासी संदेह को दबा कर बैठा रहता है। और श्रद्धा संदेहों का उपयोग कर लेती है, संदेह की सीढ़ियां बना लेती

है। हर संदेह अगर ठीक-ठीक ईमानदारी से जीया जाए तो श्रद्धा तक लाता है। लाएगा ही! संदेह में बीज छिपे हैं श्रद्धा के।
इसलिए मैं नहीं कहता कि संदेह को दबाना; मैं नहीं कहता कि संदेह की तरफ पीठ करना। मैं तो कहता हूं, संदेह को पूरा-पूरा जीना, निखारना, धार रखना, ताकि तुम्हारी श्रद्धा नपुंसक न हो। तुम्हारी श्रद्धा सारे संदेहों को पार करने के बाद होगी तो फिर कोई संदेह उसे गिरा न सकेगा। साधारण विश्वासी आदमी बड़ा डरा रहता है कि कोई संदेह न जगा दे; कोई ऐसी बात न हो जाए कि वह थोथा विश्वास जो ऊपर से थोप लिया है, टूट जाए, उखड़ जाए। जैसे कच्चे रंग मुंह पर पोत लिए हों तो वर्षा से डर लगता है।
मैंने सुना है, लखनऊ में एक आदमी रास्ते पर पंखे बेच रहा था। लखनवी लहजे में, बड़ी सुंदर आवाज में जोर-जोर से चिल्ला कर कह रहा था कि ऐसे पंखे न तो कभी बने और न फिर बनेंगे। ये अनूठे पंखे हैं। इन पंखों की खूबियों का कोई अंत नहीं है।
एक रईस ने--गर्मी के दिन थे, पसीना-पसीना हो रहा था--खिड़की खोली और पंखे वाले को भीतर बुलाया और कहा कि बड़ी देर से चिल्ला रहे हो, क्या खूबी है इन पंखों की?
तो उस पंखे वाले ने कहा कि इन पंखों की खूबी यह है कि ये कभी टूटते नहीं। ये तुम्हारी पीढ़ी दर पीढ़ी, बच्चे, बच्चों के बच्चों तक काम आएंगे। ये टूटते ही नहीं।
रईस ने पंखा खरीद लिया। और वह आदमी जा भी नहीं पाया था, रईस ने पंखा एक-
दो बार ही किया होगा कि टूट गया। वह तो बड़ा हैरान हुआ। सस्ते से सस्ते पंखे भी कुछ दिन तो चलते हैं। और यह शाश्वत पंखा, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाला था, एक ही दो बार हवा करने में टूट गया। बहुत हैरान हुआ! लेकिन वह आदमी जा चुका था। दूसरे दिन की प्रतीक्षा की उसने कि शायद फिर निकले। फिर दोपहर वही आवाज कि अनूठे पंखे! न पहले कभी बने, न फिर कभी बनेंगे!
उसने उस आदमी को बुलाया। और उसने कहा कि तेरी हिम्मत की दाद देनी होगी। यह टूटा हुआ पंखा पड़ा है और तू कहता था अनूठा पंखा! और इस सड़े पंखे के तू मुझसे पांच रुपये लूट ले गया!
और उस पंखे वाले ने आंख भी न झपकी; उसने कहा, तो इसका सिर्फ एक ही अर्थ होता है कि आपको पंखा करना नहीं आता।
उस रईस ने कहा, हद हो गई! और भी देखो, बेशर्मी की भी कोई सीमा है! बेईमानी की भी कोई सीमा है! मुझे पंखा करना नहीं आता? पंखा कैसे किया जाता है?
तो उस आदमी ने कहा कि पंखा करने का ढंग, पंखे को हाथ में रख कर सामने रख
लो और सिर को हिलाते रहो। यह पंखा शाश्वत है, मगर ढंग से किया जाए तो। यह कोई ढंग है? हिला दिया होगा, पंखा टूट गया। पंखा हिलना नहीं चाहिए। सिर हिलाओ और पंखे को सामने रखो। हवा भी होगी, पंखा भी रहेगा।
तुम्हारी श्रद्धाएं--जिनको तुम श्रद्धा कहते हो--श्रद्धाएं नहीं हैं, विश्वास हैं। बस ऐसे हैं, जरा में टूट जाएंगे। इसलिए तथाकथित विश्वासी बहुत डरा रहता है कि कोई संदेह न जगा दे। जिसके जीवन में श्रद्धा है वह संदेहों से डरता ही नहीं; वह तो संदेहों को निमंत्रण दे आता है कि आओ! क्योंकि श्रद्धा संदेह से बहुत आगे की बात है। लेकिन संदेहों को पार करके आए होओ तब।
सुदास, तुम पूछते होः "मनुष्य इतना दुखी, उदास क्यों हो गया है?"
मनुष्य सदा दुखी था, लेकिन सांत्वना करता रहा था। सदा उदास था, लेकिन अपनी उदासी के लिए व्याख्याएं खोजता रहा था। आज पहली दफा व्याख्याएं व्यर्थ हो गई हैं, सांत्वनाएं उखड़ गई हैं। आज पहली दफा आदमी ने पंखे को सामने रख कर सिर हिलाना बंद कर दिया है, पंखा टूट गया है। पंखा हिलाया कि टूट गया। आज मनुष्य सब तरह के संदेहों से घिरा हुआ खड़ा है। सब तरफ अंधेरा मालूम होता है। क्योंकि जिन दीयों पर भरोसा किया था वे दीये नहीं थे, सिर्फ कल्पना के जाल थे। अब मनुष्य को सच्चे दीये की तलाश करनी होगी।
यह शुभ घड़ी है। मैं इससे चिंतित नहीं हूं। मैं इससे आनंदित हूं। और तुमसे भी मैं कहूंगा, सुदास, आनंदित होओ। यह शुभ घड़ी है कि झूठी

सांत्वनाएं उखड़ गईं, झूठे सिद्धांत कचरे में गिर गए। आदमी ने पहली दफा आंख खोली है। आदमी ने पहली दफा जीवन को देखने की चेष्टा शुरू की है।
निश्चित, यह कठिन मार्ग है। आदमी प्रौढ़ हुआ है। इसलिए बचपन की परियों
की कथाएं अब काम नहीं आएंगी और बच्चों के लिए गढ़े गए ईश्वर के सिद्धांत भी अब काम नहीं आएंगे। अब ज्यादा देर नहीं लगेगी कि तुम गणेश-उत्सव मनाते ही रहो, मनाते ही रहो। पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई है। अभी भी खींचे जा रहे हो, लकीर के फकीर हो पुराने इसलिए मुर्दा लकीरों को भी पीटे जा रहे हो। सांप वहां है ही नहीं और तुम अब भी लकड़ी पीटे जा रहे हो। पुरानी आदत हो गई है। लेकिन तुम्हारे पुराने सिद्धांत, धारणाएं, सब निस्तेज हो गए हैं, उन्होंने आभा खो दी है, उनके आधार गिर गए हैं, उनकी बुनियादें सरक गई हैं। तुम्हारे सारे मंदिर धूल-धूसरित हो गए हैं।
और स्वभावतः, ऐसी अड़चन की घड़ी पहले कभी न आई थी। आदमी प्रौढ़ ही न हुआ था। बच्चों को हम खिलौने दे देते हैं, बस खिलौनों में उलझ जाते हैं। लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाएंगे तो फिर तुम खिलौनों में न उलझा सकोगे। ऐसा ही आदमी प्रौढ़ हो गया है। अब तुम स्वर्ग-नरक की कथाएं... किसको धोखा दे पाओगे उन कथाओं से? और तुम्हारे अजीब-अजीब ईश्वर के सिद्धांत कि ईश्वर आकाश में बैठा है, कि तीन चेहरे वाला है, कि ऐसा है कि वैसा है। अब तुम किसको समझा पाओगे कि क्षीरसागर में लेटा है, नाभि में से कमल उगा है। अब तुम किसको समझाओगे? किस क्षीरसागर की बात कर रहे हो? कहां है क्षीरसागर तुम्हारा? कहां हैं तुम्हारे कैलाश? आदमी ने सब छान डाला।
यूरी गागरिन ने जब अंतरिक्ष की यात्रा की पहली बार और लौटा वापस जमीन
पर तो रूस में उससे जो पहली बात पूछी गई वह यह कि अंतरिक्ष में ईश्वर मिला? यूरी गागरिन ने कहा, मैंने बहुत तलाशा अंतरिक्ष में, मैं इसी खोज में था कि और कुछ मिले या न मिले, कम से कम ईश्वर मिल जाए। मगर कोई ईश्वर है ही नहीं तो मिलता कैसे?
रूस में उन्होंने एक बड़ा म्यूजियम बनाया है, जिसमें अंतरिक्ष से लाई
गई सारी चीजों को रखा गया है; चांद से लाए गए पत्थर, जमीन के टुकड़े, वे सब उसमें सम्हाल कर रखे गए हैं; सारे चित्र! उस म्यूजियम के दरवाजे पर लिखा है एक वचन कि हमने अंतरिक्ष में जाकर देख लिया, वहां कोई ईश्वर नहीं है। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ईश्वर नहीं है। इससे सिर्फ इतना सिद्ध होता है कि पुरानी धारणा व्यर्थ हो गई। हमें अब ईश्वर को भी नयी भाव-भंगिमा देनी होगी। अब ईश्वर व्यक्ति की तरह नहीं हो सकता। अब तो ईश्वर शक्ति की तरह हो सकता है। अब ईश्वर जगत का स्रष्टा, ऐसा नहीं हो सकता; अब तो ईश्वर जगत की सृजनात्मकता, क्रिएटिविटी, ऐसा होगा। अब ईश्वर के दर्शन करने की बात फिजूल है। अब तो तुम्हारे भीतर जो द्रष्टा बैठा है, वही ईश्वर है। एक क्रांति घट गई।
पहले हम सोचते थे ईश्वर दृश्य है, उसे देखा जा सकता है। अब हमें एक क्रांति करनी होगी--ईश्वर दृश्य नहीं है, द्रष्टा है। जिन्होंने पहले भी जाना है उन्होंने भी यही कहा है कि ईश्वर द्रष्टा है, दृश्य नहीं। लेकिन वे इने-गिने लोग थे, अंगुलियों पर गिने जा सकें।
आज पूरी पृथ्वी बड़े संदेह से भर गई है। इसलिए सुदास, बहुत दुख है और बहुत उदासी है। मगर यह दुख और उदासी ऐसे ही है, जैसे रात बहुत अंधेरी जब हो जाती है तो खबर देती है कि सुबह करीब है। चूंकि पुरानी धारणाएं गिर गईं, पुराने सिद्धांत गिर गए, पुराने शास्त्र अर्थहीन हो गए, पुराने संबंध, पुराना समाज, पुराने समाज की व्यवस्था, सब अस्तव्यस्त हो गई, सब डांवाडोल हो गई, आदमी बिल्कुल अकेला हो गया है--इसलिए बहुत उदास है। इतना आदमी अकेला कभी नहीं था; समाज का अंग था। हर आदमी किसी समाज, किसी गांव, किसी भीड़ का अंग था। आज भीड़ में भी हो तो भी अकेले हो। ऐसा अकेलापन उदास करता है। लेकिन अगर इस अकेलेपन का ठीक-ठीक उपयोग कर लो तो यही अकेलापन समाधि बनेगा, ध्यान बनेगा। और यही अकेलापन आनंद का स्रोत हो जाएगा। इसी अकेलेपन से गंगा बहेगी आनंद की।
कहां गए,
घर से घर लगे हुए,

बतियाते द्वार?
कहां गए,
हवा और पानी से
लहराते प्यार?
दीवारों की स्थिति, द्वारों के दिशाबोध, एक सिरे गायब, पनपे अंतर्विरोध--
मातमी
लिबासों में लिपटे
जन-उत्सव त्योहार,
खाटें पकड़े ड्योढ़ी, बूढ़े नौबतखाने, मस्जिद से मुंहफेरे खड़े हुए बुतखाने तटवासी
अनुभव स्थितियों को
धकियाते ज्वार
रीत गई असमय ही नेह-छोह की भाषा,
फिर भी हम बांधे हैं, आसमान से आशा
चुक गए
जनम से
कंधे देने तक के व्यवहार
एक पुराना जगत हमने बनाया था, वह सब का सब विदा हो गया है। आदमी एक महाशून्य में खड़ा है। न पुराने संबंधों में कुछ अर्थ रह गया है, न पुरानी औपचारिकता में प्राण रह गए हैं, न पुराने शिष्टाचार में कोई आत्मा बची है। और नया हम जन्म नहीं दे पा रहे हैं। पुराना मर गया है, उसकी लाश सड़ रही है। और नये की कहीं कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती।
मैं उस नये को ही पुकार दे रहा हूं। तुम्हारे भीतर मैं उस नये को ही निर्माण करने की महत चेष्टा में लगा हूं। एक नया ही मनुष्य चाहिए--नयी धारणाओं से सजा, अस्तित्व के प्रति नयी उमंगों से भरा। परमात्मा की एक नयी ही प्रतीति, एक नया साक्षात--मंदिरों-मस्जिदों, पंडित-पुजारियों, काशी और काबा से मुक्त। एक मनुष्य चाहिए जो पूरी पृथ्वी को अपना माने, पूरी मनुष्य-जाति को अपना माने। और यह आज संभव है, यह इसके पहले कभी संभव भी नहीं था।
लेकिन बजाय इसके कि हम इस महत संभावना की घड़ी को आनंद में रूपांतरित करें, हम सिर्फ सड़ी हुई लाश के पास बैठे दुर्गंध से भर रहे हैं। चुनौती सामने खड़ी है। जीवन एक महा प्रश्न-चिह्न बन गया है। बजाय इसके कि हम चुनौती को अंगीकार करें और अभियान पर निकलें, हम अभी भी इस आशा में बैठे हैं कि शायद पुरानी राख में टटोलने से कोई अंगार मिल जाएगी।
नहीं-नहीं, नयी अंगार जलानी है। पुरानी अंगार बिल्कुल बुझ गई है, राख
हो गई है; अब उसमें मत टटोलते बैठे रहो। अब तो हमें फिर से निर्माण करना होगा। और अगर तुम्हें थोड़ी भी समझ हो तो फिर से निर्माण करने का अवसर कितना बड़ा सौभाग्य है!
मुल्ला नसरुद्दीन कविता-पाठ कर रहे थे। श्रोताओं में एक तरफ हलचल देख
कर वे रुके; क्या आपको काव्य-पाठ सुनाई दे रहा है? एक श्रोता बोला, नहीं। इसीलिए तो हलचल मची है। इसीलिए तो लोग बेचैन हैं। यह सुनते ही माइक्रोफोन ठीक किया गया और नसरुद्दीन ने पुनः कविता-पाठ शुरू किया। लेकिन अब दूसरी तरफ श्रोताओं में हलचल मच गई और पहले से भी ज्यादा। नसरुद्दीन बोले, क्यों भाई, अब क्या परेशानी है? क्या अभी भी काव्य-पाठ सुनाई नहीं दे रहा है? कई श्रोता उठ खड़े हुए और बोले, परेशानी यह है कि अब काव्य-पाठ सुनाई दे रहा है।
अब तक आदमी आंख बंद किए चल रहा था, जैसे कोल्हू के बैल चलते हैं। दुख था, मगर आंख बंद थी। अब आंख खुल गई है और दुख है। दुख वैसा का वैसा है। सुदास, ऐसा मत सोचना कि पहले का आदमी सुखी था। इस तरह की बातें तुम्हारे पंडित और पुरोहित और तुम्हारे तथाकथित साधु और संत तुम्हें

समझाते हैं कि पहले का आदमी बहुत सुखी था; पहले सतयुग था, पहले स्वर्ण-युग था।
दुनिया में दो तरह के अफीम के नशे हैं। एक, कि पहले स्वर्ण-युग था; और दूसरा, कि स्वर्ण-युग आगे आएगा। ये दोनों नशे हैं। एक नशा धार्मिक लोगों का है--हिंदुओं का, मुसलमानों का, जैनों का, बौद्धों का। और एक नशा अधार्मिक लोगों का है--कम्युनिस्टों का, सोशलिस्टों का, फेसिस्टों का। स्वर्ण-युग आगे! एक का स्वर्ण-युग पीछे, एक का स्वर्ण-युग आगे। दोनों ही भुलावे के रास्ते हैं। इसलिए दोनों को मैं अफीम कहता हूं। मार्क्स ने कहा है, धर्म अफीम के नशे हैं। ठीक कहा है। लेकिन मार्क्स ने जो कुछ भी निर्मित किया, वह अफीम का नया नशा है। फर्क इतना ही है कि पुरानी अफीम अतीत में भरोसा रखती थी, नयी अफीम भविष्य में भरोसा रखती है; जब कि अस्तित्व का केवल एक ही रूप होता है--वर्तमान। अस्तित्व तो अभी है।
मैं तुमसे कहता हूं, सतयुग अभी है, स्वर्ण-युग अभी है। न तो पीछे था और
न आगे होगा।
तुम मेरी अगर बात न मान सको तो जरा अपने पुराणों में उठा कर देखो। तुम किस सतयुग की बातें कर रहे हो? लोग इस तरह बातें करते हैं, जैसे सारे पाप अब हो रहे हैं। जरा अपने पुराण टटोलो। और तुम चकित हो जाओगे, तुम हैरान हो जाओगे। तुम जिन स्वर्ग के देवताओं को बड़ा पवित्र मान रहे हो, जरा अपने पुराणों में खोजो!
वे स्वर्ग के देवता जमीन पर उतर कर व्यभिचार कर जाते हैं। और साधारण स्त्रियों के साथ ही नहीं, ऋषियों की पत्नियों को भी नहीं छोड़ते। यह स्वर्ण-युग था, जब देवता भी इतने भ्रष्ट थे! यह स्वर्ण-युग था, जब तपस्वियों को भ्रष्ट करने का आयोजन ही देवताओं का एकमात्र काम था, कि भेजो एकदम उर्वशी! कोई बेचारा ध्यान कर रहा है, तुम्हारा क्या बिगाड़ रहा है? कोई आंख बंद किए शांत बैठा अपनी माला जप रहा है, भेजो उर्वशी! भ्रष्ट करो उसे! यह स्वर्ण-युग था, जहां देवता भी इतने गए-बीते थे!
तुम जरा अपना पुराना इतिहास, जो पुराणों में छिपा पड़ा है, वह उठा कर देखो। कोई पढ़ता नहीं पुराण, शायद इसीलिए लोग नहीं पढ़ते कि पढ़ेंगे तो बड़ी ग्लानि होगी।
ब्रह्मा से लेकर इंद्र तक तुम्हारे सारे देवता अत्यंत भ्रष्ट हैं। उनकी भ्रष्टता की कोई सीमा भी नहीं है। पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा अपनी बेटी पर ही मोहित हो गए। ऐसा तो अब भी नहीं होता। अपनी बेटी के ही पीछे चल पड़े! उसी के प्रति कामातुर हो गए। और ब्रह्मा महादेव हैं, स्रष्टा हैं जगत के।
वेदों में सोमरस की बड़ी चर्चा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सोमरस कोई
खो गई जड़ी-बूटी है, जो रही होगी भांग, गांजा, चरस, अफीम जैसी। उसे पी-पी कर देवता मस्त हो रहे थे। पश्चिम के बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने तो लिखा है कि सोमरस एल एस डी जैसी कोई चीज थी। और भविष्य में--अल्डुअस हक्सले ने लिखा है कि--जब हम एल एस डी की शोध को पूरा कर लेंगे तो जो अंतिम हमारे हाथ में मादक द्रव्य लगेगा सारी वैज्ञानिक शोध के बाद, अच्छा होगा उसका नाम हम सोमा रखें--वेद के ऋषियों की स्मृति में!
यज्ञ हो रहे थे तुम्हारे स्वर्ण-युग में जिनमें गऊमाता के भक्त गऊ की बलि चढ़ा रहे थे, घोड़े काटे जा रहे थे, नरमेध भी हो रहे थे। स्वर्ण-युग! सतयुग!
लोगों को यह भ्रांति है कि अब लोग खराब हो गए हैं। अगर लोग अब खराब हो
गए हैं तो बुद्ध किसको समझा रहे थे चौबीस घंटे--चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, भ्रष्टाचार मत करो, हिंसा मत करो, हत्या मत करो! किसको समझा रहे थे? पुराने से पुराने शास्त्र भी इन्हीं शिक्षाओं से भरे हैं। ये शिक्षाएं बताती हैं कि लोग चोर थे। नहीं तो किसको समझा रहे हो कि चोरी मत करो? जहां कोई चोर ही न हो वहां बुद्ध और महावीर और कृष्ण और पतंजलि लोगों को समझाते फिरें कि चोरी मत करो, तो इनका दिमाग खराब है, ये पागल हैं। जहां कोई चोरी करता ही नहीं वहां क्या समझा रहे हो कि चोरी मत करो! कोई तो खड़े होकर कहता कि महाराज, क्यों व्यर्थ मेहनत कर रहे हो? चोरी यहां कोई करता ही नहीं।

झूठी हैं वे कहानियां जो कहती हैं कि घरों में ताले नहीं डाले जाते थे। हां, एक कारण हो सकता है ताले न डालने का कि घर में कुछ हो ही न। लेकिन चोरी तो होती थी। नहीं तो बुद्ध क्यों कहते हैं कि चोरी मत करो? और महावीर ने अचौर्य को महाव्रत क्यों कहा है पांच महाव्रतों में? और हिंसा तो डट कर हो रही थी, कि महावीर को अहिंसा का पाठ देना पड़ा। बेईमानी सघन थी।
कब था स्वर्ण-युग? कब था आदमी सुखी?
कभी नहीं था। लेकिन हां, एक मूर्च्छा थी, एक तंद्रा थी; वह तंद्रा टूट
गई है आज। अच्छा हुआ टूट गई। टूट गई तो अब हम उपाय कर सकते हैं सुखी होने का। लेकिन सुख, दूसरी भ्रांति में मत पड़ जाना कि समाजवाद आएगा तो मिलेगा, कि साम्यवाद आएगा तो मिलेगा, कि वर्गविहीन समाज की रचना होगी तो मिलेगा। सुख का कोई संबंध बाहर से नहीं है। सुख अंतर-दशा है। जो निर्विचार हो जाए उसे अभी और यहीं मिल जाएगा।
और फिर कब समाज वर्गविहीन होगा? तब तक तुम जिंदा रहोगे? और सवाल तुम्हारा है। रूस में क्रांति हुए साठ साल हो गए, अभी तक भी कोई सुख की झलक दिखाई नहीं पड़ती। सुख तो बहुत दूर, रूस अभी भी इतना भयभीत रहता है--बाहर से कोई देश में अंदर न आए! रूसी देश के बाहर न जाएं! क्योंकि ओलंपिक वगैरह में रूसी देश के बाहर जाते हैं तो फिर लौटना ही नहीं चाहते। क्या हो जाता है उनको? रूस के बाहर आकर उनको पता चलता है कि दुनिया कहां से कहां पहुंच गई! रूस में एक तरह की समानता आई है, गरीबी बांट दी गई है। बांटने को अमीरी
तो थी भी नहीं। जैसे भारत में अगर समाजवाद आए तो क्या करोगे? बांटोगे क्या खाक! गरीबी बांट लोगे। हां, सब समान रूप से गरीब हो सकते हैं। एकाध बिड़ला, एकाध टाटा, एकाध सिंघानिया, इनको करोगे क्या? बांट लोगे। बांटने से किसके हाथ क्या पड़ने वाला है? वही रूस में हुआ। गरीबी की दृष्टि से सब लोग समान हो गए। लेकिन आदमी ऐसा मूढ़ है कि गरीबी की समानता को सुख समझ सकता है! हां, बाहर का उसे पता नहीं चलना चाहिए।
आदमी को बड़ा कष्ट होता है दूसरे को सुख में देख कर; अपने को दुख में देख कर इतना कष्ट नहीं होता। आदमी को बड़ा सुख मिलता है दूसरे को कष्ट में देख कर। अगर सभी बराबर कष्ट में हैं तो लोग बिल्कुल निश्चिंत रहते हैं, लोग कहते हैं, अब क्या करना है? अब क्या झंझट? लेकिन अगर एक आदमी सुखी हो जाए तो बाकी सारे लोग बहुत दुखी हो जाते हैं; उसके सुख के कारण दुखी हो जाते हैं।
रूस से बाहर जो लोग आते हैं और बाहर की दुनिया देखते हैं, वे बड़े चकित होते हैं। उनको बिल्कुल धोखे में रखा जा रहा है। उन्हें बाहर की दुनिया के संबंध में गलत खबरें दी जा रही हैं, गलत पाठ पढ़ाए जा रहे हैं। साठ साल में सुख तो बिल्कुल नहीं हुआ, सिर्फ लोगों की आजादी खो गई। सब तरह की आजादी खो गई।
मैंने सुना है, कुत्तों की एक प्रदर्शनी हुई पेरिस में। उसमें सारी दुनिया के कुत्ते इकट्ठे हुए। रूसी कुत्ते भी आए। बड़े मजबूत कुत्ते--रूसी कुत्ते! बड़े पहलवान छाप! फ्रांसीसी कुत्तों ने उनसे पूछा कि रूस के क्या हालचाल हैं? कैसी चल रही जिंदगी वहां? तो उन्होंने बड़ी शान बघारी कि जब से समाजवाद आया, जब से साम्यवाद आया, सुख ही सुख है। खाने को सुंदर-सुंदर भोजन, रहने को सुंदर-सुंदर मकान, घूमने-फिरने को बगीचे। क्या नहीं है! उनकी बातें सुन कर फ्रांसीसी कुत्तों के मन में बड़ी ईर्ष्या जगी, बड़ी लार टपकी उनकी जीभों से। जब जाने का दिन आया तो रूसी कुत्तों ने फ्रांसीसी कुत्तों से कहा कि हमें कहीं छिपा दो, हम जाना नहीं चाहते। पूछा, अरे, जहां इतना सुख है कि हम सोच रहे थे कि कोई मौका मिल जाए तो हम भी वहीं आ जाएं, तुम जाना क्यों नहीं चाहते? उन्होंने कहा, अब तुम सच्ची बात पूछते हो तो यह कि और सब तो ठीक है, लेकिन भौंकने की आजादी बिल्कुल नहीं है, भौंक नहीं सकते।
और कुत्तों को भौंकने की आजादी न हो तो कुत्तों की आत्मा ही मर गई समझो। कुत्तों की आत्मा ही क्या है--उनके भौंकने में! अभिव्यक्ति की आजादी नहीं है।
न तो अतीत में कोई रामराज्य था और न भविष्य में कोई रामराज्य होने वाला है। अतीत में रामराज्य जो लोग बताते हैं वे तुम्हें धोखा दे रहे हैं

और जो भविष्य में बताते हैं वे भी धोखा दे रहे हैं। अगर कोई रामराज्य हो सकता है तो अभी।
रामराज्य से मेरा अर्थ किसी दशरथ-पुत्र राम का राज्य नहीं है। वे तो कोई बहुत सुंदर दिन न रहे होंगे, कोई अच्छे दिन न रहे होंगे। राम के पिता दशरथ ने बुढ़ापे में शादी कर ली थी, उसकी वजह से सब उपद्रव हुआ। बुढ़ापे में शादी की! यह रामराज्य, यह स्वर्ण-युग, यह सतयुग, बूढ़े दशरथ को अभी कामवासना से छुटकारा नहीं मिला! और इसी स्त्री की बातों में आकर अपने बेटे को चौदह साल के लिए जंगल का आदेश दे दिया कि निकल जाओ घर से! इस बूढ़े में कोई बल रहा होगा? कोई आत्मबल रहा होगा? यह तो मालूम होता है कि अपनी पत्नी का बिल्कुल चाकर रहा होगा। बुढ़ापे में शादी जो लोग करते हैं, अक्सर उनकी ऐसी गति हो जाती है।
और राम में इतना भी बल न था कि एक गलत बात के खिलाफ खड़े हो सकते! दकियानूसी रहे होंगे। मान ली आज्ञा, चाहे गलत सही, मान ली आज्ञा। और इसलिए पीढ़ियों दर पीढ़ियों से इस देश में हम राम का गुणगान सुनते रहे हैं। वह इसीलिए कि सब आज्ञा मानो, सब आज्ञाकारी बनो। और जो देश इतनी भी क्षमता नहीं रखता कि गलत आज्ञाओं के खिलाफ खड़ा हो सके वहां क्रांति कैसे होगी? राम चले गए जंगल! गलत बात, फिर चाहे पिता की भी क्यों न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? गलत बात के सामने झुकना गलत है।
फिर राम को राज्य का बड़ा मोह रहा होगा। राज्य के मोह के पीछे फिर सीता
का भी त्याग कर दिया। अगर यूं ही था तो खुद भी चले गए होते सीता के साथ, तो कुछ शान की बात होती।
और राम का राज्य तो रामराज्य कहा ही नहीं जा सकता। क्योंकि कहानी है
कि एक शूद्र के कानों में सीसा भरवा दिया था गर्म करवा कर पिघला कर, क्योंकि उसने वेद-वचन सुनने की जुर्रत की थी। यह रामराज्य है, जहां एक शूद्र वेद-वचन न सुन सके? महात्मा गांधी इन्हीं राम का गुणगान कर रहे हैं और दूसरी तरफ शूद्र को हरिजन बता रहे हैं! और इन्हीं हरि ने एक शूद्र के कानों में सीसा पिघला कर भरवा दिया। उसके प्राण ही ले लिए होंगे। उसको बहरा कर दिया, क्योंकि उसने वेद-वचन सुन लिए थे!
न तो अतीत में कोई रामराज्य था और न भविष्य में कोई होगा। फिर मैं किस रामराज्य की बात करता हूं?
एक राम तुम्हारे भीतर सोया है। दशरथ के बेटे राम की नहीं। एक राम तुम्हारे भीतर सोया है। एक ईश्वर तुम्हारे भीतर विराजमान है। उसको जगाओ। उसकी जागृति में रामराज्य है। वह जग जाए तो सब दुख मिट जाता है, सब पीड़ा मिट जाती है। सब मृत्यु, सब भय समाप्त हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर सोया हुआ राम जग जाए तो बस अमृत से तुम्हारा संबंध हो गया।
सुदास, आज जरूर आदमी दुखी है, लेकिन आदमी सदा से दुखी रहा है; आज उसे पता चल रहा है; आज होश में है। क्लोरोफार्म उतर गया। क्लोरोफार्म देते हैं न किसी मरीज को, थोड़ी देर बाद क्लोरोफार्म उतर जाता है। जब क्लोरोफार्म उतर जाता है तब उसे पीड़ा का पता चलता है। आपरेशन हो गया, अब उसे दर्द मालूम होता है।
एक क्लोरोफार्म सारी मनुष्य-जाति पीए बैठी रही है अतीत में। धर्म का
एक नशा था, जो घोट-घोट कर पिलाया गया था। वह उतर गया, वह उखड़ गया। विज्ञान के विकास ने क्लोरोफार्म की पुरानी पद्धति तोड़ दी, आदमी होश में आ गया। होश में आया तो दुख का पता चल रहा है, पीड़ा का पता चल रहा है, संताप का पता चल रहा है, चिंता का पता चल रहा है। मगर यह अच्छा है, क्योंकि पता चल रहा है तो हम मिटाने का कुछ उपाय कर सकेंगे। उपाय एक है कि तुम्हारे भीतर थिरता आए, मौन समाए। उपाय एक है कि तुम्हारे भीतर चित्तशून्य दशा पैदा हो, मन से मुक्ति हो, निर्विचार सघन हो।
पतंजलि जिसको कहते हैं निर्विकल्प समाधि, वही रामराज्य है। और तुम्हारे भीतर अगर दीया जल जाए निर्विचार समाधि का, तो जो बुझे दीये हैं, वे भी तुम्हारे पास आकर जल सकते हैं। यह सारी दुनिया एक दीपावली मना सकती है।

लेकिन जब मैं यह कहता हूं तो स्वभावतः मैं तुम्हें कोई सांत्वना नहीं
दे पाता। तुम्हें अगर कह देता कि पीछे सब ठीक था, तो तुम पीछे के सपनों में खो जाते; या तुमसे कह देता आगे सब ठीक हो जाएगा, तो तुम आगे की कल्पनाओं में खो जाते। लेकिन जब मैं कहता हूं अभी कुछ करना है, तो बड़ी मुश्किल होती है। क्योंकि मनुष्य बड़ा आलसी है, बड़ा तामसी है। कुछ करना है अभी! मन सदा टालने का होता है--कल पर टाल दो, बीते कल पर टालो, आने वाले कल पर टालो, आज मत छेड़ो उपद्रव। क्योंकि आज अगर करना है तो करना होगा।
इसलिए सुदास, मेरी बात ठीक लगे तो भी तुम उससे बचना चाहोगे।
मैंने सुना है, एक महात्मा के पास एक नया-नया शिष्य आया। शिष्य बहुत आलसी। गुरु ने उसकी आदत सुधारनी चाही। एक रात दोनों सोने जा रहे थे, खाट पर लेट गए थे। शिष्य को उठाने के लिए गुरु ने कहा कि शायद वर्षा आ रही है, गाय को अंदर ले आओ।
शिष्य लेटे-लेटे ही बोला, गुरु जी, अभी एक बिल्ली निकली थी, मैंने उस
पर हाथ फेर कर देखा था। बाहर वर्षा नहीं हो रही, क्योंकि बिल्ली सूखी थी। गुरु ने उसे उठाने के लिए फिर कहा, देख तो जरा घड़ी में कितने बजे हैं? शिष्य बोला, गुरु जी, अभी हम सोने वाले हैं, समय जान कर क्या करेंगे?
गुरु ने उसे फिर उठाने के लिए कहा, दीया फालतू जल रहा है, उसको बुझा दो।
शिष्य बोला, गुरु जी, दो काम मैंने किए, अब यह काम आप करिए।
मैं जब कहता हूं, अभी और यहीं रामराज्य को सुलगाना है, जगाना है! तुम सुन लेते हो, समझ भी लेते हो, लेकिन बचना चाहते हो, टालना चाहते हो। तुम कहते हो, थोड़ी देर तो और सो लेने दो, कल करेंगे, फिर करेंगे, अभी और दूसरे काम करने हैं।
लेकिन सब काम व्यर्थ हैं। करने योग्य बात, सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात, सबसे प्रथम बात एक है--स्वयं को जान लो! क्योंकि उसी जानने में स्वर्ग है, उसी जानने में निर्वाण है, उसी जानने में राम है, उसी जानने में सब जानना छिपा है; सब होने का रहस्य, सारा आनंद, सारा उत्सव छिपा है!
मनुष्य जी रहा है करीब-करीब ऐसे जैसे नशे में हो। नशा टूटता भी है तो
हम नये नशे खोज लेते हैं। एक नशा टूटता है तो हम दूसरा नशा खोज लेते हैं। लोग मंदिरों में, मस्जिदों में जा रहे थे, क्योंकि वहां जाकर भूल जाते थे जीवन का दुख, जीवन की पीड़ाएं। अब मंदिर-मस्जिद कोई नहीं जाता तो सिनेमाघर के सामने कतार लगी है; वहां जाकर तीन घंटे के लिए नशे में डूब जाते हैं। शराब पी रहे हैं। पहले मालाएं फेर रहे थे, भजन कर रहे थे, कीर्तन कर रहे थे; अब ताश खेल रहे हैं, शतरंज बिछाए बैठे हैं। मगर हर हाल समय को काट रहे हैं; समय का उपयोग नहीं कर रहे हैं; समय को रूपांतरित नहीं कर रहे हैं। नींद-नींद मनुष्य की अवस्था है।
एक बार दो शराबी रास्ता भटक गए। रात का समय है, कुछ ज्यादा ही चढ़ा ली थी। चलते-चलते एक शराबी अनायास किसी पत्थर से टकराया। पत्थर से टकराने पर वह अपने साथी से बोला, अरे लगता है यार किसी कब्रिस्तान में आ गए, क्योंकि मैं अभी-अभी किसी पत्थर से टकराया हूं। लगता है किसी की कब्र का पत्थर है। जरा माचिस की तीली जला कर देखना तो कब्र किसकी है?
दूसरे ने जेब से माचिस निकाली और तीली जलाई। थोड़ी देर को प्रकाश हुआ
और तीली बुझ गई। एक तो नशा, फिर थोड़ी सी देर के लिए प्रकाश और तीली का बुझ जाना। दूसरे ने पहले से कहा, यार लगता है कि कोई अच्छी-खासी उम्र में मरा है। इस पर तो चार सौ बीस लिखा हुआ है। लगता है कोई बुजुर्ग की कब्र है। और बुजुर्ग भी कोई छोटे-मोटे नहीं, दिल्ली में कोई बड़े नेता जी रहे होंगे। नहीं तो चार सौ बीस की उम्र, ठीक चार सौ बीस की उम्र पाना बड़ा मुश्किल है। क्या गजब का आदमी रहा! ठीक समय पर मरा। जरा फिर से माचिस जला, जरा देख तो लें किसकी कब्र है! ठीक-ठीक नाम तो पता चल जाए। हो सकता है कोई अपना ही भाई-बंधु हो, अपना ही कोई बुजुर्ग हो।
फिर तीली जलाई गई, फिर प्रकाश हुआ और तीली बुझ गई। दूसरे ने दुख भरे स्वर में जवाब दिया, अरे-अरे, चार सौ बीस मील पुणे। मालूम होता है कोई बहुत

पुण्यात्मा आदमी की कब्र है--पुणे! बेचारे! परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दे।
तुम चल तो रहे हो, काम भी कर रहे हो, मगर होश में हो? होश का अर्थ समझते हो? एक-एक कृत्य सावधानी से किया जाए। चलो तो जानते हुए। महावीर ने कहा है, चले तो विवेक से, उठे तो विवेक से। बुद्ध ने कहा है, स्मृति क्षण भर को न खोए। श्वास भीतर जाए तो स्मरण रहे कि श्वास भीतर गई और श्वास बाहर जाए तो स्मरण रहे कि श्वास बाहर गई। श्वास-श्वास का भी बोध बना रहे! तो तुम्हारे भीतर इतनी बोध की अग्नि जलेगी कि तुम तो प्रज्वलित हो ही उठोगे, तुम तो आभामंडल से भर ही जाओगे, तुम्हें देख कर दूसरों के भीतर भी अभीप्सा पैदा होगी कि ऐसा आनंद हमें कैसे मिले!
और आज जितनी शुभ घड़ी है इतनी कभी न थी, क्योंकि सामूहिक नींद टूट गई है, अब सिर्फ व्यक्तिगत नींद तोड़ने का सवाल है। पहले तो व्यक्तिगत नींद तो थी ही, सामूहिक नींद भी थी। अब कम से कम सामूहिक नींद का बोझ हट गया है। अब तो सिर्फ व्यक्तिगत नींद है। तुम जरा करवट ले सको, जरा झकझोर सको अपने को, तो उठ आने में देर न लगेगी।
इधर मैं अनेक लोगों पर ध्यान के प्रयोग करके तुमसे कहता हूं यह। यह कोई सैद्धांतिक बात नहीं कह रहा हूं। अनेक लोगों पर ध्यान के प्रयोग करके तुमसे यह कह रहा हूं कि समय बहुत अनुकूल है। सच में हर पच्चीस सौ वर्ष में समय अनुकूल होता है। जैसे एक साल में पृथ्वी का एक चक्कर पूरा होता है सूरज का, ऐसे पच्चीस सौ साल में हमारा सूर्य किसी एक महासूर्य का एक चक्कर पूरा करता है और हर पच्चीस सौ साल के बाद संक्रमण की घड़ी आती है, संक्रांति की घड़ी आती है। पच्चीस सौ साल पहले बुद्ध हुए, महावीर हुए, लाओत्सु, कनफ्यूशियस, च्वांगत्सु, लीहत्सु, जरथुस्त्र, साक्रेटीज, सारी दुनिया ने बुद्ध पुरुष देखे पच्चीस सौ साल पहले। और उसके भी पच्चीस सौ साल पहले कृष्ण, मोजेज, ऐसे बुद्ध पुरुष देखे। फिर पच्चीस सौ साल बीत गए हैं, अब फिर संक्रांति की घड़ी करीब है।
और संक्रांति की घड़ी का अर्थ होता है जब सामूहिक नशा टूट जाता है, सिर्फ व्यक्तिगत नशे के तोड़ने की जरूरत रहती है। उसे तोड़ना बहुत कठिन नहीं है, आसान है। इससे ज्यादा आसान कभी भी न होगा। कभी ऐसा होता है कि नाव ले जानी हो उस पार तो पतवार चलानी पड़ती है; और कभी ऐसा होता है कि पतवार नहीं चलानी पड़ती, सिर्फ पाल खोल दो, हवा अपने आप नाव को उस तरफ ले जाती है। हर पच्चीस सौ साल में ऐसी घड़ी आती है जब पतवार बिना चलाए पार हुआ जा सकता है, सिर्फ पाल खोल दो। ऐसी ही शुभ घड़ी में तुम हो। इसका उपयोग कर लो। इसे चूके तो शायद पच्चीस सौ साल बाद दुबारा फिर ऐसा मौका मिले। पच्चीस सौ साल लंबा चूकना है। और चूकने की आदत सघन हो जाए तो फिर भी चूक सकते हो। जागो!

तीसरा प्रश्नः ओशो, जनता जिस ईश्वर को पूजती है वह ईश्वर और आपका ईश्वर क्या एक ही है?

अब्दुल लतीफ, वह एक कैसे हो सकता है! उसके एक होने का कोई उपाय नहीं। जनता यानी सोए हुए लोग; उन्होंने नींद में स्वप्न देखे हैं; ईश्वर भी उनकी एक स्वप्नवत कल्पना है।
मैं जिस ईश्वर की बात कर रहा हूं वह कोई धारणा नहीं है, न कोई कल्पना है, न कोई विचार है, न कोई दार्शनिक प्रस्तावना है। मैं तो उस ईश्वर की बात कर रहा हूं जो है--जो मौजूद है--जो वृक्षों में हरा है, फूलों में लाल है; जो हवाओं में अदृश्य है; जो पहाड़ों में सिर उठाए खड़ा है, ध्यानस्थ; जो नदियों में तरंगित है; जो समुद्र की लहरों में निनाद कर रहा है; जो तुम्हारे भीतर मौजूद है; जो मेरे भीतर मौजूद है। मेरे लिए ईश्वर अस्तित्व का पर्यायवाची है। इसलिए मेरे साथ तो नास्तिक होने का उपाय ही नहीं है।
मेरे पास नास्तिक आ जाते हैं, वे कहते हैं, क्या हम भी संन्यासी हो सकते हैं? मैं उनको कहता हूं, जरूर। वे कहते हैं, लेकिन हम नास्तिक हैं, नास्तिक को कौन संन्यास में स्वीकार करेगा! मैं उनसे कहता हूं, मैं

स्वीकार करता हूं! क्योंकि मेरा ईश्वर अस्तित्व का पर्यायवाची है। तुम अस्तित्व को तो मानते हो न! चांद-तारों को मानते हो?
वे कहते हैं, हां।
नदी-पहाड़ों को मानते हो?
वे कहते हैं, हां।
मुझे मानते हो? स्वयं को मानते हो?
वे कहते हैं, हां। यह सब तो है। हम तो उस ईश्वर को नहीं मानते जो न दिखाई पड़ता, न जिसको सिद्ध किया जा सकता।
मैं उनसे कहता हूं, उस ईश्वर को मैं भी नहीं मानता हूं। मैं तो इस सारी समग्रता को ही ईश्वर कहता हूं। आओ, मेरे मंदिर के द्वार नास्तिक के लिए खुले हैं--वैसे ही जैसे आस्तिक के लिए खुले हैं। मंदिर की कोई शर्त हो सकती है? मंदिर की यह शर्त हो सकती है कि आस्तिक होओगे तब आना? मंदिर तो यह कह सकता है कि आ जाओ तो आस्तिक हो जाओगे। अगर आस्तिक पहले से ही हो तो आने की जरूरत ही क्या रही!
अगर चिकित्सक अपने द्वार पर यह तख्ती लगा दे कि जब स्वस्थ हो जाओ तभी आना, क्योंकि मैं सिर्फ स्वस्थ लोगों की चिकित्सा करता हूं, तो उस चिकित्सक को हम पागल कहेंगे। चिकित्सक के द्वार पर तो बीमार ही जाएंगे। हां, स्वस्थ होकर निकलेंगे।
मैं उनको कहता हूं, नास्तिक हो, आओ! यह द्वार तुम्हारे लिए है। ईश्वर
को नहीं मानते, आओ! आत्मा को नहीं मानते, आओ! क्योंकि मैं, जो नहीं मानता है, उसमें थोड़ा बल देख रहा हूं--बजाय उसके, जो मानता है। मानता है, वह तो निर्बल है; वह तो कमजोर है, कायर है; वह तो दूसरों के दबाव में आ गया। उसका ईश्वर क्या है सिवाय उसके भय के विस्तार के! घबड़ा रहा है, डर रहा है, ईश्वर को मान लिया है। मौत करीब आ रही है, ईश्वर को मान लेता है। जवानी में लोग ईश्वर की उतनी फिक्र नहीं करते, बुढ़ापा आते-आते मानने लगते हैं। बुढ़ापा आते-आते नास्तिक नहीं बचते।
कुछ दुनिया में अजीब चीजें घटती हैं। तीस साल के बाद का हिप्पी नहीं मिलेगा; कि मिलेगा? बस तीस साल होते-होते हिप्पी खत्म हो जाता है। शादी- वादी हो गई, बच्चे हो गए, फिर कैसे हिप्पी! फिर दुकान करो, नौकरी करो, गए पुराने दिन। हिप्पियों में कहावत है कि तीस साल से ज्यादा उम्र के आदमी का भरोसा ही मत करना, क्योंकि तीस साल के बाद का आदमी असली आदमी होता ही नहीं। हिप्पी ही नहीं होता तो आदमी कैसे होगा?
जवानी में तुम्हें नास्तिक मिल जाएंगे। अगर नहीं भी होंगे नास्तिक तो
कम से कम ईश्वर की कोई फिक्र नहीं करने वाले लोग मिल जाएंगे। लेकिन बुढ़ापा जैसे आएगा, पैर जैसे कंपेंगे, वैसे-वैसे लोग ईश्वर को मानने लगते हैं।
यह ईश्वर का मानना नहीं है; यह सिर्फ भय है। यह मौत द्वार पर आ रही है; पता नहीं मौत के बाद ईश्वर का साक्षात्कार हो तो फिर क्या होगा! कहीं ईश्वर हुआ ही तो फिर क्या होगा!
मेरे एक शिक्षक नास्तिक थे। दर्शन-शास्त्र के अध्यापक थे। जब बीमार पड़े तो मैं उनके घर गया देखने। बड़ा हैरान हुआ, उन्होंने तो रामचंद्र जी की तस्वीर लगा रखी है अपने कमरे में! मैंने उनसे पूछा, आपका कमरा और रामचंद्र जी की तस्वीर! यह तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था। उन्होंने कहा, जब बूढ़े होओगे तब जानोगे। मैंने कहा, फिर भी कुछ इशारा तो मुझे दें। उन्होंने कहा, बात साफ है। जिंदगी भर मैंने ईश्वर को नहीं माना। अब भी कह नहीं सकता ईमानदारी से कि मानता हूं, क्योंकि संदेह तो भीतर है। मगर अब जोर से कह नहीं सकता कि नहीं है ईश्वर, कौन जाने हो ही! अब मौत करीब आ गई, मरने के बाद कम से कम इतना तो रहेगा कि कह सकेंगे कि मरते वक्त तो याद कर लिया था। मरते वक्त तो तुम्हारी तस्वीर टांग ली थी।
यह देखते हो, यह आस्तिकता! इसका कोई मूल्य है? यह आस्तिकता नहीं, नपुंसकता है।
मैंने उनसे कहा, अगर कहीं कोई ईश्वर है तो तुम्हें देखने से भी इनकार
कर देगा। तुम यह तस्वीर उतारो। अगर ईश्वर है कहीं और मिले मौत के बाद, तो कहना, मैं क्या कर सकता हूं! संदेह तुमने दिया था, मैंने पैदा नहीं किया

था। और तुम कभी प्रत्यक्ष नहीं हुए जीवन में, मैं मानता तो कैसे मानता! और तुमने मुझे बल दिया था, विचार दिया था, सोचने की क्षमता दी थी, स्वीकार करता तो कैसे! डरना मत, हिम्मत से अपनी बात कह देना। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर कहीं कोई ईश्वर होगा तो तुम्हें छाती से लगा लेगा। कायरों की कहीं इज्जत होती है? कहीं कोई सम्मान होता है? सब सम्मान उनका है जिनका साहस अदम्य है।

निश्चित ही मैं जिस ईश्वर की बात कर रहा हूं, लतीफ, वह वही ईश्वर नहीं है जो गंडा-ताबीज खोजने वालों का ईश्वर है; जो मजारों और कब्रों पर उर्स मनाने वालों का ईश्वर है; जो कमजोरों का, भयभीतों का, लोभियों का ईश्वर है। जो मूर्च्छित व्यक्तियों का ईश्वर है, वह कैसे मेरा ईश्वर हो सकता है?

मेरा ईश्वर इस सारे जगत में व्याप्त है। मेरा ईश्वर जगत-विरोधी नहीं है। मेरा ईश्वर जगत का प्राण है। इस विश्व की जो धकधक है, वही मेरा ईश्वर है। कोयल जब गाती है तो मैं ईश्वर को सुनता हूं, और पपीहा जब पुकारता है तो मेरे कानों में उपनिषद और वेद और गीता और कुरान फीके पड़ जाते हैं। फूल जब खिलते हैं तो मैं जानता हूं ईश्वर खिला। और जब रात तारों से भर जाती है तो मैं जानता हूं ईश्वर ही अनंत-अनंत तारों में छितर गया है।

मेरा ईश्वर एक काव्य है। मेरा ईश्वर एक संगीत है। तुम्हें अगर मेरे ईश्वर से परिचित होना है तो प्रकृति के करीब आओ, क्योंकि मेरा ईश्वर प्रकृति में ही छिपा है; प्रकृति उसका घूंघट है। उठाओ घूंघट और तुम मालिक को पाओगे। जहां भी घूंघट उठाओगे उसी को पाओगे।

जीसस ने कहा है, उठाओ पत्थर और तुम मुझे पाओगे; तोड़ो लकड़ी और तुम मुझे पाओगे। वही मैं तुमसे कहता हूं।

लेकिन लोग अपनी-अपनी समझ से जीते हैं। अंधे की समझ प्रकाश के संबंध में क्या होगी? और बहरे की समझ संगीत के संबंध में क्या होगी?

मुल्ला नसरुद्दीन गया था शास्त्रीय संगीत सुनने। नहीं माने पड़ोस के लोग, कहा कि टिकट भी हम ले लेंगे, मगर चलो मुल्ला, एक दफा तो जीवन में सुन लो। गाली-गलौज ही सुनते रहे, शास्त्रीय संगीत सुन लो! कि ऐसे ही मर जाओगे? बड़ा कलाकार आया है।

नहीं माने लोग। मुल्ला ने तो बहुत कहा कि भई मुझे कुछ लेना-देना नहीं, क्या शास्त्रीय, क्या संगीत! मैं तो अपने मजे में हूं। शतरंज बिछा कर बैठा था कि मित्र आते ही होंगे; हुक्का लगा कर बैठा था, गुड़गुड़ाने की तैयारी थी। और तुम कहां का शास्त्रीय संगीत उठा लाए!

नहीं माने तो गया, घसिटता हुआ गया। मित्र तो बड़े हैरान हुए, जब संगीतज्ञ आलाप भरने लगा, खूब आलाप भरने लगा, तो मुल्ला की आंखों से एकदम टप-टप आंसू गिरने लगे। मित्रों ने कहा, अरे नसरुद्दीन, हमने तो कभी सोचा नहीं था कि तुम भी और शास्त्रीय संगीत के ऐसे प्रेमी! हमारी आंखें गीली नहीं हुईं और तुम्हारी आंखों से टपटप आंसू गिर रहे हैं!

अरे, उसने कहा, शास्त्रीय संगीत की ऐसी की तैसी! यह आदमी मरेगा! ऐसा ही आऽऽ आऽऽ आऽऽ करते मेरा बकरा मर गया था। रात भर शास्त्रीय संगीत करता रहा था, सुबह मर गया बेचारा। इसका इलाज करो भाइयो, क्या बैठे आऽऽ आऽऽ सुन रहे हो! आंसू मेरे गिर रहे हैं कि यह बेचारा, इसकी पत्नी होगी, बाल-बच्चे होंगे, गया काम से। इसको शास्त्रीय संगीत कहते हैं?

समझ तो अपनी होगी।

प्रेमी ने अपनी प्रेयसी से कहा, वाकई प्रतीक्षा की घड़ियां बहुत खराब होती हैं। प्रेमिका तुरंत बोली, किसने कहा था कि प्रतीक्षा की घड़ी खरीदो! मेरी मां कहती है कि सीको घड़ी सबसे बढ़िया होती है।

पत्नी गुस्से में पति से बोली, मुझे मालूम हुआ है कि दफ्तर की टाइपिस्ट के साथ तुम्हारे संबंध अच्छे नहीं हैं। पति ने समझाया, तुमने बिल्कुल ठीक सुना है। पर बहुत दिन से मैं उससे अपना संबंध मधुर बनाने का प्रयास करता आ रहा हूं, सफलता मिलती ही नहीं।

मेरा ईश्वर तो तुम तभी जान सकोगे जब मेरी ही अंतर्दशा में आओगे, उसके पहले नहीं। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, गीता समझनी हो तो कृष्ण बनना पड़ेगा, उसके पहले संभव नहीं। और धम्मपद का राज खुलेगा जब बुद्धत्व

तुम्हारे भीतर खिलेगा। और जिस दिन तुम जीसस की क्राइस्ट अवस्था को उपलब्ध होओगे, उस दिन बाइबिल के वचनों में कमल ही कमल खिल जाते हैं। एक-एक वचन में हजार-हजार कमल! जिस दिन तुम जान सकोगे मोहम्मद की मस्ती, उस दिन कुरान की आयतों की तरन्नुम तुम्हारी श्वास-श्वास में भर जाएगी। फिर कुरान में जो संगीत है उससे तुम्हारा स्पर्श होगा; उसके पहले संभव नहीं है।
अब्दुल लतीफ, तुम्हारा ईश्वर बस तुम्हारा ही ईश्वर होगा न! तुम जैसे
हो वैसा ही होगा न!
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक दिदरो ने लिखा है, अगर घोड़े ईश्वर की प्रतिमा बनाएं तो घोड़े की ही प्रतिमा बनाएंगे वे; आदमी की तो कभी नहीं बना सकते, कभी भूल कर नहीं बना सकते। आखिर आदमी ने घोड़ों के साथ जो व्यवहार किया है, उसको भी तो ध्यान में रखेंगे। घोड़ों की छाती पर चढ़ा रहा है आदमी सदियों से, इसको ईश्वर मानेंगे? उनका ईश्वर कोई सुंदर घोड़ा, घोड़े की ही कोई महिमाशाली प्रतिमा बनाएंगे वे। यह बिल्कुल ठीक ही है।
मैंने सुना है, पेरिस में एक परिवार रहता था। बाप अपने बेटे को लेकर रोज बगीचा घूमने जाता था। बगीचे में नेपोलियन की प्रतिमा थी--घोड़े पर सवार! शानदार घोड़ा, दो पैर आकाश में उठाए, उस पर बैठा हुआ नेपोलियन। बड़ी कलात्मक कृति थी। बेटा रोज अपने बाप को कहता था कि चलो नेपोलियन को देखें। बाप उसे रोज नेपोलियन की मूर्ति के पास ले जाता था।
फिर बदली हुई बाप की। बदली के दिन बेटे ने कहा कि आज बगीचा न चलिएगा? आखिरी बार नेपोलियन को देख आएं। बाप इनकार न कर सका, ले गया बेटे को। उस दिन बाप ने पूछा कि तुझे नेपोलियन से इतना लगाव क्यों है? तू नेपोलियन के संबंध में क्या समझता है? तूने नेपोलियन के संबंध में कुछ सुना, पढ़ा? नेपोलियन कौन था?
तो उसने कहा, नेपोलियन कौन था, इसकी मुझे फिक्र नहीं। मैं तो यह पूछना चाहता हूं आपसे--कभी मौका ही नहीं आया--कि नेपोलियन के ऊपर यह कौन चढ़ा बैठा है?
उस लड़के के लिए तो वह घोड़ा नेपोलियन था। वह तो नेपोलियन घोड़े को मानता था। कहता था, मेरे मन में सवाल तो कई दफे उठा, पर मैंने कहा कि क्यों आपको परेशान करूं! यह कौन चढ़ा बैठा है नेपोलियन के... इसको उतार क्यों नहीं देते? नेपोलियन थक गया होगा इसको ढोते-ढोते।
छोटे बच्चे का नेपोलियन घोड़ा है। हम अपनी समझ के पार नहीं जा सकते। हमारी समझ के पार हमारा ईश्वर नहीं हो सकता। हमारी समझ के पार हमारा सत्य नहीं हो सकता। हम दर्पण हैं। अगर हमारा दर्पण गंदा है तो जो भी उसमें झलकेगा गंदा हो जाएगा। अगर हमारे दर्पण पर धूल जमी है तो जो भी झलकेगा धूल उसमें बाधा डालेगी।
तुम ईश्वर की फिक्र छोड़ो, तुम दर्पण की धूल झाड़ो। तुम दर्पण को शुद्ध करो। तुम इस मन के दर्पण को बिल्कुल निश्छल करो। और तब तुम जानोगे, प्रतिबिंब बनेगा तुममें परमात्मा का। वह मेरा ईश्वर है। वह कोई धारणा नहीं है--अनुभव है, अनुभूति है।
बस्तियां कैसे हुईं मैदान यह प्यारे न पूछ
इस अंधेरे के सफर में चांद या तारे न पूछ
एक टूटी रीढ़ की हड्डी सरीखे जश्न पर
क्यों उड़ा करते यहां रंगीन गुब्बारे न पूछ
उनकी महफिल में जले हैं शमा रात भर
दिन में क्यों रहते अंधेरे तेरे घर-द्वारे न पूछ
भूख या भूचाल या तूफान आंधी से
नहीं क्यों मरे हैं लोग अनगिन खौफ के मारे न पूछ
अब तो कानी आंख के मेले लगे चारों तरफ
ऐसी बदहाली में साथी नैन रतनारे न पूछ
जहां कानों का मेला लगा हो वहां तुम रतनारे नैनों की चर्चा ही मत करना। जहां अंधों का मेला लगा हो वहां आंखों की बात ही मत उठाना। उनकी आंख की धारणा निश्चित ही गलत होगी, गलत ही हो सकती है।
अब तो कानी आंख के मेले लगे चारों तरफ

ऐसी बदहाली में साथी नैन रतनारे न पूछ
और लोगों का भगवान है क्या सिवाय भय के?
भूख या भूचाल या तूफान आंधी से नहीं
क्यों मरे हैं लोग अनगिन खौफ के मारे न पूछ
और ध्यान रखें, जिसका भय मिट गया उसकी मृत्यु मिट गई। भय है तो मृत्यु है। भय है तो कैसा भगवान? और जहां भय है वहां प्रेम नहीं। भय है तो कैसा प्रेम? भय के मिटते ही प्रेम का आविर्भाव है या प्रेम का आविर्भाव हो तो भय मिट जाता है। प्रेम और भय साथ-साथ नहीं रहते। भयभीत होकर मत झुकना किसी मूर्ति के सामने, अन्यथा तुम्हारा झुकना झूठा है। शरीर की कवायद भला हो जाए, लेकिन प्राणों में कोई ज्योति न जलेगी। और भय ही लोगों को चला रहा है। मैंने सुना है, एक सूफी कहानी है। एक सूफी फकीर, जुन्नैद, एक गांव के बाहर रहता था, बगदाद के बाहर। एक दिन सुबह-सुबह उसने देखा कि मौत चली आ रही है। जुन्नैद ने कहा, रुक! यहां तेरे आने की क्या जरूरत? बगदाद में प्रवेश करने की क्या जरूरत? मौत ने कहा कि क्षमा करें, आप तो पहुंचे हुए परमहंस हैं, आपसे क्या छिपाना! इस गांव में पांच सौ आदमियों को ले जाना है। पांच सौ आदमियों की मौत निश्चित हो गई है। मैं उन्हें लेने आई हूं।
फकीर ने कहा, फिर ठीक, जो निश्चित है वह होगा। मौत भीतर चली गई।
सात दिन बाद वापस लौटी। जुन्नैद बड़ा नाराज था। जब मौत वापस आई तो उसने कहा, रुक! लेकिन मैंने यह आशा न की थी कि तू झूठ बोलेगी। तूने कहा था पांच सौ आदमी और पांच हजार मर गए।
उसने कहा, मैंने तो पांच सौ ही मारे, साढ़े चार हजार घबड़ाहट में मर गए। उनका मेरे ऊपर कोई दोष नहीं है।
लोग बिल्कुल भयभीत हैं, भय के कारण कहीं भी झुक जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में झुके हैं यही लोग; यही लोग स्टैलिन, हिटलर, माओ के सामने झुक जाते हैं। इन्हें कहीं भी झुका लो, ये भय से भरे लोग बस झुकने को तत्पर हैं। ये असल में तलाश करते हैं कि कोई झुका ले। इन्हें कमर सीधी रखना मुश्किल हो रहा है। ये कहीं घुटने टेकने को आतुर हैं। इनका बहाना कुछ भी हो, मगर ये घुटने टेकना चाहते हैं। ये खुशामद करना चाहते हैं। इनकी प्रार्थनाएं, इनकी स्तुतियां खुशामदों से ज्यादा नहीं हैं।
अब्दुल लतीफ, मेरा ईश्वर मंदिर-मस्जिद का ईश्वर नहीं है, न ही समाधि- मजार का। मेरे ईश्वर की कोई प्रतिमा नहीं है, क्योंकि सभी प्रतिमाएं उसकी हैं। मेरे ईश्वर का कोई रूप नहीं है, क्योंकि सभी रूप में वही है। मेरे ईश्वर का कोई आकार नहीं है, क्योंकि सभी आकारों में वही निराकार समाया है। लेकिन मेरे ईश्वर से पहचान करनी हो तो बाहर जाने से नहीं होगी, भीतर जाने से होगी। मेरा ईश्वर अंतर्यात्रा में मिलेगा, अंतिम यात्रा की जो अंतिम मंजिल है, जहां तुम अपने में लीन होकर रह जाओगे। अगर एक क्षण को भी तुम अपने में लीन हो जाओ, डूब जाओ, बिल्कुल रोआं-रोआं डूब जाए, कुछ भी बचे नहीं अनडूबा, तो तुम जानोगे कि मैं किस ईश्वर की चर्चा कर रहा हूं। और उसे जानते ही मुक्ति है। उसे जानते ही मोक्ष है।
लोगों ने जिस ईश्वर को मान रखा है, सुना-सुनाया है--शास्त्रों से, शास्त्रज्ञों से। जिनसे तुमने सुना है, उनको भी पता नहीं है। जिनसे उन्होंने सुना है, उनको भी पता नहीं है। लोग सदियों-सदियों से ढो रहे हैं उधार। और हर आदमी उस उधारी को बिगाड़ता जाता है, क्योंकि हर आदमी उसमें कुछ न कुछ जोड़ता चला जाता है। हर आदमी उसमें कुछ न कुछ अपनी कला भी दिखाता है। नसरुद्दीन का बेटा फजलू स्कूल से चार नये शब्द सीख आया--दारू, हुक्का, रंडी और उल्लू का पट्ठा। वह बारंबार इनके अर्थ पूछे। इस डर से कि कहीं बेटा बिगड़ न जाए, नसरुद्दीन ने दारू का अर्थ चाय, हुक्का का अर्थ काफी, रंडी यानी भिंडी की सब्जी, और उल्लू का पट्ठा यानी मेहमान बतला दिया। दूसरे ही दिन एक विचित्र घटना घटी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। फजलू बाहर बरामदे में बैठा था, तभी नसरुद्दीन का कोई परिचित उससे मिलने आया। फजलू ने कहा, आओ उल्लू के पट्ठे, कुर्सी पर बैठो। मित्र तो यह सुन कर हैरान रह गया। बोला, तुम्हारे पापा कहां गए? फजलू ने कहा, पापा? अरे वे

बाजार गए हैं रंडी खरीदने। आजकल उन्हें रंडी बहुत भाती है। वे आते ही होंगे।
फजलू ने अपने नये शब्द-भंडार का उपयोग करने का अच्छा अवसर देख कर कहा,
आप हुक्का पीना पसंद करते हैं या दारू लेकर आऊं?
वह मित्र तो यह सुन कर हक्का-बक्का रह गया, घबड़ाते हुए बोला, फजलू, कैसी उलटी-सीधी बातें कर रहे हो तुम? तुम्हारी मम्मी कहां हैं? उन्हीं को बुला कर लाओ। तब तक पापा भी आते होंगे।
फजलू ने दरवाजे के भीतर झांक कर आवाज लगाई, मम्मी, एक उल्लू का पट्ठा आया है। मैंने हुक्का-दारू की पूछी तो कुछ नहीं बोला। कहता है उलटी-सीधी बातें मत करो; जब तक पापा रंडी वगैरह लेकर नहीं आते, तब तक तुम्हारी मम्मी को ही बुला दो।
शास्त्रों से तुमने जो सीखा है बस ऐसा ही है--बड़ा दूर, सत्य से बहुत दूर, हजार-हजार कोस दूर। पंडितों से तुमने जो सुना है वह ऐसा ही है। वह असत्य तो हो सकता है, सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य तो केवल उसके पास उपलब्ध हो सकता है जिसे उपलब्ध हो। सत्य तो सत्संग में मिलता है--अध्ययन में नहीं, मनन में नहीं, चिंतन में नहीं--ध्यान में मिलता है। सत्य तो सदगुरु में डुबकी लगाने से मिलता है।
अब्दुल लतीफ, कब तक पूछते रहोगे? अब डूबो! बहुत समय गंवाया पूछ-पूछ कर; पूछ-पूछ कर कुछ भी न मिलेगा। यहां ईश्वर घटित हो रहा है। तुम जरा अपने हृदय के द्वार खोलो। तुम जरा मौन में मुझे समझो। तुम मुझे अपने भीतर आने दो या तुम मेरे भीतर आओ। मेरा हाथ अपने हाथ में लो। मेरी आंखों में झांको। यह जो नृत्य, यह जो उत्सव यहां निर्मित हो रहा है; यह जो महोत्सव यहां अपने आप बनता जा रहा है; यह जो रंग-गुलाल यहां उड़ रही है--इसमें भागीदार बनो। अब्दुल लतीफ, संन्यास का क्षण आ गया! रंगो मेरे रंग में, तो जानोगे कि मेरे ईश्वर का क्या अर्थ है। उसके अतिरिक्त जानने का कोई उपाय नहीं है।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र नौवां प्रवचन

वेणु लो, गूंजे धरा

पहला प्रश्नः ओशो, आपका मूल संदेश क्या है?

आनंद, आनंद ही मेरा मूल संदेश है। सदियों-सदियों से धर्म उदासी, दुख, निराशा, हताशा, निषेध और नकार का पर्यायवाची हो गया है; उस कारागृह से धर्म को मुक्त करना है। धर्म पृथ्वी-विरोधी हो गया है। धर्म देह-विरोधी हो गया है। धर्म उस सब के विरोध में हो गया है--जो है। और धर्म ने ऐसे सपने संजोए हैं स्वर्ग के, परलोक के, कि जो मात्र सपने हैं, जो सिर्फ प्रलोभन हैं, जो सरासर झूठ हैं। जो है उसका इनकार और जो नहीं है उसका सत्कार--ऐसी अब तक धर्म की तर्क-सरणी रही है।
मैं उस पूरी तर्क-सरणी को तोड़ देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि धर्म पृथ्वी के प्रेम में पड़े। देह आत्मा-विरोधी नहीं है; देह आत्मा का मंदिर है। सम्मान दो उसे, सत्कार दो उसे; क्योंकि देह के मंदिर में परमात्मा विराजमान है।
और पृथ्वी जीवन का आधार है। जीवन की जड़ें पृथ्वी में गहरी गई हैं, जैसे वृक्षों की जड़ें गहरी गई हैं। और जीवन के जो महत्तम फूल खिले हैं-- बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद--उन सब में जो सुगंध है वह पृथ्वी की ही गहराइयों से आई है। वह इस जगत की ही सुगंध है; दूसरा कोई जगत है ही नहीं। यही एकमात्र अस्तित्व है; दूसरा कोई अस्तित्व है ही नहीं।
दूसरे अस्तित्व की ईजाद पंडित-पुरोहितों ने की। और क्यों की, उसके कारण को समझ लेना चाहिए। इस जगत में तो मनुष्य को सुखी वे नहीं कर पाए। इस जगत में तो मनुष्य के जीवन के लिए गौरव और गरिमा न दे पाए। इस जगत में तो मनुष्य के जीवन को अर्थ और काव्य न दे पाए। तो एक ही उपाय थाः इस जगत की अंधेरी रात को झेलने के लिए किसी भविष्य के सवेरे की प्रशंसा की जाए। मनुष्य को परलोकवाद दिया जाए।
और जो मर गया वह लौट कर कहता तो नहीं कि क्या हुआ; इसलिए पंडित, पुरोहित सुरक्षित था। मुर्दे लौटते नहीं, खबर देते नहीं। और उसका धंधा, मृत्यु के बाद जो है, उस पर निर्भर है। और उसकी इस साजिश में राजनीतिज्ञ भी सम्मिलित हो गए, क्योंकि यह उनके भी हित में था। मनुष्य को किसी तरह सांत्वना दी जाए। कैसे ही झूठ हों, लेकिन मनुष्य को संतोष दें। क्योंकि मनुष्य जब संतुष्ट हो जाता है तो क्रांति-शून्य हो जाता है। जहां सांत्वना है वहां क्रांति की आग बुझ जाती है। वहां अंगार नहीं रह जाती आत्मा में; वहां राख ही राख रह जाती है।
इसीलिए यह देश, जो सर्वाधिक लंबे अरसे तक धार्मिक रहा है, सबसे बुझा हुआ देश है। इसकी आत्मा में राख ही राख है। सब से मरा हुआ देश है। कारण? सदियों-सदियों तक पंडित ने और राजनेता ने संयुक्त रूप से मनुष्य को जहर पिलाया है।
मेरी चेष्टा है, यह शड्यंत्र टूटे, यह रात टूटे, यह अंधेरे का तिलिस्म टूटे। यहीं सुबह तलाशनी है--इसी पृथ्वी पर, इसी जीवन में! और अगर होगा कोई जीवन इसके बाद तो जो इस जीवन में आनंद खोज सकता है वह उस जीवन में भी आनंद खोज सकेगा। क्योंकि आनंद खोजने की कला जिसे आ गई, तुम उसे नरक में भी डाल दो तो वहां भी आनंद खोज सकेगा। और जिसे आनंद खोजने की कला न आई वह स्वर्ग में पहुंच कर भी क्या करेगा?
तुम्हारे तथाकथित महात्मा अगर स्वर्ग में भी पहुंच जाएं तो क्या करेंगे? स्वर्ग भी उन्हें दुख ही देगा। जीवन भर तो उन्होंने दुख का ही अभ्यास किया। जो धूप में खड़े रहे और शरीर को गलाया और सड़ाया, वे कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे? उनकी जीवन भर जन्मों-जन्मों की आदत उन्हें कल्पवृक्षों के नीचे बैठने देगी? नहीं; वे वहां भी कांटों का बिस्तर बना लेंगे। जिन्होंने कभी गीत नहीं गाए, जो नाचे नहीं, जिन्होंने कभी इकतारा न

उठाया, स्वर्ग में अचानक तुम सोचते हो वीणावादक हो जाएंगे वे? बांसुरी बजाने लगेंगे? नृत्य में लीन हो जाएंगे? रास का जन्म होगा?
तो तुम्हें फिर मनुष्य के मन का गणित नहीं आता।
गरीब आदमी को अमीर भी बना दो तो भी वह अमीर नहीं हो पाता, गरीब ही रहता है। उसके सोचने, समझने, विचारने, जीने की शैली गरीब की होती है। इसीलिए तो तुम्हें धनी आदमियों में इतने कंजूस आदमी मिलते हैं। कंजूस का अर्थ क्या होता है? कंजूस का अर्थ होता हैः बाहर तो धन है, मगर भीतर गरीबी की आदत है। धन तो है, लेकिन धन पर मुट्ठी बांध ली उसने।
और धन मर जाता है जब उस पर तुम मुट्ठी बांधते हो। धन तो जीवित रहता है अगर चले। इसलिए अंग्रेजी में उसके लिए ठीक शब्द है--करेंसी! करेंसी का अर्थ होता है जो चलता रहे, बहता रहे, धारा बनी रहे जिसकी। सिक्का तो वही है जो चले; जिस पर मुट्ठी बंध गई वह मिट्टी हो गया।
एक कंजूस आदमी ने अपने बगीचे में सोने की ईंटें गड़ा रखी थीं। सोने की ईंटें गड़ाने को नहीं होतीं, लेकिन गरीबी की आदतें कैसे पीछा छोड़ें? अब भी गरीब की तरह ही रहता था; सोने की ईंटें उसके पास थीं, मगर रहता गरीब की तरह था। और अपनी गरीबी को भी आदमी अच्छे-अच्छे तर्कों से ढांक लेता है। वह कहता था, मैं सीधा-सादा आदमी, सादगी पसंद हूं।
सादगी पसंद हो तो सोने की ईंटों को छोड़ो। तुम्हारी सादगी सोने की ईंटें छोड़ने नहीं देती। लेकिन सादगी के नाम पर तुम सोने की ईंटों को भोग भी नहीं पाते।
उसका भोग केवल इतना था कि हर रोज सुबह जाकर खोद कर जमीन को अपनी ईंटों
को देख लेता था, आनंदित हो लेता था, फिर ढांक देता था। एक पड़ोसी यह रोज देखता था कि कुछ मामला है। एक रात घुस गया उसके बगीचे में, खोदा तो सोने की ईंटें थीं। उसने ईंटें तो निकाल लीं सोने की, उनकी जगह साधारण मिट्टी की ईंटें रख दीं।
दूसरे दिन जब कंजूस ने खोदा तो वहां सोने की ईंटें नदारद थीं, मिट्टी
की ईंटें थीं। वह तो एकदम चिल्लाने लगा कि हाय लुट गया, बचाओ मुझे! पड़ोसी इकट्ठे हो गए, वह पड़ोसी भी आ गया जिसने सोने की ईंटें ली थीं। लोग उसे सलाह देने लगे कि अब घबड़ाओ मत। उस पड़ोसी ने कहा, क्या फर्क पड़ता है तुम्हें? रोज सुबह खोद कर इन्हीं ईंटों को देख लिया करो। ईंटें सोने की हैं या मिट्टी की, तुम्हें फर्क क्या पड़ता है? तुम्हारा काम इतना है कि रोज खोद कर देखना और ढांक देना। मिट्टी की ईंटें भी काम दे देंगी। तुम्हें सोने की ईंटों का कोई उपयोग तो करना नहीं है।
दुनिया में धन पाकर लोग धनी नहीं होते, कृपण हो जाते हैं, कंजूस हो जाते हैं; गरीबी की जकड़ गहरी है। और गरीबी को खूब अच्छा बाना पहनाते हैं, सुंदर बाना पहनाते हैं--सादगी! सरलता!
जो लोग मर कर अगर स्वर्ग में भी पहुंच गए और यहां जिन्होंने केवल दुख
का अभ्यास किया था--तुम्हारे साधु-संन्यासी, महात्मा, मुनि--ये अगर भूल-चूक से किसी तरह स्वर्ग में पहुंच भी जाएं! पहुंच तो नहीं सकते, इनके लिए तो स्वर्ग के द्वार निश्चित ही बंद होंगे। और अगर ये स्वर्ग पहुंचते रहे होंगे अब तक तो इतने साधु-महात्मा, इतने उदास, इतने हताश लोग वहां इकट्ठे हो गए होंगे कि स्वर्ग अब नरक से बदतर होगा। ये वहां करेंगे क्या?
उमर खय्याम ठीक कहता है कि तुमने यहां तो शराब पी ही नहीं कभी। स्वर्ग में चश्मे भी बहते हैं शराब के तो क्या फायदा, तुम पहुंच कर पी सकोगे? पीने का भी अभ्यास चाहिए।
उमर खय्याम एक सूफी फकीर है; एक पहुंचा हुआ सिद्ध पुरुष है। उमर खय्याम को लोग बिल्कुल गलत समझे हैं। उमर खय्याम के संबंध में बड़ी भ्रांति हो गई। और भ्रांति हो गई अंग्रेजी अनुवाद से। उमर खय्याम की रुबाइयां जब फिटजराल्ड ने अंग्रेजी में अनुवादित कीं तो फिटजराल्ड ने उनका शाब्दिक अर्थ लिया--शराब यानी शराब।
सूफी फकीर शराब का अर्थ करते हैंः परमात्मा का प्रेम। पीओ उसे जितना
पी सको। आनंद, उल्लास, मस्ती! उमर खय्याम एक पहुंचा हुआ सूफी फकीर है। उसने ये गीत अंगूर से ढाली जाने वाली शराब के पक्ष में नहीं लिखे हैं; आत्मा में

ढाली जाती है जो शराब, उसके पक्ष में लिखे हैं। ये रुबाइयां किसी भीतरी आनंद और नशे का संकेत करती हैं। मगर उसने बड़े मीठे तर्क दिए हैं। उसने कहा कि सुनो मौलवियो! सुनो त्यागी-तपस्वियो! अगर तुमने यहां शराब पीने का अभ्यास न किया तो जहां स्वर्ग में शराब की नदियां बहती हैं वहां तुम क्या करोगे? किनारों पर बैठे रोओगे! पीएंगे तो हम, क्योंकि हमारा यहां का अभ्यास वहां काम आ जाएगा।
अर्थ समझना! यहां जो आनंदित है वह स्वर्ग में भी आनंदित होगा। यहां जो आनंदित है वह कहीं भी हो तो आनंदित होगा। यह स्कूल है, पाठशाला है, प्रशिक्षण है जीवन।
मेरा संदेश हैः आनंद!
मेरा संदेश हैः उत्सव!
वेणु लो, गूंजे धरा, मेरे सलोने श्याम।
गूंजते हों गान, गिरते हों अमित अभिमान
तारकों-सी नृत्य ने बारात साधी है।
नष्ट होने दो सखे! संहार के सौ काम
वेणु लो, गूंजे धरा, मेरे सलोने श्याम।
मेरी तो एक ही प्रार्थना है और तुम्हारी भी यही प्रार्थना होनी चाहिए--
वेणु लो, गूंजे धरा, मेरे सलोने श्याम।
परमात्मा से कहोः उठाओ बांसुरी और बजाओ! मगर परमात्मा की बांसुरी तभी बजेगी जब तुम बांसुरी बजाओ। शायद उसकी बांसुरी तो बज ही रही है, लेकिन तुम्हारे कान बहरे हैं। शायद उसका आनंद तो बरस ही रहा है, लेकिन तुम्हारे हृदय के द्वार बंद हैं।
इस जगत की कीचड़ को कीचड़ कह कर ही निंदा मत करना; इस कीचड़ में कमल छिपे हैं। और जब इस कीचड़ में कोई कमल खिले तो कीचड़ को मत भूल जाना। कमल की प्रशंसा में ऐसा न हो कहीं कि कीचड़ को भूल जाओ! क्योंकि कमल कीचड़ की ही अभिव्यक्ति है।
बहुत दिन के बाद
व्योम का सुंदर सलोना रूप
झांकता है
बादलों के बीच से!
बहुत दिन के बाद
फिर खिली है
कली नीचे एक--
उठ कर कीच से!
कीचड़ में और कमल में कोई संबंध दिखाई पड़ता नहीं। मगर संबंध है। कीचड़
ही जन्मदात्री है, कीचड़ ही गर्भ है जिसमें कमल पकता है और प्रकट होता है। यह पृथ्वी माना कि कीचड़ है, मगर दूसरी बात भूल मत जाना कि इसमें कमल के प्रकट होने की संभावना पड़ी है। तुम्हारे साधु-महात्मा कीचड़ कह कर इसकी निंदा करते हैं। और उनकी निंदा इतनी गहन हो गई है कि तुम भूल ही गए कि यहां कमल भी छिपा है।
मैं तुम्हें कमल की याद दिलाना चाहता हूं। कीचड़ की निंदा में मत पड़ो, कमल की तलाश करो। और जिस दिन तुम कीचड़ में कमल को पा लोगे, उस दिन क्या कीचड़ को धन्यवाद न दोगे? उस दिन क्या देह को धन्यवाद न दोगे? उस दिन क्या इस पार्थिव जगत के प्रति अनुग्रह से न भरोगे? जिस पार्थिव जगत में परमात्मा का अनुभव हो सकता है, क्या उस पार्थिव जगत की निंदा की जा सकती है?
मैं तुम्हें संसार के प्रति प्रेम से भरना चाहता हूं। मैं चाहता हूं
कि तुम्हारे हृदय में संसार के निषेध की जो सदियों-सदियों पुरानी धारणाओं के संस्कार हैं, वे आमूल मिट जाएं, उन्हें पोंछ डाला जाए। वे ही तुम्हें रोक रहे हैं परमात्मा को देखने और जानने से। नाचो, तो तुम पाओगे उसे। नृत्य में वह करीब से करीब होता है। गुनगुनाओ, गाओ, तो वह भी गुनगुनाएगा तुम्हारे भीतर, गाएगा तुम्हारे भीतर।
छेड़ मधु-संगीत के स्वर

शब्द-तंत्र संवार लो!
ग्रंथि उर के फिर खुलें
शब्द-गति-लय-ताल झर-झर
निमिष में बन सुधि ढलें!
सरल हास-विलास
दीपक बार लो!
छेड़ मधु-संगीत के स्वर
शब्द-तंत्र संवार लो!
क्षितिज के उस पार तरणी खोल कल्पना की थकी पलकें मूंद
गीत-परिमल-सुरभि पल-पल घोल
मधुर-रव में अधर
पुनः पखार लो!
छेड़ मधु-संगीत के स्वर
शब्द-तंत्र संवार लो!
मैं गीत सिखाता हूं। मैं संगीत सिखाता हूं। मेरा संदेश एक ही है, आनंदः उत्सव, महोत्सव। और उत्सव-महोत्सव को सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता, केवल जीवनचर्या हो सकती है यह। तुम्हारा जीवन ही कह सकेगा। ओंठों से कहोगे, बात थोथी और झूठी हो जाएगी। प्राणों से कहनी होगी। श्वासों से कहनी होगी। और जहां आनंद है वहां प्रेम है; और जहां प्रेम है वहां परमात्मा है। मैं एक प्रेम का मंदिर बना रहा हूं। तुम धन्यभागी हो, उस मंदिर के बनाने में तुम्हारे हाथों का सहारा है। तुम ईंटें चुन रहे हो उस मंदिर की। तुम द्वार-दरवाजे बन रहे हो उस मंदिर के।
पृथ्वी से आनंद का मंदिर बहुत समय पहले विदा हो गया। हां, कभी कृष्ण
ने बांसुरी बजाई थी, तब रहा होगा। फिर न मालूम किस दुर्भाग्य की घड़ी में, न मालूम किस हताशा में, न मालूम किन नपुंसक लोगों के हाथों में हमने अपना जीवन दे दिया। थोथे पंडितों के हाथों में हमारा जीवन पड़ गया। उन्होंने हमारी गर्दन बुरी तरह फांस दी, लटका दिए शास्त्र बड़े-बड़े गर्दन से, कि चलना भी मुश्किल है नाचना तो दूर। और बड़े सिद्धांत हमारे कंठों में भर दिए कि कंठ अवरुद्ध हो गए हैं, गीत गाना संभव कैसे हो?
मैं तुम्हारे सारे शास्त्र, तुम्हारे सिद्धांत, तुम्हारे संप्रदाय,
सब छीन लेना चाहता हूं। मैं चाहता हूं तुम्हें निर्भार करना--ऐसे निर्भार कि तुम पंख खोल कर आकाश में उड़ सको। मैं तुम्हें आकाश देना चाहता हूं। मैं तुम्हें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध नहीं बनाना चाहता--मैं तुम्हें सारा आकाश देना चाहता हूं! और उड़ोगे तुम सूरज की तरफ तो ही तुम जान सकोगे वेदों का रहस्य, उपनिषदों की गरिमा, कुरान की महिमा, बाइबिल के रहस्य। तो ही तुम जान सकोगे कबीर, नानक, फरीद और इनका अदभुत लोक।
लेकिन यह जानना है अस्तित्वगत रूप से। मेरी बात मान नहीं लेनी है। मैं तुम में विश्वास नहीं जगाना चाहता। मैं तुम्हें अनुभव देना चाहता हूं। मैं तो अपनी सुराही से तुम्हारी प्याली में शराब ढालना चाहता हूं। अपनी प्याली साफ करो। अपनी प्याली मेरे सामने करो। डरो मत, मस्त होने से घबड़ाओ मत। निश्चित ही तुम मस्त होओगे तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। क्योंकि लोगों ने केवल पागलों को ही भर मस्त रहने की सुविधा छोड़ी है, और किसी को मस्त रहने की सुविधा ही नहीं छोड़ी। फिक्र न करना। लोग पागल भी समझें तो क्या बिगड़ता है? असली सवाल तो परमात्मा का है कि परमात्मा क्या समझता है। असली जवाब तो वहां देना है, लोगों से क्या लेना-देना है? लोगों ने पागल भी समझा तो ठीक है, अच्छा ही है।
मैंने सुना है, सूफी फकीर बायजीद से उसके एक शिष्य ने पूछा--एक शिष्य ने, जो स्वयं भी सिद्ध हो गया है, जो संबोधि को उपलब्ध हो गया है--उसने पूछा कि मैं क्या करूं? बड़ी मुश्किल हो गई! जब से लोगों को इसका सुराग लग गया कि मुझे ज्ञान हो गया है, बड़ी भीड़-भाड़ होती है। मुझे शांति से बैठने का क्षण भी नहीं मिलता। रात सो भी नहीं पाता, लोग मेरे पैर दबाते रहते हैं। दिन भर मेरे पीछे लगे रहते हैं। मैं क्या करूं?

बायजीद ने कहा, ऐसा कर, तू पागल का ढोंग कर। तू गालियां बकने लग, पत्थर फेंकने लग, लोगों को मारने लग। बस दो दिन में भीड़ छंट जाएगी।
और यही उसने किया और दो दिन में भीड़ छंट गई। भीड़ के पास आंखें थोड़े ही हैं। भीड़ ने समझा कि यह पागल है। वह आया और बायजीद के चरणों में झुका और उसने कहा कि धन्यवाद! नहीं तो ये तो मुझे सता ही डालते। अब कोई नहीं आता। अब तो हालत उलटी है। मैं अगर जाता हूं किसी की तरफ तो वह भाग निकलता है। लोग कहते हैं यह पागल हो गया है। मगर बड़ा अच्छा हुआ। अब मैं बीच बाजार में भी रहूं तो भी अकेला हूं, एकांत में हूं।
लोग पागल ही समझ लेंगे तो क्या हर्ज है? लोग वैसे भी किसी दूसरे को बुद्धिमान थोड़े ही समझते हैं। यहां प्रत्येक अपने को बुद्धिमान समझता है। वैसे भी लोग कहते हों या न कहते हों, दूसरों को तो लोग नासमझ ही समझते हैं। बहुत से बहुत कहने लगेंगे।
मगर आनंद को जीओ, चाहे कोई कीमत चुकानी पड़े। पागल समझे जाओ तो समझे जाओ। आनंद को जीओ! सूली लगे तो लग जाए। आनंदित मनुष्य को सूली भी लगे तो सिंहासन मिल जाता है। और दुखी आदमी सिंहासन पर भी बैठा रहे तो सूली ही रहती है, सिंहासन संभव नहीं है।
मेरा संदेश छोटा सा हैः आनंद से जीओ! और जीवन के समस्त रंगों को जीओ, सारे स्वरों को जीओ। कुछ भी निषेध नहीं करना है। जो भी परमात्मा का है, शुभ है। जो भी उसने दिया है, अर्थपूर्ण है। इसमें से किसी भी चीज का इनकार करना, परमात्मा का ही इनकार है, नास्तिकता है।
और तब एक अपूर्व क्रांति घटती है! जब तुम सबको स्वीकार कर लेते हो और आनंद से जीने लगते हो तो तुम्हारे भीतर रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू होती है। तुम्हारे भीतर की रसायन बदलती है--क्रोध करुणा बन जाती है; काम राम बन जाता है। तुम्हारे भीतर कांटे फूलों की तरह खिलने लगते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
जाने क्या ढूंढती रहती हैं निगाहें मेरी
राख के ढेर में न शोला है न चिनगारी।
जिंदगी में है तो बहुत कुछ, लेकिन जीत कर कुछ भी न मिला, कुछ न रहा। जिसकी आस किए बैठी हूं, वह बार-बार क्यों फिसल जाता है?

योग सुधा, जीवन के आधारभूत सूत्रों में एक सूत्र हैः यहां भिखमंगों
को कुछ भी नहीं मिलता, यहां सम्राटों को कुछ मिलता है। वासना भिखमंगापन है; निर्वासना सम्राट हो जाना है। जितना आकांक्षा करोगी उतना ही हाथ से फिसल-फिसल जाएगा। पारे की तरह हो जाएगी जिंदगी--सब बिखर जाएगा, जोड़ना असंभव हो जाएगा।
मांगो मत। आकांक्षा न करो, वासना न करो। वासना का अर्थ होता है आने वाला कल। वासना का अर्थ होता है भविष्य। वासना समय को पैदा करती है और समय संसार है।
इस क्षण को जीओ--इसकी प्रामाणिकता में, इसकी सघनता में, इसकी पूर्णता में। और तीव्रता से जीओ, त्वरा से जीओ! जीवन मिला है--मांगना क्या है और? इससे बड़ा और क्या मिल सकता है? चांद-सूरज हैं, वृक्ष हैं, फूल हैं, पक्षी हैं, लोग हैं--एक सुंदर अस्तित्व है। असंभव संभव हुआ है। और तुम जीवित हो! और तुम्हारे भीतर चैतन्य है! तुम्हें पता है कि तुम जीवित हो; यही चैतन्य है, यही आत्मा का सबूत है। जीवन का अनुभव, कि मैं जीवित हूं, कि मैं हूं, यही आत्मा का प्रमाण है। आत्मा का अर्थ होता हैः चेतना के प्रति चैतन्यता। मैं चेतन हूं, ऐसा बोध आत्मा है। और क्या चाहिए? आत्मा तुम्हारे पास, और यह सारा आकाश, और ये सारे चांद-तारे!
लेकिन हम कुछ मांग रहे हैं, हम कुछ आस लगाए बैठे हैं। तुम्हारी आशाएं पूरी नहीं होंगी। तुम्हारी आशाएं तुम्हें रोज-रोज दीन करती जाएंगी। सुधा, तू कहती हैः "जाने क्या ढूंढती रहती हैं निगाहें मेरी।"
सभी की निगाहें कुछ न कुछ ढूंढ रही हैं। और इसीलिए सभी की निगाहें खाली हैं, कुछ भी नहीं मिला। ढूंढना बंद करो, खोजना बंद करो। आंख बंद करो।

अपने में बैठो। अपने में ठहरो। खोजने में तो दौड़ जारी रहती है। दौड़ो मत। धन पाना हो तो दौड़ना पड़ता है, पद पाना हो तो दौड़ना पड़ता है; लेकिन अगर परमात्मा पाना हो तो रुकना पड़ता है, दौड़ना नहीं।
तू कहती हैः "जाने क्या ढूंढती रहती हैं निगाहें मेरी
राख के ढेर में न शोला है न चिनगारी।"
सच है यह बात। वह राख का ढेर क्या है? वह तुम्हारी पिछली अतीत की वासनाओं का ही तो ढेर है। उसी में टटोलते रहोगे, खोजते रहोगे।
अब बदलो, दिशा बदलो। अब खोजना बंद करो। अब खोना शुरू हो जाओ। अब आंख बंद करके अपने भीतर डुबकी लगाओ। और वहां जीवन की आग है जो कभी नहीं बुझती। और वहां ऐसी जीवन की चिनगारी है जो कभी राख नहीं होती। उसी चिनगारी का नाम आत्मा है। उसी चिनगारी से संबंध जुड़ गया तो परमात्मा की एक किरण से संबंध जुड़ गया। और एक किरण हाथ में आ गई तो पूरा सूरज हाथ में है; फिर दूर नहीं है सूरज।
मगर भीतर जाना है। तू बाहर तलाश रही है, जैसे सभी लोग बाहर तलाश रहे हैं। और बाहर कुछ भी नहीं है। और एक मजे की बात याद रखना, जिसको भीतर मिल गया, उसे फिर बाहर भी सब कुछ है। क्योंकि जिसको भीतर मिल गया, उसके लिए बाहर और भीतर का भेद गिर जाता है। उसके लिए सभी कुछ भीतर है। चांद-तारे उसके भीतर घूमते हैं। सूरज उसके भीतर उगता है। फूल उसके भीतर खिलते हैं। पक्षी उसके भीतर गीत गाते हैं। उसके भीतर विराट समा जाता है। जिसने स्वयं को जाना वह सर्व के साथ एक हो जाता है। उसके लिए बाहर और भीतर का फिर कोई भेद नहीं। बाहर और भीतर का भेद उनके लिए है जो बाहर हैं और जिन्होंने स्वयं को नहीं जाना है।
तू कहती हैः "जिंदगी में है तो बहुत कुछ, लेकिन जीत कर भी कुछ न मिला।"
जीत कर कभी किसी को कुछ नहीं मिला। जीत रास्ता ही गंवाने का है, पाने
का नहीं। जीत हार की सीढ़ियां बनती है। जीवन का गणित बड़ा बेबूझ है, उलटबांसी है। यहां हारो तो जीत, यहां जीतने की चेष्टा करो तो हार। हारे को हरिनाम! यहां जो हार गया, पूरी तरह हार गया, समर्पित हो गया--उसकी ही जीत है, उसकी महा जीत है! ऐसी जीत जो फिर छीनी नहीं जा सकती।
इसीलिए मैं संन्यास का अर्थ करता हूंः समर्पण। संकल्प नहीं, समर्पण।
बस संकल्प का एक ही उपयोग है कि समर्पण करा जाए। सारे संकल्प को इकट्ठा करके एक काम कर लो--समर्पित हो जाओ। सारे संकल्प को इकट्ठा करके अहंकार को विसर्जित कर दो। शून्यवत हो जाओ। फिर जीत ही जीत है।
लाओत्सु ने कहा हैः मुझे कोई हरा नहीं सकता।
किसी ने सुना कि लाओत्सु कहता है मुझे कोई हरा नहीं सकता, वह थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि लाओत्सु कोई पहलवान नहीं। उसने लाओत्सु को कहा कि तुम्हारी देह को तो मैं देखता हूं तो मैं सोचता हूं कोई भी हरा सकता है और तुम कहते हो तुम्हें कोई हरा नहीं सकता! इसी गांव में बड़े-बड़े पहलवान हैं जिन्हें क्षण न लगेगा और चारों खाने तुम्हें चित्त कर देंगे।
लाओत्सु ने फिर भी कहा कि मैं तुमसे कहता हूं, मुझे कोई नहीं हरा सकता। क्योंकि वे मुझे चित्त करेंगे उसके पहले ही मैं चित्त हो जाऊंगा। मैं खुद ही चित्त लेट जाऊंगा। मुझे हराओगे कैसे? मैं हारा ही हुआ हूं, मुझे हराओगे कैसे? मेरी जीत की कोई आकांक्षा ही नहीं है, मुझे हराओगे कैसे? मैं जीतना चाहता ही नहीं हूं। मैं जीतने की मूढ़ता को समझ चुका हूं। मुझे हराओगे कैसे?
यह बात सुनो, यह बात गुनो। यह बात गहरे उतर जाने दो। अगर तुम स्वयं हार गए, अस्तित्व के समक्ष, परमात्मा के समक्ष, तुम्हें कौन हराएगा? कैसे हराएगा?
लेकिन लोग जीतना चाहते हैं। जीतने वाला ऐसे ही है जैसे कोई नदी में धार के विपरीत बह रहा हो, धार के विपरीत जाने की चेष्टा में लगा हो। गंगा जा रही है समुद्र की तरफ और तुम जा रहे हो गंगोत्री की तरफ। हारोगे, निश्चित हारोगे। शायद दो-चार हाथ मार लो। शायद दो-चार हाथ तुम्हें ऐसा लगे कि अब जीते, अब जीते, मगर तुम्हारी हार निश्चित है।

वर्षा के दिन थे और गांव की नदी में बाढ़ आ गई थी। और लोग भागे हुए आए और मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, यहां बैठे क्या कर रहे हो, तुम्हारी पत्नी नदी में गिर गई! बाढ़ भयंकर है, किसी की हिम्मत हो भी नहीं रही। अब तो तुम्हारी ही अगर इच्छा हो तो कूदो और बचाओ।
मुल्ला एकदम भागा हुआ आया, कपड़े भी नहीं उतारे, एकदम नदी में कूद पड़ा
और लगा ऊपर की तरफ तैरने। भीड़ इकट्ठी हो गई थी, भीड़ ने चिल्लाया, नसरुद्दीन, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी पत्नी को धार नीचे की तरफ बहा ले गई है।
नसरुद्दीन ने कहा कि चुप, मैं अपनी पत्नी को जानता हूं या तुम? दुनिया
की कोई और स्त्री हो तो शायद धार उसको नीचे की तरफ ले जाए, मगर मेरी पत्नी सदा धार के विपरीत बहने वाली है। वह ऊपर की तरफ गई होगी। उसे मैं भलीभांति जानता हूं। उसके गणित को जानता हूं, उसकी तर्क-सरणी पहचानता हूं। तुम मुझे मत सिखाओ। मेरी पत्नी के संबंध में मुझे सब मालूम है। अगर मेरी पत्नी गिरी है तो ऊपर की तरफ बही होगी। उसकी खोपड़ी उलटी है।
लेकिन ऊपर की तरफ कितना ही बहो, कितना ही चेष्टा करो, कितनी देर चेष्टा चलेगी? आज नहीं कल पैर उखड़ जाएंगे। और यह अस्तित्व की विराट धारा-- और हम सब जीतने के लिए लड़ रहे हैं! गिरते हैं एक दिन, बुरी तरह गिरते हैं। बड़े से बड़े सिकंदर भी गिरते हैं।
तो सुधा, तू भी गिरेगी। जीत का मोह, जीत की वासना छोड़ो।
संन्यासी वह है जिसने घोषणा कर दी कि अब जीतना इत्यादि बच्चों के खेल हैं। अब तो मैं हार गया, अब तो मैं प्रभु से हार गया। अब तो उसकी मर्जी पूरी हो, मेरी कोई मर्जी नहीं। जहां ले जाए जाऊंगा। जहां बहाए बहूंगा। जिस किनारे लगा दे वहां लग जाऊंगा--वही किनारा है! और अगर मझधार में डुबा दे तो मझधार ही किनारा है।
फिर तुम्हें कोई नहीं हरा सकता। फिर तुम्हारी जीत आत्यंतिक है, अंतिम है।
लेकिन हमारे मन में कहीं न कहीं वासना जीत की बनी ही रहती है--कुछ न कुछ पाने की, कुछ न कुछ होने की। यह जो होने की वासना है, यही हमारा रोग है। कुछ लोग धनी होना चाहते हैं, यह उनका रोग है। कुछ लोग पदों पर होना चाहते हैं, यह उनका रोग है। कुछ लोग ध्यानी होना चाहते हैं, कुछ लोग भक्त होना चाहते हैं; ये उनके रोग हैं।
धार्मिक व्यक्ति वह है जिसने होने की व्यर्थता जान ली और जो कहता है,
जो मैं हूं उससे मैं राजी हूं। बस ऐसा ही राजी हूं, मुझे कुछ और होना नहीं। मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि मेरे मन में भी साधु बनने की इच्छा एक बार बहुत बलवती हो गई थी। किसी ने बताया कि बेलूर मठ में एक साधु रहते हैं जो बिना कुछ खाए-पीए जिंदा हैं। मैं उनके पास बड़ी श्रद्धा से पहुंचा। उन्हें देख कर मुझे बड़ी निराशा हुई। वे खाते-पीते तो बेशक नहीं थे, लेकिन कपड़ों का मोह उन्हें बहुत था। बहुत खूबसूरत कपड़े थे उनके--एकदम दूधिया!
एक और खबर लगी कि अमुक गांव में एक नंग-धड़ंग साधु आए हुए हैं। तो मैं अमुक गांव गया। वे वास्तव में मस्त साधु थे। मैं उनकी सेवा में लग गया। उन्होंने मुझे बांस की खपच्चियां, फूस व सरकंडे एकत्रित करने का काम सौंप दिया। यह किसलिए प्रभु? मैंने पूछा। कुटिया बनाएंगे बच्चा! उन्होंने जवाब दिया। मैं वहां से जान छुड़ा कर भागा।
पर मेरी कामना कम नहीं हुई। उत्तराखंड के बारे में मैंने बहुत कुछ पढ़ा-सुना था, इसलिए एक दिन मैं गंगोत्री जा पहुंचा, जहां इत्तिफाक से एक ऐसा साधु मिला जो कुटिया में नहीं रहता था, खुले में नंग-धड़ंग घूमता था। उसे चेले-चपाटियों का भी मोह नहीं था, पर मैं तो उससे चिपक ही गया, हालांकि उसने मेरी कभी परवाह नहीं की थी। एक दिन वह मुझ पर खामख्वाह प्रसन्न हो उठा, बोला, बच्चा! मांगो जो मांगते हो! पर चेला नहीं बनाऊंगा!
प्रभु! यह बताइए कि आप इतने प्रसन्न कैसे हैं? मैंने पूछा।
उसने कहा, क्योंकि मेरी कोई इच्छा नहीं है, बच्चा! मैं हर पल प्रभु की सेवा में लीन रहता हूं।

प्रभु की सेवा में ही क्यों लीन रहते हैं? मैंने पूछा।
तो उस साधु ने कहा, परमपद पाने को, बच्चा!
उनका जवाब सुन कर मैं वहां से भी बड़ी तेजी से भागा। मुझे वह आदमी इस कदर खतरनाक लगा कि मेरी साधु होने की इच्छा ही मर गई।
कुछ न कुछ पाने को, कुछ न कुछ होने को जरा सा भी अवकाश मिला कि मन खड़ा
हो जाता है, कि अहंकार निर्मित होने लगता है। फिर वह इस जगत की संपदा हो या उस जगत की, इससे भेद नहीं पड़ता।
सुधा, मेरे पास अगर कुछ सीखने का राज, कोई रहस्य, अगर मेरे पास समझने
की कोई कुंजी, ऐसी कुंजी जिससे सारे ताले खुल जाएं है--तो वह सीधी-सादी हैः होने की दौड़ छोड़ो, पाने की दौड़ छोड़ो। जो हो उसमें आनंदित हो जाओ। जैसे हो वैसे ही आनंदित हो जाओ। इसी क्षण! मत लगाओ शर्तें कि तब आनंदित होऊंगा जब इतना धन मेरे पास होगा, या इतना पद मेरे पास होगा, या जब मैं मुनि होऊंगा या जब मैं स्वर्ग पहुंचूंगा; जब तक परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे तब तक सुखी नहीं होऊंगा। तो फिर तुम कभी सुखी होने वाले नहीं हो।
बिना शर्त सुखी हो जाओ। कह दो कि मैं सुखी हूं जैसा हूं। परमात्मा तुम्हें खोजता आएगा। परमात्मा भी सुखी लोगों का साथ खोजता है। परमात्मा भी दुखी लोगों से बचता है। दुखी लोगों से कौन नहीं बचता? कहावत हैः हंसो, सारी दुनिया हंसती है तुम्हारे साथ; रोओ, और तुम अकेले रोते हो। नाचो, और सारा अस्तित्व नाचता है तुम्हारे साथ; और उदास बैठ जाओ, तो तुम अकेले उदास बैठे हो।
परमात्मा उनके निकट आता है जो मस्त हैं, जो मौज में हैं, जो रसमग्न हैं। मगर रसमग्न अगर होना है तो होने की बात ही छोड़ दो--अभी! ऐसे ही जैसे हो!
सुधा, क्या कमी है तुझ में? जो है सुंदर है। जैसी है सुंदर है। परमात्मा ने ऐसा बनाया।
लेकिन लोग अजीब-अजीब शर्तें लगा देते हैं। नाच तो आता नहीं, कहते हैं आंगन टेढ़ा है। नाच आता हो तो टेढ़े आंगन से क्या फर्क पड़ता है? टेढ़े आंगन में भी नाचा जा सकता है। और नाच न आता हो तो सीधा आंगन भी क्या करेगा? मुल्ला नसरुद्दीन आंख के डाक्टर के पास गया था। आंखें धूमिल होने लगी थीं। तो डाक्टर ने कहा कि चश्मा लगाना होगा। चश्मा बन गया, मुल्ला चश्मा लेने गया। मुल्ला ने डाक्टर से पूछा कि जब चश्मा आंख पर लग जाएगा तो मैं पढ़ना-लिखना तो कर सकूंगा न?
डाक्टर ने कहा, निश्चित। इसीलिए तो चश्मा बनाया है। बिल्कुल पढ़-लिख सकोगे।
मुल्ला ने कहा, यह भी बड़ा चमत्कार है, क्योंकि पढ़ना-लिखना मुझे आता नहीं।
पढ़ना-लिखना न आता हो तो चश्मा लगाने से पढ़-लिख सकोगे? आंगन बिल्कुल चौकोर भी हो, हर कोना नब्बे अंश का हो, तो भी क्या होगा नाचना न आता हो? सुंदर से सुंदर वीणा तुम्हारे पास हो और बजानी न आती हो! कृष्ण की ही बांसुरी तुम्हें दे दूं, तो क्या करोगे? कृष्ण का चैतन्य भी तो चाहिए। वह बांसुरी थोड़े ही है जिससे कृष्ण का गीत पैदा हो रहा है, वह कृष्ण का प्राण है। बांसुरी तो वही है, बांस की पोंगरी, जैसी तुम्हारे पास है। बांसुरी में थोड़े ही कुछ खूबी होती है; खूबी गाने वाले में होती है।
सुधा, तू कहती हैः "बार-बार वह फिसल क्यों जाता है?"
तेरी पकड़ने की कोशिश में ही फिसल जाता है। पकड़ना छोड़ो, खुली मुट्ठी से जीना सीखो। न कुछ पाने की इच्छा, न कुछ पकड़ने की इच्छा; जैसे हो, जहां हो, प्रतिपल वहीं आनंद को अनुभव करो। सुबह सूरज उगे तो आनंद से भरा नमस्कार-- एक दिन और मिला! सांझ सूरज डूबे, आनंद से अलविदा--एक अदभुत दिन और पूर्ण हुआ! ऐसे प्रतिपल जीओ--धन्यवाद में, अनुग्रह में। फिर बिना पकड़े सब पकड़ में आ जाता है और बिना जीते जीत हो जाती है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आपके आश्रम को देख कर दूसरे लोक की अनुभूति हुई।
यह हमारे भारत देश में कहां तक सार्थक है?

आनंद जगताप, मैं देशों में विश्वास नहीं करता। देश की धारणा ही अवांछनीय है। मैं देशों की सीमा को पाप मानता हूं। मैं इस पूरी पृथ्वी को एक देखना चाहता हूं। ये भारत और पाकिस्तान और चीन और जापान, ये जाने चाहिए। ये अतीत के खंडहर कब तक हमारी छाती पर सवार रहेंगे? आदमी एक है, और जब तक हमने पृथ्वी को खंड-खंड किया है तब तक आदमी भी खंड-खंड रहेगा।
मैंने सुना है, एक स्कूल में भूगोल का अध्यापक बच्चों को समझाने के लिए एक तरकीब ईजाद किया था। उसने दुनिया के नक्शे को कई टुकड़ों में तोड़ दिया था, और सारे टुकड़े टेबल पर रख दिए थे। और बच्चों को उसने बुला कर कहा कि इन टुकड़ों को जोड़ कर फिर दुनिया का नक्शा बनाओ!

बड़ा कठिन मामला; इतनी बड़ी दुनिया, छोटे-छोटे टुकड़े; जमाना कठिन। समझ में न आए। कहीं कुस्तुनतुनिया टिम्बकटू की जगह पहुंच जाए; कहीं टिम्बकटू पेकिंग के पास पहुंच जाए; कहीं पेकिंग अमरीका में बैठ जाए--बड़ा ही मुश्किल! लेकिन एक बुद्धिमान बच्चा रहा होगा, सूझ-बूझ वाला रहा होगा। उसने उस दुनिया के नक्शे के चकतों को उलटा करके देखा, पीछे की तरफ देखा, और कुंजी उसके हाथ लग गई। पीछे उसने देखा, एक आदमी की तस्वीर है। उसने सारे टुकड़े उलट दिए और आदमी की तस्वीर जमाने में लग गया। आदमी की तस्वीर जम गई। एक तरफ आदमी की तस्वीर जम गई, दूसरी तरफ दुनिया का नक्शा जम गया। वह आदमी की तस्वीर दुनिया के नक्शे को जमाने की कुंजी थी। उसी तरकीब से तो शिक्षक जमाता था, नहीं तो उसको भी याद रखना बहुत मुश्किल; दुनिया बड़ी है। तुम्हारी दुनिया जब तक खंडित है तब तक आदमी खंडित है। जब तक तुम्हारा आदमी खंडित है तब तक तुम्हारी दुनिया खंडित है। खंडों में मेरा भरोसा नहीं है, मैं अखंड के प्रति श्रद्धालु हूं।
तुमने कहा कि आपके आश्रम को देख कर दूसरे लोक की अनुभूति हुई।
तुम सोच-समझ के व्यक्ति मालूम होते हो। आनंद जगताप, विवेक वार्ता नाम
के पत्र के संपादक हैं। संपादक इतने समझदार होते नहीं। पत्रकार कूड़ा- कर्कट बटोरते हैं। मगर तुम पारखी हो। तुम्हारे पास बुद्धिमत्ता का एक अंश है, इसलिए तुम अनुभव कर सके किसी दूसरे लोक का।
निश्चित ही जो यहां घटित हो रहा है वह करीब-करीब असंभव घटित हो रहा है। उसे देखने के लिए बड़ी प्रखर आंखें चाहिए, बड़ी जौहरी की आंखें चाहिए। लेकिन तुम्हारे मन में सवाल उठा, स्वाभाविक सवाल, कि यह हमारे भारत देश में कहां तक सार्थक है?
पहली तो बात, बुद्धों, कृष्णों, महावीरों के देश में अगर यह सार्थक नहीं है तो कहां सार्थक होगा? अगर कृष्ण के देश में, मैं जो आनंद का उत्सव पैदा कर रहा हूं, उसकी सार्थकता नहीं है, तो कहां इसकी सार्थकता हो सकेगी फिर? इससे शुभ संदर्भ और कहां मिलेगा? बहुत कठिन होगा किसी और भूमि पर, किसी और संस्कृति की धारा में इस गीत को गाना जो मैं गाना चाहता हूं। अगर भगवद्गीता के देश में यह नहीं हो सकता तो फिर कहां होगा?
सदियों में हमने बहुत बुद्ध पुरुष पैदा किए हैं। यद्यपि वे बुद्ध पुरुष अब तक भी हमारी भीड़ को बदल नहीं पाए। मामला ही कठिन है, उनका कोई कसूर नहीं। भीड़ बदलना ही नहीं चाहती। कोई जागना ही न चाहे तो जगाना असंभव है। कोई जाग कर भी आंख बंद करके पड़ा रहे तो क्या करोगे? लेकिन इस देश के पास अमूल्य संपदा है। वह इसी देश की है, ऐसा नहीं कहना; सब की है, सारी दुनिया की है।
तुम पूछते होः "हमारे इस भारत देश में यह कहां तक सार्थक है?"
तुम तो भारत देश को बस उन्हीं समस्याओं में सीमित देखते हो जो रोज अखबारों में छपती हैं। भारत देश उन्हीं समस्याओं में समाप्त हो जाता है जो रोज अखबारों में छपती हैं--अलीगढ़ का हिंदू-मुस्लिम दंगा, और कहीं हड़ताल, और कहीं पुलिस की बगावत, और कहीं गोलीबारी? तुम भारत को भारत के क्षुद्र राजनीतिज्ञों और उनकी एक-दूसरे की खींच-तान करने का जो तमाशा दिल्ली में चलता है उसमें सीमित समझते हो? तुम भारत की दरिद्रता, दीनता, इसमें ही भारत को सीमित समझते हो?

तो भारत के समाधिस्थ लोगों को तुम गिनती में नहीं ले रहे; तो तुम भारत
के बुद्ध पुरुषों को गिनती में नहीं ले रहे; तो तुम कांटे गिन रहे हो, फूलों को छोड़ रहे हो।
मैं फूलों को गिन रहा हूं, कांटों की मुझे चिंता नहीं है। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि अगर कांटों पर बहुत ध्यान दो तो फूल भी कांटे हो जाते हैं और अगर फूलों को ध्यान से सींचो तो कांटे भी फूल हो जाते हैं। मैं निराशावादी नहीं हूं, मैं परम आशावादी हूं।
दीनता, दरिद्रता, भारत की समस्याएं, सब मिट सकती हैं; सिर्फ भारत को उन्हें मिटाने की सम्यक दृष्टि देने की जरूरत है। भारत की समस्याएं हमारी अपनी बनाई हुई समस्याएं हैं, इसलिए मिटाना आसान है। आज दुनिया में इतनी यांत्रिक प्रगति हुई है कि अब भारत को गरीब रहने की कोई जरूरत नहीं है। अगर हम गरीब हैं तो शायद हम रहना चाहते हैं इसलिए गरीब हैं, हमारे सोचने- समझने के ढंग मूढ़तापूर्ण हैं इसलिए गरीब हैं। हमारे पास सुंदरतम भूमि है, सुंदरतम आकाश है। हमारे पास प्रतिभाओं की भी कमी नहीं।
लेकिन हम प्रतिभा का सम्मान भूल गए हैं। तो जब भी हमारे यहां कोई प्रतिभा पैदा होती है, उसको भी भारत छोड़ देना पड़ता है। हम जड़बुद्धियों का सम्मान करने में बड़े कुशल हो गए हैं। हमने ऐसे आधार खोज लिए हैं कि जड़बुद्धि ही उसमें आ सकते हैं।
कोई आदमी पांच बजे सुबह उठता है--हमारा सम्मान। कोई आदमी सिगरेट नहीं पीता--हमारा सम्मान। कोई आदमी सिर्फ साग-सब्जी खाता है--हमारा सम्मान। कोई आदमी खादी के कपड़े पहनता है--हमारा सम्मान। कोई आदमी रोज पूजा करता है-- हमारा सम्मान।
इससे कहीं प्रतिभा पैदा होगी? पांच बजे सुबह उठने से प्रतिभा पैदा होती है? कि सिगरेट न पीने से प्रतिभा पैदा होती है? कि खादी पहनने से प्रतिभा पैदा होती है?
असल में कोई बुद्धू ही तीन-चार घंटे चरखा चला सकता है। जिंदगी में और
भी महत्वपूर्ण काम करने को हैं। तीन-चार घंटे चरखा चला कर अगर तुमने साल भर के लायक कपड़ा-लत्ता पैदा कर लिया तो तुम अपने को बुद्धिमान समझ रहे हो? अगर थोड़ी-बहुत बुद्धि रही भी होगी तो चरखा डुबा लेगा। चलाते रहे चरखा तीन-चार घंटा--रेंचू, रेंचू, रेंचू। बस हो गए ढेंचू, ढेंचू, ढेंचू। खोपड़ी में कुछ थोड़ी ऊर्जा भी रही होगी, वह भी चरखा पी जाएगा।
मगर हमारे सम्मान बड़े अजीब हैं! कोई आदमी एक बार भोजन करता है--हमारा सम्मान! हम बड़ी असृजनात्मक चीजों को सम्मान देते हैं। इसलिए भारत में प्रतिभा तो पैदा होती है, मगर प्रतिभा को भारत छोड़ देना पड़ता है। प्रतिभा का यहां अपमान है। प्रतिभा को सम्मान मिलता है अमरीका में, कि इंग्लैंड में, कि जर्मनी में। यहां तो बाहर से प्रतिभाएं आना चाहें तो हम आने नहीं देना चाहते।
अब मैं एक ऐसी व्यवस्था यहां पैदा कर रहा हूं जिसमें वैज्ञानिक आने
को उत्सुक हैं, डाक्टर आने को उत्सुक हैं, प्रोफेसर्स आने को उत्सुक हैं, लेखक, कवि, संगीतज्ञ... । लेकिन भारत सरकार उन्हें आने नहीं देना चाहती। यह पहला मौका है जब हम पश्चिम की प्रतिभा को यहां खींच सकते हैं। लेकिन भारत सरकार जैसी अंधी सरकार शायद ही कहीं हो।
प्रतिभा का सम्मान करना सीखो और प्रतिभा क्या है इसको समझना सीखो। और प्रतिभा की जो तुमने नकारात्मक परिभाषाएं बना रखी हैं, उनसे छुटकारा पाओ। हमारे देश में ही काफी प्रतिभा पैदा होती है, और सारी दुनिया से प्रतिभा आ सकती है। इस देश के प्रति सारी दुनिया के मन में एक सम्मान है। इस देश के प्रति नहीं, बस इस देश में जो अदभुत कुछ लोग पैदा हुए हैं उनके कारण। यह देश फिर सोने की चिड़िया बन सकता है। कोई कारण नहीं है इसके गरीब रहने का, सिवाय तुम्हारे; तुम ही कारण हो।
तो मैं जो एक छोटा सा जगत निर्माण कर रहा हूं वह जरूर संदर्भ के बाहर मालूम होता है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि हम आश्रम के दरवाजे के भीतर आते हैं तो लगता है दूसरी दुनिया, और आश्रम के बाहर गए तो लगता है बिल्कुल दूसरी दुनिया! जो संन्यासी एक बार आश्रम में प्रविष्ट हो गए हैं वे बाहर

जाना ही नहीं चाहते, वे दरवाजे के बाहर नहीं देखना चाहते। बाहर की पूरी की पूरी स्थिति इतनी दयनीय है, इतनी दुखद है, इतनी अशोभन है, इतनी दया योग्य है कि जिनमें थोड़ी भी संवेदना है वे उसे न देखना ही पसंद करेंगे।
पश्चिम से आए हुए अनेक लोग मुझसे कहते हैं कि इस दीन-दरिद्र, दुखी देश में आपकी बात लोग समझ पाएंगे? आपको पहचान पाएंगे?
कठिन है मामला। लेकिन कठिन है, इसलिए चुनौती है। और चुनौती स्वीकार करने योग्य है। पहले हम एक छोटी सी दुनिया बना लें। एक दृष्टांत होगा वह कि ऐसा भी आदमी जी सकता है, कि ऐसी भी जीवन की चर्या हो सकती है, कि बहुत थोड़े में भी बहुत आनंद हो सकता है। फिर उस दृष्टांत के आधार पर हम सारे देश को निमंत्रित करना शुरू करेंगे कि आओ और देखो। और जो यहां हो सकता है वह कहीं भी हो सकता है। कोई कारण नहीं है रुकावट का। सिर्फ हमारी मानसिक पृष्ठभूमि, हमारे संस्कार बहुत जड़ हैं; उनको तोड़ना आवश्यक है। उसी काम में मैं लगा हुआ हूं।
आज तो जरूर मेरा आश्रम बिल्कुल इस देश के संदर्भ में बैठता नहीं।
कल ही मुझे एक किताब मिली; किसी ने मेरे खिलाफ लिखी है। जिस व्यक्ति
ने किताब लिखी है उसने किताब की भूमिका में यह भी लिखा है कि वह मुझसे निन्यानबे प्रतिशत सहमत है। हर बात में सहमत है, सिर्फ एक बात को छोड़ कर, कि मैं जो कहता हूं कि कामवासना में ही समाधि की संभावना छिपी है, कि काम-ऊर्जा ही एक दिन समाधि बन जाती है, बस इस बात से मैं असहमत हूं। और बाकी प्रत्येक बात से सहमत हूं।
लेकिन उसकी किताब देख कर मुझे बड़ी हैरानी हुई! निन्यानबे प्रतिशत मेरी बातों से सहमत है, लेकिन उन निन्यानबे प्रतिशत बातों के पक्ष में उसने किताब नहीं लिखी। एक प्रतिशत से असहमत है, उसके लिए किताब लिखी।
यह नकारात्मक बुद्धि देखते हो! एक झाड़ी में गुलाब ही गुलाब खिले और एक कांटा है। और तुम कांटे के संबंध में किताब लिखते हो, और गुलाबों के संबंध में किताब नहीं! किताब तो दूर, उसने लेख भी कभी नहीं लिखा। लेख तो दूर, उसने कभी मुझे पत्र भी नहीं लिखा। मैंने उसका नाम भी कभी नहीं सुना, पहली दफा जब किताब हाथ में लगी तो नाम पता चला। पूरी किताब लिख डाली! अपने खर्च से छपवाई! अब बंटवा रहा है! और खुद भी मानता है कि निन्यानबे प्रतिशत बातों से कोई विरोध नहीं है।
आज तो निश्चित ही मैं जो कह रहा हूं वह भारत के संदर्भ के बाहर है। क्योंकि सदियों से तुम्हें समझाया गया कामवासना का विरोध; और मैं समझा रहा हूं रूपांतरण। सदियों से तुम्हें समझाया गया--धन की निंदा; और मैं कहता हूं धन का उपयोग, निंदा नहीं। धन की अर्थवत्ता है। धन ही सब कुछ नहीं है, लेकिन मैं यह भी नहीं कह सकता कि धन कुछ भी नहीं है। धन की उपादेयता है, धन एक साधन है और बहुमूल्य साधन है। अगर हजारों साल तुम्हें यही सिखाया गया कि धन निंदा योग्य है तो तुम धन पैदा कैसे करोगे? निंदा योग्य को कौन पैदा करेगा? तो तुम अगर दरिद्र रह गए तो कौन जिम्मेवार है? और अगर आज मैं कह रहा हूं कि धन पैदा किया जा सकता है, धन का सम्मान करो, धन बड़ा बहुमूल्य उपयोगी साधन है, धन से बहुत कुछ संभव है... । सब कुछ संभव है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। धन से प्रेम नहीं खरीद सकते, लेकिन रोटी तो खरीद सकते हो! रोटी के बिना प्रेम मुश्किल है।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः आदमी अकेली रोटी के सहारे नहीं जी सकता।
सच है। लेकिन यह अधूरा वचन है। इसमें आधा वचन और जोड़ देना चाहिएः आदमी बिना रोटी के भी नहीं जी सकता।
धन से प्रेम नहीं मिलता, परमात्मा नहीं मिलता; सच है। लेकिन धन से ऐसी सुविधा मिलती है जिसमें प्रार्थना की जा सके, ध्यान किया जा सके। धन ऐसा अवसर देता है जिसमें परमात्मा की तलाश की जा सके। भूखे भजन न होहिं गोपाला।
अगर आज मैं कह रहा हूं कि धन को सम्मान दो तो लोगों को बेचैनी होती है, क्योंकि मैं उनकी सारी परंपरा का विरोध कर रहा हूं। वे धन की निंदा करते रहे और मैं कहता हूं धन को सम्मान दो। अगर आज मैं कहता हूं कि शरीर को सुविधा दो तो उनको हैरानी होती है; क्योंकि उन्होंने साधुओं से यही सुना

है कि शरीर को कष्ट दो, सताओ। भरी दुपहरी में आग बरस रही हो तब भी धूनी लगा कर बैठे रहो। और जब सर्दी हो तब नंगे खड़े हो जाओ बर्फ में। और जब भूख लगे तो भोजन मत करना। और जब नींद आए तो सोना मत। लड़ो, काटो शरीर को सब तरह से; जितनी दुष्टता कर सकते हो शरीर के साथ करो; जितनी हिंसा बने शरीर के साथ करो। और मैं सिखा रहा हूं कि शरीर का सम्मान करो, प्रेम करो। जब भूख लगे तो भोजन, और जब नींद आए तो सोओ, और जब प्यास लगे तो पीयो। हां, उतना जितना जरूरी है। ज्यादा में भी नुकसान है, कम में भी नुकसान है। मैं एक संतुलन की शिक्षा दे रहा हूं, एक सम्यकत्व की।
लेकिन तुम्हारी रूढ़ धारणाओं के विपरीत पड़ता है यह सब। इस कारण जरूर
आज मेरा कम्यून, मेरा परिवार इस देश के संदर्भ के बाहर पड़ गया है। इस देश में होकर भी मैं विदेशी हूं, ऐसी स्थिति हो गई है। लेकिन सत्य ज्यादा देर तक दबाया नहीं जा सकता; उभरेगा, फैलेगा, इस सारे देश के प्राणों को पकड़ लेगा। मगर मैं एक उदाहरण तो बना लूं, एक देखने की जगह तो बना लूं, जहां लोगों को निमंत्रित कर सकूं और कहूं कि देखो! संन्यासी उत्पादक हो सकता है। मेरा संन्यासी उत्पादक है। यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि हम भारत में कोई भीख नहीं मांगते, हम किसी के सामने दान के लिए हाथ नहीं फैलाते, और कभी नहीं फैलाएंगे। संन्यासी उत्पादक हो सकता है, सृजनात्मक हो सकता है। नया कम्यून कोई चार वर्गमील में बनने को है। काम शुरू हुआ। चार वर्गमील में कम से कम दस हजार संन्यासी रहेंगे। सामूहिक खेती करेंगे, सामूहिक कारखाने चलाएंगे, उत्पादन करेंगे। सबको सबकी जरूरत के अनुसार मिलेगा, सुख-सुविधा, लेकिन धन पर किसी की व्यक्तिगत मालकियत नहीं होगी। सारा परिवार जो भी होगा उसको अपना मान कर जीएगा। और हम बहुत तरह के उत्पादक आयाम शुरू करेंगे। फिर हम लोगों को बुला सकेंगे कि मस्तों की इस टोली को भी देखो! किसी की जेब में एक पैसा नहीं है, लेकिन भारत का कोई बड़े से बड़ा रईस भी, बिड़ला और टाटा भी, इस शान और इस मस्ती से नहीं रह सकते हैं। लोग देखेंगे इस नृत्य को, इस उत्सव को, तो हवा फैलेगी।
इसीलिए तो मोरारजी देसाई जैसे लोग हर तरह से, हरचंद कोशिश कर रहे हैं
कि कम्यून बन न पाए। हर तरह का अड़ंगा, जितना भी वे डाल सकते हैं, डालने की चेष्टा कर रहे हैं। हर तरह से कोशिश करते हैं कि किसी तरह से मुझे कानूनी जाल में फांस लिया जाए। मगर यह असंभव है। तुम डाल-डाल तो मैं पात-पात! इसके पहले कि तुम कभी सोचो कि कोई कानूनी जाल में मुझे फांस सकते हो, मैं जाल के बिल्कुल बाहर खड़ा हूं। कानूनी जाल में फांसना असंभव है, क्योंकि मेरे पास श्रेष्ठतम वकील संन्यासी हैं जो एक-एक इंच सम्हल कर चल रहे हैं, सोच कर चल रहे हैं। श्रेष्ठतम अर्थशास्त्री हैं। एक-एक कदम सम्हल कर रखा जा रहा है। इसलिए थोड़ी देर लग रही है। लेकिन देर शुभ है, क्योंकि एक-एक कदम मजबूत हुआ जा रहा है।
जगताप, दो ही उपाय हैं। या तो मैं अपने आश्रम को जैसे देश के दूसरे आश्रम हैं वैसा बना लूं, तो संदर्भ एक हो जाए। या फिर मैं पूरे देश को अपने आश्रम जैसा बनाना चाहूं, तब संदर्भ एक हो। मेरा चुनाव दूसरा है। इस देश के संदर्भ में तो बहुत आश्रम हैं। वैसे ही दीन-हीन जैसा पूरा देश है, वैसे ही वे आश्रम भी दीन-हीन हैं। जैसे पूरा देश भिखमंगा है वैसे ही वे आश्रम भी भिखमंगे हैं। भीख मांगना भारतीय संस्कृति की आत्मा बन गई। जैसे और लोग रह रहे हैं वैसे ही उन आश्रमों में लोग हैं, और भी मुर्दा। बाजार में तुम्हें शायद थोड़ी रौनक भी मिल जाए, कभी कोई हंसता हुआ आदमी भी मिल जाए; मगर आश्रमों में तो बिल्कुल मुर्दा लोग बैठे हैं। मरने के करीब पहुंचते हैं तभी तो वे आश्रम पहुंचते हैं, काशी-करवट लेने पहुंचते हैं। फिर राम-राम जपते रहते हैं, अब कुछ और करने को बचा भी नहीं।
मेरा आश्रम देश के संदर्भ में बिल्कुल नहीं है, क्योंकि देश गलत है। मैं अपने आश्रम के संदर्भ में देश को चाहूंगा। यह महत प्रयास है, भगीरथ प्रयास है; मगर करने योग्य है, इसके करने में आनंद है।
फिर मैं तुम्हारे अतीत के संबंध में नहीं सोच रहा हूं; मेरा सारा दृष्टिकोण भविष्योन्मुख है। वह जो आने वाला भविष्य है उसे ध्यान में रख कर प्रत्येक चीज की जा रही है। जो बीत गया, बीत गया; अतीत की मुझे चिंता

नहीं है। वह जो आगत है उसकी चिंता है--वह जो अभी आ रहा है! जो बीत गया अब उसकी चिंता क्या करनी है! जो आ रहा है उसके लिए तैयारी करनी है।
और जल्दी ही तुम तुम्हारे राजनेताओं से ऊब जाओगे--ऊब ही गए हो। तीस साल उनकी मूढ़ताएं तुमने देख लीं, भलीभांति देख लीं। और कितनी देर लगेगी? और दस-पांच साल समझो तुम, उनसे ऊब ही जाओगे। उनसे ऊबने के बाद तुम्हारे पास उपाय क्या है फिर? तुम्हारे राजनेताओं से तुम जिस दिन बिल्कुल ऊब जाओगे, उस दिन सिवाय मेरी बात के तुम्हारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मैं अकेला विकल्प हूं। तुम्हें मेरी बात पर ध्यान देना ही होगा। और तब तक मैं उस परिवार को भी खड़ा कर दूंगा जो कि प्रमाण बन जाए। मैं बात ही करने में भरोसा नहीं करता, मैं काम में लगा हूं। लेकिन निश्चित ही ये काम गहरे हैं और समय लेते हैं।
लेकिन एक अभूतपूर्व प्रयोग शुरू हो गया है। और यह प्रयोग रुकने वाला नहीं है। क्योंकि इस प्रयोग के साथ परमात्मा है।

अंतिम प्रश्नः ओशो, मैं आचार्य तुलसी के जाने-माने श्रावकों के परिवार से हूं। कुछ दिनों पहले आपने उनके पंडितराज शिष्य, मुनि नथमल, जिनको महाप्राज्ञ युवराज की उपाधि से अभिषेक किया गया है, उनको मुनि थोथूमल की उपाधि दी। उसके बाद उनका एक लेख अणुव्रत नाम की पत्रिका में देखा--"कितना सच, कितना झूठ" शीर्षक से, जिसमें उन्होंने संभोग से समाधि की चर्चा की है, जो कि उनके अधिकार का विषय नहीं है। मेरे देखे, न तो उनको संभोग का कोई अनुभव है, समाधि का अनुभव होने की तो बात ही दूर। फिर भी आप जैसे अनुभूतिपूर्ण विवेचन की ऐसी बचकानी चर्चा करते हैं--काम के दमन की नहीं, उदात्तीकरण की बात करते हैं। बड़ा ही रोष आता है। कई बार मन उनसे जाकर बात करने का होता है। क्या करूं ओशो, आप ही मार्ग-निर्देश करें।

आनंद वीतराग, मुनि थोथूमल को आचार्य तुलसी ने अपना उत्तराधिकारी चुना है। और तुम देखते हो सामंती ढंग--युवराज! राजा मर गए, मगर युवराज नहीं मरे! उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए!
और मुनि थोथूमल का गुण क्या है? बड़े सिद्ध चमचा हैं! खूब खुशामद करते हैं। आचार्य तुलसी की खुशामद में सब से अग्रणी हैं।
न तो आचार्य तुलसी को समाधि का कोई अनुभव है, न उनके किन्हीं शिष्यों
को कोई अनुभव है। मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूं। आचार्य तुलसी ने मुझसे पूछा है कि ध्यान कैसे करूं? और आचार्य तुलसी ने मुझसे कहा है कि मैं अपने संन्यासियों को, अपने मुनियों को आपके पास भेजूंगा, इन्हें ध्यान करना सिखाएं। लेकिन उस बात में भी बेईमानी थी। ध्यान में रस नहीं था। उनके मुनि मेरे पास आए भी, ध्यान की प्रक्रिया सीख कर भी गए; मगर उन्होंने कभी खुद ध्यान नहीं किया, वे ध्यान के शिविर लेने लगे। जैसे मेरे ध्यान के शिविर होते हैं, ठीक वैसे आचार्य तुलसी, उन्हीं की नकल में ध्यान के शिविर लेना शुरू कर दिए। तो उसमें भी राजनीति थी। जो सीख कर गए थे ध्यान, वह करने की इच्छा नहीं थी, करवाने की इच्छा थी।
और मुनि थोथूमल तो बिल्कुल ही थोथू हैं! मुझसे मिलना हुआ है; थोथेपन
को देख कर ऐसा नाम दिया, अकारण नहीं। बिल्कुल तोते की तरह हैं। अच्छे- अच्छे शब्दों का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन अच्छे शब्दों के उपयोग से क्या होता है! पंडित हैं। लेकिन पांडित्य ज्ञान नहीं है। शास्त्रों के ज्ञाता हैं। लेकिन शास्त्रों के ज्ञाता होने से कोई ज्ञाता नहीं होता, द्रष्टा नहीं होता। इसलिए व्याख्याएं कर सकते हैं। और इस देश में बहुत लोग उन व्याख्याओं से राजी भी होंगे, क्योंकि बहुत लोगों की भी व्याख्या वही है। उदात्तीकरण! अच्छे-अच्छे शब्द!

लेकिन उदात्तीकरण कैसे होता है कामवासना का? कामवासना का उदात्तीकरण तभी हो सकता है जब किसी ने कामवासना में उतर कर देखा हो उसकी व्यर्थता को; और न केवल उसकी व्यर्थता को, बल्कि उसमें छिपी हुई ऊर्जा की संभावना को भी। कामवासना में उतर कर दो चीजें जिसने देखीं--काम की तरह उसकी व्यर्थता

और समाधि की तरह उसके भीतर छिपी संभावना, कीचड़ में कमल का बीज--उसके जीवन में उदात्तीकरण हो सकता है।
लेकिन मुनि थोथूमल और उन जैसे और लोग, ये तो भगोड़े हैं। इन्होंने जीवन
को कहीं जीया नहीं है। जब मेरे पास जैन मुनि आया करते थे पूछने... । अब तो उनकी हिम्मत भी नहीं होती, अब तो इस द्वार के भीतर प्रवेश करने में भी घबड़ाहट होती है, किसी को पता चल जाए! डर तो तब भी लगता था, लेकिन इतना डर नहीं था, क्योंकि मेरे संन्यासी तब पैदा नहीं हुए थे। मैं अकेला देश में घूम रहा था। तब जगह-जगह जैन मुनि मुझे मिलते थे। और निश्चित रूप से दो ही प्रश्न अधिकतर उनमें से पूछे जाते थे। एक प्रश्न था कि ध्यान कैसे करें? और मैं उनको कहता कि तुम मुनि हो गए और तुम्हें ध्यान का पता नहीं है! मुनि का तो अर्थ होता है जिसने मौन को अनुभव कर लिया, तुम कैसे मुनि? वस्त्र बदल लिए तो मुनि हो गए? मौन जाना ही नहीं और मुनि होने के बाद अब तुम पूछ रहे हो कि ध्यान कैसे! ध्यान के बिना तो कोई कैसे हो जाएगा मुनि? और दूसरा प्रश्न उनका जो अनिवार्य रूप से था, विशेषकर मुनियों का, कि कामवासना का क्या करें? यह तो उभर-उभर कर आती है। अगर किसी तरह दिन भर दबा कर बैठे रहते हैं तो रात सपने में आती है, पीछा छोड़ती ही नहीं। मुनि थोथूमल ने भी यही पूछा थाः ध्यान और कामवासना। और अब वे मेरी पुस्तक "संभोग से समाधि की ओर", उसके खिलाफ वक्तव्य देते हैं, लेख लिखते हैं।
और बड़े मजे की बात है, एक ऐसा जैन मुनि नहीं है, हिंदू साधु नहीं है, जो "संभोग से समाधि की ओर" न पढ़ता हो। क्या करना है तुम्हें पढ़ कर इस किताब को? करपात्री महाराज ने पूरी किताब लिखी उस किताब के खिलाफ। इतनी मेहनत! क्या प्रयोजन है तुम्हें? दो सौ किताबें हैं मेरे नाम से प्रकाशित, मगर पढ़ी एक ही किताब जाती है--संभोग से समाधि की ओर। कम से कम भारत में तो वही किताब पढ़ी जाती है, उसी की चर्चा है। मुल्ला नसरुद्दीन से लेकर मोरारजी देसाई तक, बस एक ही किताब पढ़ते हैं और उसी की चर्चा करते हैं।
जब मैंने वक्तव्य दिया कि मोरारजी देसाई को चाहिए कि और किताबें भी पढ़ें, तो उनके सेक्रेटरी का पत्र आया कि कृपा करके सारी किताबों के नाम भेजिए, हमें तो नाम ही पता नहीं हैं। तो उनको सारी किताबों के नाम भिजवाए। मगर मैं नहीं समझता कि वे और किताबें पढ़ सकेंगे, या पढ़ भी लेंगे तो समझ सकेंगे।
"संभोग से समाधि की ओर" क्यों भारत में इतनी चर्चित है?
भारत ने बहुत वर्षों तक--सदियों से--कामवासना को दबाया है। भारत की मनःस्थिति अभी भी वैसी है जैसी फ्रायड के पूर्व पश्चिम के लोगों की थी। भारत में अभी भी फ्रायड पैदा नहीं हुआ। इसलिए फ्रायड जो क्रांति पश्चिम को दे गया है वह भारत में अभी भी नहीं घटी। पश्चिम से आने वाले लोगों को मेरी बात तत्क्षण समझ में आ जाती है, क्योंकि फ्रायड ने भूमिका निर्मित कर दी है। लेकिन भारत में फ्रायड नहीं पैदा हुआ। मुझे दोहरे काम करने पड़ रहे हैं--फ्रायड का काम भी करना पड़ रहा है।
मुनि थोथूमल को कुछ अनुभव नहीं है--न संभोग का, न समाधि का। लेकिन दावे किए जाते हैं। इस देश में दावेदारी बड़े मजे की है।
आचार्य तुलसी के ही एक दूसरे मुनि--जो ज्यादा ईमानदार हैं थोथूमल से-- चंदन मुनि, एक सभा में मेरे साथ बोले। कोई पंद्रह साल पहले की बात। मेरे साथ बोलना, झंझट की बात। वे मुझसे पहले बोले, उन्होंने आत्मज्ञान की बड़ी- बड़ी ऊंची बातें कीं। मैं उनके पीछे बोला और मैंने कहा कि मुझे शक है कि चंदन मुनि को आत्मज्ञान हुआ नहीं। और मैंने कहा कि छाती पर हाथ रख कर कहो कि आत्मा जानी है? ईमानदार आदमी हैं, सिर झुका कर रह गए। लेकिन मुझसे कहा कि दोपहर समय हो तो आपसे मिलना चाहूंगा। दोपहर को मिलना हुआ। और दस-पचास लोग इकट्ठे हो गए। चंदन मुनि ने कहा कि और लोगों को जाने दें, मैं बिल्कुल एकांत में मिलना चाहता हूं।
मैंने कहा, बैठने दें, ये भी सुनेंगे।
नहीं, उन्होंने कहा, इन्हें तो हटा दें। मैं बिल्कुल एकांत चाहता हूं।

सो सबको बाहर करके दरवाजा लगा दिया। तब उनकी आंखों से टप-टप आंसू गिरे
और उन्होंने कहा, आपने चोट की, बहुत चोट की! मेरा अहंकार खंड-खंड हो गया।
लेकिन मैं स्वीकार करने आया हूं कि मुझे आत्मज्ञान हुआ नहीं है। मुझे कोई समाधि हुई नहीं है।
तो फिर मैंने कहा, वह सारी बकवास किसलिए थी?
तो कहा, वह तो शास्त्रों में सब लिखा हुआ है, वही मैं कह रहा था।
तो फिर मैंने कहा, वहीं क्यों नहीं हिम्मत की? सिर तो झुकाया था, कह देना था साफ कि मुझे आत्मज्ञान नहीं है।
कहा, वह कैसे कर सकता हूं? नहीं तो ये जो लोग मुझे मानते हैं, ये ही मुझे धक्का देकर बाहर निकाल देंगे। इसीलिए तो इनको मैंने कहा कि बाहर भेजो, क्योंकि इनमें बहुत से मेरे मानने वाले आ गए हैं, तेरापंथियों की भीड़ इकट्ठी है, इनको बाहर कर दो। इनके सामने मैं ईमानदारी से अपने हृदय को न खोल सकूंगा।
चंदन मुनि थोथूमल से ज्यादा सार्थक व्यक्ति हैं। चलो इतनी हिम्मत तो की। नहीं कर सके सब के सामने, माना; करते तो और भी बड़ी क्रांति होती। नहीं कह सके सभा-मंच से, माना; पर इतना भी क्या कम है कि आए तो! एकांत में आंसू तो गिराए! कहा तो कि मैं सिर्फ दोहरा रहा था तोते की तरह, मुझे कुछ पता नहीं है। आप मुझे ध्यान के सूत्र दें। आप मुझे कहें कि मैं क्या करूं।
मैंने उन्हें ध्यान के सूत्र दिए। तो कहा, यह तो मैं नहीं कर सकूंगा, क्योंकि तत्क्षण लोग पहचान जाएंगे कि यह तो आपका ध्यान है। और आचार्य तुलसी राजी नहीं होंगे और मेरे श्रावक भी राजी नहीं होंगे। मैं सक्रिय ध्यान तो कर ही नहीं सकता, कुंडलिनी ध्यान भी नहीं कर सकता, सूफी नृत्य भी नहीं कर सकता।
और मैंने कहा, यही जरूरत है। चुपचाप, जब सब लोग चले जाएं, रात एकांत में कर लिया करें।
कहा, बहुत मुश्किल है। हमें अकेले चलने की आज्ञा भी नहीं है, और साधु- संघ साथ चलता है। तो अगर रात को मैं हू-हू करूं तो वे समझेंगे कि पागल हो गए या क्या हो गया! और मैं जवाब क्या दूंगा? आपका नाम तो ले ही नहीं सकता; उसकी तो हमें वर्जना है कि आपका कहीं नाम लिया जाए कि आपसे कुछ भी सीखा है।
और ये सारे लोग देश को जगाते फिरते हैं! ये सोए हुए लोग, ये अंधे लोग अंधों को नेतृत्व दे रहे हैं।
तुम पूछते हो, आनंद वीतराग, कि बड़ा ही रोष आता है। कई बार मन को उनसे जाकर बात करने की इच्छा पैदा होती है। क्या करूं?
जाओ, जरूर जाओ! जरूर डंके की चोट पर सत्य कहो! लेकिन यह मत सोचना कि वे सुन पाएंगे कि समझ पाएंगे।
शिक्षक विद्यार्थियों की हाजिरी ले रहा था, लेकिन गयाराम नामक एक छात्र पीछे की सीट पर बैठा था और लगातार एक चूहे को देख रहा था, जो कि बार-बार अपनी पोल में आ-जा रहा था। जब शिक्षक ने गयाराम का नाम पुकारा तब उसने सुना ही नहीं। शिक्षक ने जोर से चिल्ला कर कहा, क्यों गया? छात्र हड़बड़ा कर बोला, जी नहीं, अभी पूंछ बाकी है।
तुम तो कहोगे मगर वे सुनेंगे नहीं। उनके चित्त तो किन्हीं चूहों में अटके हैं। मगर फिर भी जाओ! हिलाना-डुलाना, धक्के देना, जगाने की कोशिश करना। शायद चोट करने से जाग जाएं। जागने की क्षमता तो प्रत्येक की है-- थोथूमल की भी! परमात्मा तो उनमें भी उतना ही सोया हुआ है जितना किसी और में। कौन जाने किसी शुभ घड़ी, किसी शुभ क्षण में... ।
मगर अगर तुम जाकर श्रावक की तरह निवेदन करोगे तो कुछ हल नहीं होगा।
तुम्हें तो क्रांति का उदघोष करना पड़ेगा तो कुछ होगा। तुम्हें तो जोर से आवाज देनी होगी, कंधे पकड़ कर हिलाना होगा, तब कुछ होगा।
एक गांव में एक धर्मगुरु आए। मुल्ला नसरुद्दीन भी सुनने गया।
धर्मगुरु का उपदेश था कि दूसरों के जीवन में व्यवधान डालना हिंसा है।
प्रवचन के बाद मुल्ला मंच पर पहुंचा, बोला, मैं आपको एक बढ़िया लतीफा सुनाता हूं, जरा गौर से सुनिए। लतीफा चार खंडों में है।

पहला खंडः एक सरदार जी साइकिल पर अपनी बीबी को बिठा कर कहीं जा रहे थे। रास्ते में गड्ढा आया, बीबी चिल्लाई, जरा बच कर चलाना! सरदार जी ने साइकिल रोकी और उतर कर बीबी को एक झापड़ मार कर कहा, साइकिल मैं चला रहा हूं कि तू?
धर्मगुरु बोले, सही बात है, किसी के काम में अड़ंगा नहीं डालना चाहिए। मुल्ला ने आगे कहा, जरा सुनिए दूसरा खंड। सरदार जी घर आए। बीबी चाय बनाने बैठी। गुस्से में तो थी ही, स्टोव में खूब हवा भरने लगी। सरदार जी बोले, देखो, कहीं स्टोव की टंकी न फट जाए! बीबी ने दाढ़ी पकड़ कर सरदार जी को एक चांटा लगाया। बोली, चाय मैं बना रही हूं या तुम?
धर्मगुरु बोले, वाह-वाह, क्या चुटकुला है! किसी के काम में बीच में बोलना ही नहीं चाहिए।
मुल्ला ने कहना आगे जारी रखा। कहा, सुनिए, अब सुनिए चौथा खंड। एक बार सरदार जी... ।
धर्मगुरु ने बीच में टोका, अरे भाई, पहले तीसरा तो सुनाओ। दूसरे के बाद यह चौथा खंड कहां से आ गया?
नसरुद्दीन ने आव देखा न ताव, भर ताकत एक घूंसा धर्मगुरु की पीठ पर लगाया और बोला, चुटकुला मैं सुना रहा हूं कि तुम?
ऐसा कुछ कर सको तो आनंद वीतराग, कुछ हो सकता है। नहीं तो गए और तीन बार झुक-झुक कर नमस्कार किया तो थोथूमल सुनने वाले नहीं हैं।
और जाना उचित है, क्योंकि ऐसे लोगों को लोग अगर जा-जा कर कहने लगें तो शायद कभी न कभी बोध आए। बुरे तो नहीं हैं ये लोग, सिर्फ भ्रांत हैं। आकांक्षा तो इनकी शुभ ही है, तभी तो त्याग किया, पलायन किया, घर छोड़ दिया, मुनि हुए। कहीं न कहीं अभीप्सा तो शुभ ही है, यद्यपि दिशा भ्रांत है। जो जिसने पकड़ा दिया पकड़ लिया, मगर खोजने तो सत्य को ही निकले थे। झूठ पकड़ में आ गया, यह दूसरी बात है; झूठ को ही पकड़ कर बैठ गए, यह दूसरी बात है। लेकिन लोग बुरे नहीं हैं।
और मेरे खिलाफ भी जो बोल रहे हैं, वह कुछ जान कर बोल रहे हैं, ऐसा मत सोचना। वह बिल्कुल अचेतन है। क्योंकि मैं उनकी आधारशिलाओं पर चोट कर रहा हूं। मैं उनके व्यवसाय की जड़ें काट रहा हूं। अगर मेरी बात चली तो पचास साल के बाद इस देश में जैन मुनि, हिंदू साधु खोजे से नहीं मिलेगा। संन्यासी होंगे बहुत, मगर एक अभिनव साज-सज्जा होगी उनकी, एक अभिनव जीवन-शैली होगी उनकी। वे हिंदू नहीं होंगे, जैन नहीं होंगे, मुसलमान नहीं होंगे। मस्त होंगे, अलमस्त होंगे, अलमस्ती उनका धर्म होगी।
तो जरूर अड़चन तो हो रही है। इसलिए जाओ। उनके भीतर भी कहीं शुभ आकांक्षा पड़ी है, उसे जगाओ। और ज्यादा देर न करो, क्योंकि जैसे-जैसे ये तुम्हारे मुनि बूढ़े होते जाते हैं वैसे-वैसे इनकी क्षमता कम होती जाती है, वैसे-वैसे ये सठियाते जाते हैं और वैसे-वैसे रूपांतरित होने की इनकी हिम्मत भी कम हो जाती है। इसलिए देर न करो। अगर ये जाग सकें, इनका भी भला होगा और बहुत लोग जो इनकी सुनते हैं उनका भी भला होगा।
साधारण किसी एक जन को समझाने की बजाय मुनियों को, महात्माओं को समझाना ज्यादा बेहतर है। क्योंकि वह महात्मा न मालूम कितने लोगों को भरमा रहा होगा! न मालूम कितने लोगों को भटका रहा होगा! उस एक को अगर तुम ठीक रास्ते पर ले आओ तो बहुत लोग उसके पीछे ठीक रास्ते पर आ सकते हैं। हालांकि मामला कठिन है, क्योंकि थोथूमल अब उत्तराधिकारी होने वाले हैं। और उत्तराधिकार तो तभी मिल सकता है जब तेरापंथ की बिल्कुल लकीर के फकीर की तरह चलें, उसमें इंच भर हेर-फेर न करें। सात सौ मुनियों के धर्मगुरु होने का मजा छोड़ना मुश्किल होगा।
मगर फिर भी मैं मानता हूं, आत्यंतिक रूप से मैं मनुष्य की सदभावना में भरोसा करता हूं। तुम्हारे महात्माओं तक के भीतर मैं सदभावना को स्वीकार करता हूं। कहीं न कहीं बीज में तो पड़ी है, शायद अंकुरित हो जाए--कब किस वर्षा में। शायद तुम्हारा ही निमित्त कारण बन जाए। और देर न करो, कल का क्या पता!

भविष्य पुराण में एक कथा हैः मुनि थोथूमल मरे। स्वभावतः स्वर्ग पहुंचे। बड़े धर्मगुरु थे, बड़ी त्याग-तपश्चर्या की थी, सो तत्क्षण बैंड-बाजों से उनका स्वागत किया गया। और तेरापंथियों के स्वर्ग में... ।
ख्याल रहे, स्वर्ग भी सब बंटे हुए हैं। कोई स्थानकवासियों के स्वर्ग में तेरापंथी नहीं घुसेगा। वह तो नरक से बदतर! और कोई दिगंबरों के स्वर्ग में श्वेतांबरी नहीं जाएगा। ऐसा पाप कभी भूल कर भी नहीं करेगा। और हिंदुओं के स्वर्ग में कोई जैन जाएगा, कदम रखेगा? छाया पड़ जाएगी तो स्नान करेगा। और फिर मुसलमान हैं, और ईसाई हैं, और यहूदी हैं, सबके अपने स्वर्ग। जैसी जमीन उन्होंने यहां बांट रखी है, यही पागल वहां पहुंच गए हैं। वहां भी बांट लिए हैं, दीवालें बना ली हैं। अपनी-अपनी दीवाल में बैठे हैं, अपना- अपना झंडा ऊंचा! और खूब शोरगुल मचाते हैं कि कोई किसी की सुनने में तो आता ही नहीं कि यह क्या हो रहा है! स्वर्ग में जैसी धूम-धाम मची है--कहीं हरि- कीर्तन हो रहा है, कहीं राम-धुन लगी है, कहीं अखंडपाठ हो रहा है माइक लगा कर। माइक वगैरह सब पहुंच गए!
तो थोथूमल तेरापंथी स्वर्ग के प्रमुख देवदूत हो गए। फिर उनके बाद ही हेमामालिनी भी मरी। वह भी स्वर्ग पहुंच गई। कैसे पहुंची कहना मुश्किल है। मगर रिश्वत कहां नहीं चलती! और फिर द्वारपाल हेमामालिनी को देख कर इनकार करे भी तो कैसे करे? खोल दिया होगा जल्दी से द्वार, घबड़ाहट में ही खोल दिया होगा। खुल ही गया होगा, पता ही नहीं चला होगा कि कब द्वार खुल गया। राह ही देख रहा होगा द्वारपाल भी कि कब हेमामालिनी आए, कब मरे। आज शुभ घड़ी आई, शुभ दिन आया।
द्वारपाल ने द्वार खोला, हेमामालिनी को देख कर बोला, आप जब यहां आ ही
गई हैं तो एक बात बता देनी उचित होगी कि स्वर्ग में प्रवेश आपको एक ही शर्त पर मिल सकता है।
हेमामालिनी बोली, वह क्या है शर्त, आखिर बताइए?
द्वारपाल ने कहा, शर्त यह है कि आपको हमारे यहां के प्रधान देवदूत मुनि थोथूमल के साथ एक संकरे पुल से गुजरना होगा। वह पुल बहुत ही संकरा है और उसकी एक विशेषता है जिसे आप ख्याल में रख लें तो अच्छा। आपके भले के लिए कह रहा हूं। वह विशेषता यह है कि उस पुल पर से गुजरते समय यदि आपके मन में कोई दुर्भावना या वासना इत्यादि देवदूत के प्रति मन में उठी कि आप फौरन ही नीचे गिर जाएंगी। और गिरते ही नरक पहुंच जाएंगी। सो पहले से ही सोच लें। हेमामालिनी ने कहा, ठीक है, मैं तैयार हूं।
हेमामालिनी और मुनि थोथूमल उस पुल पर पहुंचे। और अभी अभिनेत्री दस-पांच कदम ही आगे बढ़ी होगी कि मुनि थोथूमल धड़ाम से पुल के नीचे गिर गए। इसके पहले कि ऐसा कुछ घटे, आनंद वीतराग, जाओ! थोथूमल को जगाओ, चेताओ! अभिनेत्रियां गुजर जाएंगी, शायद वासना का विचार भी न उठे; मगर तुम्हारे मुनि, तुम्हारे महात्मा न गुजर पाएंगे। वासना ही वासना से भरे हैं। मगर इस वासना को प्रकट भी नहीं कर सकते, कह भी नहीं सकते किसी से। उनका दुख भी समझो! उनकी पीड़ा भी समझो! मैं उनका दुख भी समझता हूं, उनकी पीड़ा भी समझता हूं। इसीलिए इतनी कठोरता से भी बोलता हूं।
यह कठोरता वैसी है जैसे सर्जन की, कि चीर-फाड़ करनी पड़ेगी, मवाद निकालना होगा। मेरे मन में, उनका कुछ मंगल और कल्याण हो सके, यही कामना है। वे तो नहीं कह सकते किसी के सामने कि भीतर की क्या हालत है, क्योंकि भीतर की हालत लोगों को पता चल जाए तो जो भीड़ जय-जयकार कर रही है वह विदा हो जाएगी, तत्क्षण विदा हो जाएगी।
वह भीड़ जय-जयकार कर रही है, क्योंकि भीड़ मानती है कि तुम परम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए, परम समाधि को उपलब्ध हो गए। और तुम्हें यह धोखा बनाए रखना पड़ता है। तुम्हें यह आडंबर रचे रखना पड़ता है कि तुम उपलब्ध हो गए। तुम्हें भीड़ की ही मान्यताओं को मान कर चलना होता है, भीड़ जैसा कहे वैसा ही। नहीं तो भीड़ सम्मान नहीं देगी। यह पारस्परिक समझौता है।
भीड़ सम्मान उन्हें देती है जो भीड़ की मानते हैं। और भीड़ की वे ही मान सकते हैं जिनके जीवन में प्रज्ञा की कोई किरण नहीं फूटी है। भीड़ की कौन मान सकता है? भ.ेडें मान सकती हैं, सिंह नहीं। सिंहों के नहीं लेहड़े! उनकी

भीड़-भाड़ नहीं होती। सिंह तो अकेला चलता है; अकेला चल सकता है। भेड़ें नहीं चल सकतीं अकेली। भेड़ों की सुरक्षा तो भीड़ में है।
आनंद वीतराग, जाओ, जगाओ! और चूंकि तुम भी कभी तेरापंथी रहे हो, यह तुम्हारा दायित्व है कि आज तुम्हें अगर सूरज की एक किरण दिखाई पड़ने लगी है और आज अगर तुम्हें गीत की एक कड़ी पकड़ में आने लगी है, तो जरूर जाओ, जरूर उनको अपना गीत सुनाओ, जरूर अपना हृदय उनके सामने खोलो, अपने आनंद की थोड़ी उन्हें खबर दो। इतना भरोसा सदा रखना कि कोई आदमी इतना भटका हुआ नहीं है कि उसे मार्ग पर न लाया जा सके। महात्मा भी मार्ग पर लाए जा सकते हैं।
वह जो मैंने कल तुमसे कहा, वह तो सिर्फ मजाक थी। कल मैंने तुमसे कहा, किसी ने मुझसे पूछा कि क्या परमात्मा सभी जगह है? तो मैंने कहा, सिर्फ तुम्हारे महात्माओं को छोड़ कर। वह सिर्फ मजाक थी। तुम्हारे महात्माओं में भी है; बहुत गहरा सोया है, घुर्राटे भर रहा है, मगर है तो।
जरूर जाओ, जगाओ! स्मरण रखो, दूसरे को जगाने की चेष्टा में तुम्हारे स्वयं का जागरण भी घना होता है।
आज इतना ही।

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र दसवां प्रवचन

सावन आया अब के सजन

पहला प्रश्नः ओशो,
पल भर में यह क्या हो गया,
वह मैं गई, वह मन गया!
चुनरी कहे, सुन री पवन
सावन आया अब के सजन।
फिर-फिर धन्यवाद ओशो!

हंसा, इस संसार में और सब तो घटित होने के लिए समय लेता है, लेकिन ध्यान समयातीत है। पल भी नहीं लगता। दो पलों के बीच में जो अंतराल है वही ध्यान का जगत है। जब ध्यान घटित होता है तो ऐसे ही घटित होता है कि पल भर भी नहीं लगता। ध्यान समय की प्रक्रिया नहीं है। ध्यान की कोई सीढ़ियां नहीं हैं। ध्यान क्रांति है, विकास नहीं।
और क्यों ऐसा है? क्योंकि मन की सारी व्यवस्था मूलतः समय की व्यवस्था है। मन का अर्थ होता हैः अतीत, भविष्य। और अतीत और भविष्य के बीच में दबा हुआ छोटा सा वर्तमान। मन जीता है अतीत में, जो हो चुका। वहीं खोदता रहता, खोजता रहता, तलाश करता रहता--स्मृतियों में; या फिर उन्हीं स्मृतियों के जो प्रतिफलन बनते हैं, प्रतिध्वनियां होती हैं भविष्य में, जो कल हुआ था, वह कल फिर हो--मीठा था, मधुर था; या कल जो हुआ था, बहुत कड़वा था, बहुत तिक्त था--अब कभी न हो।
मन अतीत को ही दोहराना चाहता है भविष्य में--सुंदरतम रूप में; अतीत को
ही सजाना चाहता है भविष्य में। भविष्य अतीत का ही विस्तार है। और आश्चर्य यही कि मन उस अतीत में जीता है जो अब नहीं है और उस भविष्य में जो अभी नहीं है। मन इन दो अभावों में जीता है, दो शून्यताओं में। इसलिए तो मन की कोई उपलब्धि नहीं है। और मन जिसे वर्तमान जानता है, वह ना-कुछ है; वह तो केवल अतीत के भविष्य बनने की प्रक्रिया है--बड़ी पतली सी रेखा! तुम वर्तमान को पकड़ थोड़े ही सकते हो। क्योंकि जब तक तुमने पकड़ा वह अतीत हो गया; जब तक नहीं पकड़ा तब तक भविष्य है। इतना छोटा वर्तमान, झूठा वर्तमान है।
वर्तमान तो केवल वही जानता है जो ध्यान को उपलब्ध हुआ है। वह शाश्वत वर्तमान जानता है।
ध्यान का अर्थ है मन से मुक्त हो जाना। मन से मुक्त होने का अर्थ है अतीत और भविष्य से मुक्त हो जाना। यह एक क्षण में ही घटती है बात--बस ऐसे जैसे हवा का झोंका आया और उड़ा ले गया धूल; ऐसे कि किसी ने दर्पण पोंछ दिया और स्वच्छ हो गया!
हंसा, जो तुझे हुआ ठीक हुआ। ध्यान की पहली अवधारणा ऐसी ही होती है। ध्यान जब पहली बार उतरता है तो इतना ही विस्मय-विमुग्ध कर देता है, भरोसा नहीं आता। क्योंकि हम तो सोचते थे सदियों-सदियों की तपश्चर्या से ध्यान मिलता है।
तपश्चर्या से ध्यान नहीं मिलता, तपश्चर्या से केवल तपस्वी का अहंकार मिलता है। और अहंकार ध्यान में बाधा है। श्रम से ध्यान नहीं मिलता; और सब कुछ मिल जाए, धन मिले, पद मिले, ध्यान नहीं मिलता। ध्यान तो विश्राम का क्षण है, श्रम का नहीं। और ध्यान तपश्चर्या नहीं है, न त्याग है। ध्यान तो परम भोग है, परम उत्सव है, परम आनंद है।
फिर ध्यान कोई ऐसी चीज नहीं है जो बाहर से हमारे तक आती है; आती तो समय लगता। ध्यान कोई ऐसी चीज भी नहीं है जिस तक हम जाते हैं; जाते तो समय लगता, यात्रा करनी पड़ती। या तो ध्यान यात्रा करता हम तक या हम यात्रा करते ध्यान तक। ध्यान हमारा स्वभाव है। ध्यान को लेकर ही हम पैदा हुए हैं। ध्यान की तरह ही हम पैदा हुए हैं। ध्यान हमारी आत्मा है। इसलिए समय के लगने का सवाल ही नहीं है। हमारे भीतर ही पड़ा है खजाना; जरा आंख मुड़ी कि मालिक से मिलन हुआ।

तू कहती हैः "पल भर में यह क्या हो गया!"
निश्चित ही भरोसा नहीं आता जब पहली बार होता है। क्योंकि हमें तो सदियों-सदियों से सिखाया गया है कि पापी हो तुम; पहले पापों को धोओ! जन्मों-जन्मों के पाप हैं, जन्मों-जन्मों तक धोओगे तब कहीं धुल पाएंगे। एक दूसरे मित्र फिरोज ने पूछा है कि मैं तो गुनहगार हूं, क्या मुझे भी ध्यान हो सकेगा?
यही हमें समझाया गया है कि आदमी पापी है, गुनहगार है। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम्हारे सब गुनाह, तुम्हारे सब पाप दर्पण पर जमी धूल की तरह हैं; हवा का एक झोंका उड़ा ले जाएगा। और दर्पण धूल से नष्ट नहीं होता, दब भला जाए; उसमें प्रतिबिंब बनने विकृत हो जाएं, न बनें, इतनी धूल की परतें जम जाएं; मगर धूलों की परतों के नीचे भी दर्पण अभी भी उतना ही शुद्ध है जितना पहले था। दर्पण धूल से अशुद्ध होता ही नहीं। दर्पण के अशुद्ध होने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे भी अशुद्ध होने का कोई उपाय नहीं। फिरोज, ये पागलपन की बातें छोड़ो कि मुझ गुनहगार को भी क्या ध्यान होगा! फिरोज पाकिस्तान से आए हैं। बैठी हैं मन में बात मुल्लाओं-मौलवियों की--कि आदमी गुनहगार है! क्षमा मांगो, तपश्चर्या करो, गलाओ अपने को!
नहीं, इस सब की कोई आवश्यकता नहीं है। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, सिर्फ आंख मोड़ो भीतर। ध्यान है आंख का मोड़ना--न तपश्चर्या, न श्रम। और जैसे ही आंख मुड़ी और एक बार तुम्हें अपने स्वरूप का दर्शन हो गया, फिर कोई पाप न हो सकेगा।
मैं तुमसे कुछ और ही कह रहा हूं। तुम्हें अब तक यही समझाया गया है कि
जब तुम पाप नहीं करोगे तब ध्यान होगा। मैं कह रहा हूं, ध्यान होगा तो फिर पाप नहीं होगा। तुम्हें समझाया गया है, जब अंधेरा मिट जाएगा तो रोशनी होगी। जिन्होंने यह बात समझाई है वे अंधे थे और उनकी बात मान कर तुम भी सदियों से अंधे हो। मैं तुम्हें समझा रहा हूं कि जब रोशनी होगी तो अंधेरा नहीं होगा।
और मैं जो कह रहा हूं वह परम वैज्ञानिक सत्य है। तुम अंधेरे से लड़ रहे हो। पाप क्या है? अंधेरा है। उसका कोई अस्तित्व है? मूर्च्छा है, बेहोशी है; उसका कोई अस्तित्व है? सिर्फ होश का अभाव है। जैसे अंधकार प्रकाश का अभाव है।
एक घर में हजारों-हजारों साल से अंधेरा रहा हो और तुम जाकर एक छोटा सा दीया जलाओ, क्या अंधेरा यह कहेगा कि अरे दीये, तू अभी जला, जान में तेरी जान नहीं, हम बहुत प्राचीन हैं, सदियों-सदियों से इस घर में रह रहे हैं, तेरे जलने से निकल न जाएंगे। ऐसे दीये तो जलते रहें सदियों तक तो भी हमारा बाल बांका नहीं होने वाला। क्या अंधेरा ऐसा कह सकेगा?
नहीं, इधर दीया जला कि उधर अंधेरा गया। गया कहना भी भाषा की भूल है। अंधेरा था ही नहीं, सिर्फ दीये के अभाव का नाम था। अंधेरे की कोई वस्तुगत सत्ता नहीं थी, उसका कोई अस्तित्व नहीं था। इधर दीया जला उधर हमने पाया कि अंधेरा नहीं है, क्योंकि भाव और अभाव साथ-साथ कैसे होंगे? जब प्रकाश आ गया तो अंधेरा गया। और ऐसी ही क्रांति घटती है भीतर। ध्यान प्रकाश है, जाग जाना है। जागे, फिर कोई पाप नहीं होता।
तो मैं तुम्हारे गणित को पूरा बदल देना चाहता हूं। इसीलिए तो मुझसे पंडित-पुरोहित नाराज हैं। क्योंकि उनका गणित हैः पहले अंधेरा हटाओ। और उसी में तुमको उलझाए रखते हैं; न अंधेरा हटता है, न बात सुलझती है, न पंडित के जाल से तुम मुक्त हो सकते हो। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं का सारा व्यवसाय, उनके व्यवसाय की आधारभूत कुंजी यही है कि तुम्हें एक ऐसे काम में उलझा दिया है जो हल हो ही नहीं सकता।
तुमने जरूर यह कहानी सुनी होगी कि एक आदमी निकलता था समुद्र के किनारे से। उसे एक बोतल पड़ी हुई मिल गई। जिज्ञासावश उसने बोतल खोली--तुमने भी खोली होती--क्या है बोतल के भीतर? बड़ा धुआं उठा और एक प्रेत प्रकट हुआ। और उस प्रेत ने कहा कि तू धन्यभागी है, क्योंकि मैं कोई साधारण प्रेत नहीं हूं, मैं प्रेतों का सम्राट हूं। मैं सजा भुगत रहा था और उस दिन की प्रतीक्षा थी कि कोई मुझे मुक्त कर दे। तूने मुझे मुक्त किया। तू जो भी

कहेगा वह मैं करूंगा। बस मेरी शर्त एक है कि मुझे चौबीस घंटे काम चाहिए।
मैं एक क्षण खाली नहीं बैठ सकता।
वह आदमी तो बहुत खुश हुआ। उसने कहा, इससे अच्छा और क्या होगा! आओ, बहुत काम हैं मेरे पास। एक क्षण खाली क्यों बैठोगे? बहुत वासनाएं हैं, बहुत इच्छाएं हैं मेरी, उनको पूरी करने में लगो।
जाते ही आज्ञा दी, बनाओ महल! इधर उसने कहा उधर प्रेत ने महल बना दिया। प्रेत फिर खड़ा था सामने। थोड़ा आदमी घबड़ाया कि अगर इतनी जल्दी चीजें हुईं तो जल्दी ही चुक जाएंगी। लाओ धन, हीरे-जवाहरात, सोना-चांदी! इधर वह कहे उधर प्रेत पूरा करे। दोपहर होते-होते वे जो अनंत वासनाएं मालूम होती थीं, वे खत्म हो गईं। और प्रेत ने कहा कि याद रखना, मैं खाली बैठ ही नहीं सकता। काम बताओ। अगर काम नहीं बताया तो गर्दन दबा दूंगा।
भागा वह आदमी एक फकीर के पास, क्योंकि उसी फकीर के पास सदा गया था--जब
भी कोई उलझन होती थी सुलझाने के लिए। उस फकीर ने कहा, यह सीढ़ी रखी है, यह तू ले जा। इस सीढ़ी को लगा दे और उससे कह--पहले ऊपर चढ़ो, फिर नीचे उतरो; फिर ऊपर चढ़ो, फिर नीचे उतरो। उस आदमी ने कहा, मुझे न सूझी यह बात! इतनी सरल तरकीब-- चढ़ाते रहो, उतारते रहो। मरने दो उसको, चढ़ने दो, उतरने दो; जब उतर जाए तो कहो चढ़ो। कहना बार-बार आज्ञा देने की जरूरत भी नहीं है; एक दफे दे दी आज्ञाः उतरो-चढ़ो, उतरो-चढ़ो।
उस आदमी ने कहा कि महाराज, एक सवाल सिर्फ मन में उठता है कि क्या आपका कभी ऐसे भूत से पाला पड़ा? आपने एकदम से उत्तर दे दिया!
वह फकीर हंसा और उसने कहा कि यही हमारा धंधा है। लोगों को ऐसी सीढ़ियों
पर चढ़ना-उतरना, यही हम करवाते हैं। यही फकीरों का सदा से धंधा है। लोग उलझे रहते हैं, सुलझाव कभी आता नहीं। सुलझाव आता नहीं, इसलिए वे हमारे पास आते हैं सुलझाव पूछने।
तुम्हारे निन्यानबे प्रतिशत उलझाव तुम्हारे पंडितों-पुरोहितों के द्वारा खड़े किए गए हैं; तुम्हारे उलझाव नहीं हैं। तुम्हारे उलझाव तो बहुत थोड़े हैं जो हल हो सकते हैं; जरा सी क्रांति से हल हो सकते हैं। जरा सी चिनगारी ध्यान की, और तुम्हारे सब पाप भस्मीभूत हो जाएं। मगर पंडित तुम्हें एक ऐसा काम समझा रहे हैं जो हल ही नहीं हो सकता, जन्मों-जन्मों में हल नहीं हो सकता। अंधेरे से लड़ो, यह उनकी शिक्षा है। बुराई से लड़ो, यह उनकी शिक्षा है। अशुभ से लड़ो, पाप से लड़ो, यह उनकी शिक्षा है।
अब कोई आदमी अंधेरे से कितना ही लड़े, वह चाहे गामा पहलवान ही क्यों न
हो या मोहम्मद अली क्यों न हो, लड़ता रहे अंधेरे से, खूब ठोंके ताल--खुद ही हारेगा, अंधेरा नहीं हारेगा! धक्के दे अंधेरे को, बांधे पोटलियां, फेंक आए बाहर; पोटलियां फिंक जाएंगी, अंधेरा वहां का वहां रह जाएगा। अंधेरे को इंच भर सरकाया नहीं जा सकता।
और इसी में जिंदगी बीतेगी तो निश्चित हीनता की ग्रंथि पैदा होगी कि मैं कैसा महापापी हूं कि यह छोटी सी बात से मेरा छुटकारा नहीं होता! कामवासना में जकड़ा बैठा हूं, कैसा महापापी हूं! और तुम्हारे सारे धर्मगुरु समझा रहे हैं, लड़ो कामवासना से तो छुटकारा होगा! और तुम यह भी नहीं देखते कि यह धर्मगुरु हजारों साल से कह रहे हैं। कम से कम पांच हजार साल का तो लिखित इतिहास है; उससे भी पहले से कह रहे हैं। पांच हजार साल में लड़वाते रहे, अब तक कामवासना का कुछ हल हुआ है? कामवासना बढ़ी है, घटी नहीं। तुम्हारे लड़ने से तुम कमजोर हुए हो, शक्तिशाली नहीं। तुम्हारे लड़ने
से तुम दीन हुए हो, हीन हुए हो। क्योंकि जब बार-बार हार हाथ लगती है तो आदमी के मन में विषाद पैदा होता है। जब बार-बार हार हाथ लगती है तो आदमी के मन में अपने ही प्रति निंदा और घृणा पैदा होती है; अपनी दीनता, हीनता, असहाय अवस्था का भाव पैदा होता है। आदमी दुर्बल होता गया। आत्मविश्वास खो दिया है आदमी ने, क्योंकि उसे ऐसी चीजें करने को कही गई हैं जो हो ही नहीं सकतीं।
जैसे कोई तुमसे कहे कि इस वर्तुल को चौकोर करो! अब अगर वर्तुल को चौकोर करोगे तो वह वर्तुल न रहा। अगर वर्तुल को वर्तुल रखोगे तो चौकोर नहीं हो सकता। उलझा दिया किसी ने तुम्हें एक झंझट में। अब तुम फंस गए। न

कभी वर्तुल चौकोर होगा, न कभी तुम इस जाल के बाहर आओगे। और स्वभावतः जितने तुम फंस जाओगे उतने ही तुम पूछने जाओगे। और तुम्हें पता नहीं कि जिनसे तुम पूछने जा रहे हो वे भी तुम जैसे ही फंसे हैं; किन्हीं औरों ने उन्हें फंसाया है। फंसाव बड़े पुराने हैं, बड़े प्राचीन, उनकी बड़ी लंबी परंपराएं हैं।
मैं तुम्हें सीधे सूत्र की बात कह रहा हूं। मैं कहता हूं, अंधेरे से
मत लड़ो। पाप से लड़ना ही मत। सिर्फ भीतर प्रकाश है, उसकी तरफ आंख मोड़ो। तुम पीठ किए खड़े हो; प्रकाश को जलाना भी नहीं है, सिर्फ मुड़ना है। यह मुड़ना पल भर में हो सकता है। पल भर में ही होगा। इसके लिए कोई जन्म-जन्म लगेंगे मुड़ने के लिए? एक झटके में हो जाएगा। इधर आंख बंद कि उधर दिखाई पड़ जाएगा। और जैसे ही तुम्हें प्रकाश दिखाई पड़ा, अंधेरा गया। फिर तुम करना भी चाहो पाप तो न कर सकोगे।
फिरोज, कितने ही गुनाह किए हों, क्या खाक गुनाह किए होंगे! परमात्मा
की करुणा तुम्हारे गुनाहों से बहुत बड़ी है। जरा सोचो, क्या गुनाह करोगे, जो परमात्मा की करुणा की बाढ़ आएगी उसमें बह न जाएंगे? सब बह जाएंगे। तुम्हारा प्रश्न तो ऐसे ही है जैसे कोई पूछे कि क्या बीमार आदमी की भी चिकित्सा हो सकती है?
बीमार की न होगी तो और किसकी होगी? अगर कोई चिकित्सक यह शर्त लगा दे कि केवल मैं स्वस्थ लोगों की चिकित्सा करूंगा, तो तुम उसको क्या कहोगे? चिकित्सक कहोगे या पागल कहोगे?
गुनहगार हो, अच्छे लक्षण हैं। बीमारी का पता है, इलाज हो सकता है। निदान हो ही गया, अब औषधि की जरूरत है। क्या तुम सोचते हो औषधि केवल स्वस्थ लोगों पर काम करती है? तो वह क्या औषधि है! औषधि बीमारी पर काम करती है। और बीमारी पहले नहीं छोड़नी पड़ती; औषधि पहले लेनी पड़ती है, बीमारी फिर छूटती है। ध्यान औषधि है।
बुद्ध ने तो बार-बार कहा है कि मैं एक चिकित्सक हूं। नानक ने भी कहा है
कि मैं एक वैद्य हूं। ठीक कहीं ये बातें--चिकित्सक, वैद्य, उपचारक! उपदेशक नहीं।
मैं भी तुमसे कहता हूं, मैं एक चिकित्सक हूं, उपदेशक नहीं। उपदेशक होता तो मुझे बड़ी आसानी थी; यह सारा देश सम्मान करता, सत्कार करता, क्योंकि इस देश की जड़ धारणाओं के साथ मेरा तालमेल होता। मैं चिकित्सक हूं। और तुम्हारे भीतर बहुत सी गांठें हैं कैंसर की, वे काटनी हैं। और उनको काटना पीड़ादायी है। और उन गांठों को तुमने अब तक समझा है बड़ा बहुमूल्य, हीरे- जवाहरातों जैसा! उनको तुम सजा कर बैठे हो, उनकी तुम पूजा कर रहे हो। और मैं कहता हूं कि उन्हीं में उलझे हो, इसलिए तुम्हारे जीवन में पूजन की सुगंध नहीं उठ पा रही।
हंसा, ठीक हुआ। यह पल भर में ही हो जाता है। यह क्रांति है, विकास नहीं। इसकी सीढ़ियां नहीं हैं, यह छलांग है।
तू पूछती हैः "पल भर में यह क्या हो गया!"
निश्चित ही समझ में नहीं आता जब पहली बार होता है। कैसे समझ में आएगा? समझ के पास कोई आधार नहीं होते, कोई प्रत्यय नहीं होते। समझ के पास कोई धारणाएं नहीं होतीं, पुराने अनुभव नहीं होते। समझ तो उसी को समझ सकती है जिसे पहले समझा हो। यह तो इतना नया है, इतना नवीन, इतना नूतन, सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया, आकाश से उतरा! समझ इसे नहीं समझ पाएगी।
यह बात समझने की है भी नहीं। यह बात तो नाचने की है। यह बात तो गीत गाने की है। यह बात तो मस्त हो जाने की है, बांसुरी बजाने की है; समझने की नहीं है। नहीं तुझे समझ में आएगा। यह घटना तो इतना आश्चर्य-विमुग्ध कर जाती है, ऐसे रहस्य से भर जाती है कि फिर वह रहस्य कभी चुकता नहीं। जितनी गहराई बढ़ेगी इस रोशनी की... अभी तो यह शुरुआत है, अभी तो बस पहली किरण उतरी है। अभी तो पूरे सूरज उतरेंगे, सूरज के बाद सूरज उतरेंगे!
कबीर ने कहा हैः जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उतर आएं, ऐसी घटना घटती है समाधि में!
तू पूछती हैः "पल भर में यह क्या हो गया,

वह मैं गई, वह मन गया!"
एक ही क्षण में बात चली जाती है, क्योंकि न तो मैं का कोई अस्तित्व है... मैं एक झूठ है, सब से बड़ा झूठ! और मन क्या है? अतीत और भविष्य, अभाव। मन के अभाव का जो केंद्र है उसी का नाम मैं है। इसलिए मैं सब से बड़ा झूठ है। तुम हो नहीं, परमात्मा है; मगर तुमने मान रखा है कि मैं हूं। और जब तक तुम पकड़े हो इस मैं को, तब तक अड़चन रहेगी।
और लोग बहुत कुछ कर लेते हैं, संसार से छोड़ कर पहाड़ों पर भाग जाते हैं, मगर मैं नहीं छूटता। मैं कोई ऐसे छूटेगा? यहां गृहस्थी थे, वहां तपस्वी हो जाते हैं। यहां भोगी थे, वहां योगी हो जाते हैं। "मैं" भोग के कपड़े छोड़ कर योग के कपड़े पहन लेता है; इससे क्या फर्क पड़ता है? "मैं" धन छोड़ देता है और त्याग के आभूषण पहन लेता है; इससे क्या होता है? सच तो यह है कि त्यागी का अहंकार भोगी के अहंकार से कहीं ज्यादा बड़ा होता है। होगा भी, क्योंकि धनी तो बहुत हैं, भोगी तो बहुत हैं, त्यागी तो बहुत विरले होते हैं। साधारण आदमी इतना अहंकारी हो भी तो कैसे हो? जानता है कि साधारण हूं। लेकिन जिसने व्रत किए, उपवास किए, योग साधा, आसन साधे, प्राणायाम, प्रत्याहार, शास्त्रों का अध्ययन किया, वेद कंठस्थ किए--उसके अहंकार में रोज-रोज नयी संपदा जुड़ती जाती है। इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा में जैसा अहंकार होता है वैसा अहंकार साधारण आदमी में नहीं होता। दो महात्माओं को एक ही मंच पर बिठालना तक मुश्किल है।
एक बार मैं एक सभा में आमंत्रित हुआ, वहां तीन सौ महात्मा इकट्ठे थे।
एक सर्व धर्म सम्मेलन मनाया जा रहा था, सब धर्मों के लोग बुलाए गए थे। मंच इतनी बड़ी बनाई गई थी कि उस पर तीन सौ लोग बैठ सकें। लेकिन एक-एक ने बैठ कर व्याख्यान दिया, क्योंकि सब साथ बैठने को राजी नहीं। क्या अड़चन थी? अड़चन यह थी कि कौन ऊपर बैठे, कौन नीचे बैठे। शंकराचार्य वहां मौजूद थे पुरी के, वे अपने सिंहासन पर ही बैठेंगे! अगर वे सिंहासन पर बैठेंगे तो करपात्री महाराज नीचे नहीं बैठे सकते। उनको भी सिंहासन चाहिए उतना ही ऊंचा। और फिर और-और लोग थे, जब एक सिंहासन पर बैठे तो दूसरा कैसे नीचे? आखिर तीन सौ लोगों के मंच पर एक-एक व्यक्ति ने बैठ कर व्याख्यान दिया, तीन सौ साथ नहीं बिठाए जा सके।
यह अहंकार देखते हो! यह विक्षिप्तता देखते हो! और ये विक्षिप्त लोग दूसरों को स्वस्थ करने चले हैं।
मैंने सुना है, एक किसान को यह मानसिक बीमारी थी कि वह स्वयं को बैल समझने लगा था, वह बैलों की तरह ही चलता था और बैलों की तरह ही रंभाता था। परिवार के लोग और मित्रजन परेशान हो गए। गांव में ही एक पंडित जी आए, जो झाड़ा-फूंकी के लिए भी प्रसिद्ध थे। घर के लोग उस किसान को पंडित जी के पास ले गए। किसान की पत्नी ने रो-रो कर सब हाल सुनाया। पंडित जी ने कहा, घबड़ाने की कोई बात नहीं बेटी, यह तो बड़ा मामूली सा रोग है। और जवानी के दिनों में मुझे खुद यह रोग हो गया था। मैं सिर्फ बैलों जैसा चलता और रंभाता ही नहीं था, बल्कि घास-फूस और खली-चूनी भी खाने लगा था। मेरी खुद पर आजमाई हुई जड़ी मैं इसे दूंगा, इसलिए गारंटी भी दे सकता हूं कि बीमारी अवश्य ठीक होगी, क्योंकि मेरी खुद की बीमारी इसी जड़ी-बूटी से ठीक हो गई थी।
ऐसा कहते हुए पंडित जी ने आत्मविश्वास के साथ एक मंत्र-सिद्ध जड़ी- बूटी दी और बताया कि इसे एक काले रंग के कपड़े से बांध कर सात गांठें लगा कर अमावस की रात को ठीक बारह बजे मरीज के पेट पर रख देना, बस तुरंत ही रोग ठीक हो जाएगा।
किसान की पत्नी ने डरते-डरते पूछा, महाराज, क्या यह उचित न होगा कि पेट
की बजाय मरीज के सिर पर जड़ी की पोटली रखी जाए, क्योंकि बीमारी तो दिमाग में है।
अगर मुझसे ज्यादा अक्ल तुझमें है तो फिर मेरे पास तू आई ही क्यों? पंडित जी ने गुस्से में आगबबूला होकर कहा। अरे मूर्ख, अगर तू सिर पर पोटली रखने जाएगी तो वह तुझे सींग नहीं मार देगा?

पंडित जी को ख्याल होगा कि बीमारी ठीक हो गई है--अभी बीमारी ठीक नहीं हुई। अभी पंडित जी भी उतने ही रुग्ण हैं, वहीं के वहीं हैं। उनकी भ्रांति में कोई भेद नहीं पड़ा है।
भोगी से त्यागी हो जाओ, अज्ञानी से ज्ञानी हो जाओ, संसारी से संन्यासी
हो जाओ, बाजार छोड़ मरघट पर रहने लगो, वस्त्रों को छोड़ नग्न हो जाओ--नहीं कुछ फर्क पड़ेगा। अहंकार नये-नये रूप ले लेगा। अहंकार तो मिटता है केवल एक ही घड़ी में, जब तुम भीतर झांकते हो और पाते हो कि मैं हूं ही नहीं। और ध्यान रखना, अहंकार मिटाए नहीं मिटता। कोई मिटाना चाहेगा तो नहीं मिटा सकेगा। क्योंकि जो अहंकार को मिटाने चला है उसने पहली तो यह बात मान ही ली कि अहंकार है, और वहीं भ्रांति हो गई। भ्रांति ही आधार बन गई, अब आगे कुछ नहीं हो सकता। पहला कदम ही गलत हो गया।
अहंकार है ही नहीं, ऐसा जानना पर्याप्त है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं
कि ऐसा मान लो कि अहंकार है ही नहीं, क्योंकि मानने से कुछ भी नहीं होगा। मानना तो नपुंसक है। जानने में बल है और वीर्य है। जैसे ही भीतर झांकोगे, अहंकार पाया ही नहीं जाता, क्योंकि वहां अहंकार है ही नहीं--कोरा आकाश है चैतन्य का। और उस चैतन्य के कोरे आकाश को देखोगे, चकित हो जाओगेः वहां कोई मैं-भाव नहीं है। होना तो है, अस्तित्व है, लेकिन मैं का कोई भाव नहीं है। इस मैं के अभाव को जिसने जान लिया, उसने प्रभु के लिए द्वार खोल दिए।
तू कहती है हंसाः "वह मैं गई, वह मन गया!
चुनरी कहे, सुन री पवन,
सावन आया अब के सजन!"
निश्चित ही और सब सावन तो झूठे हैं, ध्यान का सावन जब आता है तभी सावन आता है! क्योंकि ध्यान के सावन में ही मेघ बरसते हैं अमृत के। उसके पहले जीवन तो व्यर्थ की आपाधापी है।
हंसा, पहली किरण उठी, नाच! आनंदित हो! इस किरण को समझने की चेष्टा मत करना, क्योंकि समझ बहुत छोटी बात है। ये रहस्य समझने के नहीं हैं, ये रहस्य जीने के हैं। बड़भागी है तू, मस्त हो! मग्न हो!

दूसरा प्रश्नः ओशो, जीवन के हर आयाम में सत्य के सामने झुकना मुश्किल
है और झूठ के सामने झुकना सरल। ऐसी उलटबांसी क्यों है?

मुकेश, उलटबांसी जरा भी नहीं है; सिर्फ तुम्हारे विचार में जरा सी चूक
हो गई है, इसलिए उलटबांसी दिखाई पड़ रही है। चूक बहुत छोटी है, शायद एकदम से दिखाई न पड़े, थोड़ी खुर्दबीन लेकर देखोगे तो दिखाई पड़ेगी।
सत्य के सामने झुकना पड़ता है; झूठ के सामने झुकना ही नहीं पड़ता, झूठ तुम्हारे सामने झुकता है। और इसीलिए झूठ से दोस्ती आसान है, क्योंकि झूठ तुम्हारे सामने झुकता है। और सत्य से दोस्ती कठिन है, क्योंकि सत्य के सामने तुम्हें झुकना पड़ता है। अंधा अंधेरे से दोस्ती कर सकता है, क्योंकि अंधेरा आंखें चाहिए ऐसी मांग नहीं करता। लेकिन अंधा प्रकाश से दोस्ती नहीं कर सकता है, क्योंकि प्रकाश से दोस्ती के लिए पहले तो आंखें चाहिए। अंधा अमावस की रात के साथ तो तल्लीन हो सकता है, मगर पूर्णिमा की रात के साथ बेचैन हो जाएगा। पूर्णिमा की रात उसे उसके अंधेपन की याद दिलाएगी; अमावस की रात अंधेपन को भुलाएगी, याद नहीं दिलाएगी।
तुम कहते होः "जीवन के हर आयाम में सत्य के सामने झुकना मुश्किल है।"
यह सच है, क्योंकि सत्य के सामने झुकने का अर्थ होता है अहंकार को विसर्जित करना।
लेकिन दूसरी बात सच नहीं है जो तुम कहते हो कि झूठ के सामने झुकना सरल क्यों है?
झूठ के सामने झुकना ही नहीं पड़ता; झूठ तो बहुत जी-हजूर है। झूठ तो सदा तुम्हारे सामने झुका हुआ खड़ा है, तुम्हारे पैरों में बैठा है। झूठ तो गुलाम है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन लखनऊ के एक नवाब का नौकर था। शुरुआत
तो छोटी सी नौकरी से हुई थी, लेकिन कुशल आदमी है, चमचागिरी में कुशल, जल्दी

ही नवाब के बहुत अंतरंग लोगों में हो गया। चमचे का अर्थ होता हैः झूठ बोलने में कुशल। चमचे का अर्थ होता हैः झूठ की कला में पारंगत। चमचे का अर्थ होता हैः अंधे को नैनसुख कहे, या अंधे को प्रज्ञाच्रु कहे। चमचे का अर्थ होता हैः कुरूप को सौंदर्य की गरिमा दे, महिमा दे, गीत गाए; जो गालियों के भी योग्य नहीं है उसके लिए गीत गाए।
मुल्ला जल्दी ही सीढ़ियां चढ़ा, बहुत जल्दी नवाब का सबसे अंतरंग मित्र
हो गया--ऐसा अंतरंग कि नवाब उसके बिना उठे नहीं, बैठे नहीं; ऐसा अंतरंग कि रात सोए भी नवाब तो मुल्ला भी उसी कमरे में सोए। एक दिन दोनों खाना खाने बैठे हैं, नवाब को सब्जी बहुत पसंद आई। भिंडी की सब्जी बनी, नयी-नयी अभी ताजी-ताजी भिंडियां आई हैं। नवाब ने कहा मुल्ला को कि भिंडी की सब्जी भी बड़ी गजब की चीज है! मुल्ला ने कहा, क्यों न हो! अरे भिंडी के संबंध में तो शास्त्रों में ऐसे-ऐसे उल्लेख हैं कि अमृत है भिंडी, कि हजार रोगों की एक दवा है भिंडी, कि बूढ़ा खाए तो जवान हो जाए, कि कहानियां तो यहां तक हैं कि मुर्दों ने खाई तो जिंदा हो गए! जितना झूठ बोल सकता था भिंडी के संबंध में, बोला। रसोइए ने भी सुन लिया कि भिंडी तो अदभुत चीज है और नवाब ने भी माना। रसोइया रोज भिंडी बनाने लगा।
अब एक दिन भिंडी हो तो चल जाए, दूसरे दिन भिंडी हो तो चला लो, तीसरे दिन मुश्किल होने लगे। जब सातवें दिन फिर भिंडी बनी तो नवाब ने थाली फेंक दी। कहा, यह क्या मचा रखा है? क्या मुझे मारोगे? भिंडी, भिंडी, भिंडी!
मुल्ला नसरुद्दीन एकदम आगबबूला हो गया, उसने भी अपनी थाली फेंक दी। उसने कहा, यह रसोइया पागल है। अरे भिंडी जहर है! शास्त्रों में तो साफ लिखा है कि जवान खाएं तो बूढ़े हो जाएं; और बूढ़े खाएं कि मरे। बच्चों ने खाई है, बाल सफेद हो गए हैं।
नवाब ने कहा, अरे नसरुद्दीन, और सात दिन पहले तो तुम कुछ और कहते थे! नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, मैं आपका गुलाम हूं, भिंडी का नहीं। मैं तनख्वाह आपसे पाता हूं, भिंडी से नहीं। अरे भिंडी से मुझे क्या लेना-देना है? आप जिसमें खुश, मैं उसमें खुश।
झूठ सदा तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा रहेगा। झूठ के सामने तुम्हें झुकना ही नहीं होता। झूठ तो खुद ही झुका है। झूठ तो तुम्हें फुसलाता है। झूठ तो तुम्हारे ऊपर जितना मक्खन चढ़ा सके चढ़ाता है; जितनी पूजा-अर्चना तुम्हारी कर सके करता है। तब तो तुम्हें अपने लिए राजी कर पाता है। नहीं तो झूठ के लिए कौन राजी होगा! झूठ के साथ कौन चलेगा!
झूठ बड़े सुंदर वस्त्र पहन कर आता है। झूठ बड़े सुंदर रूप रख कर आता है। झूठ शास्त्रों के सहारे लेकर आता है। कहावत है कि शैतान शास्त्रों का उल्लेख करता है। झूठ डरा हुआ है कि अगर किसी ने गौर से देख लिया, वस्त्र उघाड़ कर देख लिए, तो भीतर का खोखलापन दिखाई पड़ जाएगा। इसलिए झूठ सब आयोजन करता है कि तुम्हें उसकी सचाई दिखाई न पड़े। झूठ तो तुम्हारे चरण दबाता है। झूठ तो बड़ा सेवक है।
मुकेश, इसलिए झूठ के साथ दोस्ती आसान, क्योंकि झूठ तुम्हें रूपांतरित करने की बात ही नहीं करता। झूठ तो कहता है कि तुम हो ही, जो होना चाहिए वही हो, उससे भी श्रेष्ठ तुम हो। झूठ तुम्हारी प्रशंसा के पुल बांधता है। झूठ तुम्हें बड़ी सांत्वना देता है। और कितने-कितने झूठ हमने गढ़े हैं! इतने झूठ कि अगर तुम खोजने चलो तो घबड़ा जाओ! सत्य तो एक है, झूठ अनंत हैं। झूठ अनेक हैं। जैसे स्वास्थ्य एक है और बीमारियां अनेक हैं, ऐसे ही सत्य एक है।
और सत्य तुम्हें फुसलाएगा नहीं, तुम्हारी खुशामद नहीं करेगा। सत्य तो कड़वा मालूम पड़ेगा, क्योंकि तुम झूठ की मिठास के आदी हो गए हो। झूठ तो अपने ऊपर शक्कर चढ़ा कर आएगा। सत्य तो जैसा है वैसा है--नग्न! जो लोग झूठ के आदी हो गए हैं, वे सत्य से तो आंखें चुराएंगे; सत्य उनकी जीभ को जमेगा ही नहीं। सत्य तो उन्हें बहुत तिक्त मालूम होगा, कड़वा मालूम होगा।
और ख्याल रखना, हम आदतों से जीते हैं। मैंने सुना है, एक रास्ते पर भरी दोपहरी में एक आदमी गिर पड़ा और बेहोश हो गया। वह रास्ता इत्र वालों का रास्ता था, इत्र वालों की गली थी। सामने की ही दुकान से, जिस आदमी की दुकान थी वह अपना सब से कीमती इत्र लेकर आया। उसने सुन रखा था कि यह इत्र अगर

किसी बेहोश आदमी को सुंघाया जाए तो वह होश में आ जाए। उसने बेहोश आदमी को इत्र सुंघाया। वह बेहोश आदमी तड़फने लगा जैसे मछली तड़फती है। अभी तक तो शांत पड़ा था, अब तड़फने लगा, जैसे मछली तड़फती हो रेत में डाल दी गई हो, धूप में डाल दी गई हो। वह तो बड़ा हैरान हुआ। और उसने हाथ से बेहोश आदमी ने इस तरह इशारे किए कि हटाओ, अलग करो!
भीड़ में एक और आदमी खड़ा था, उसने कहा कि आप मार डालोगे उस आदमी को। यह इत्र हटाओ यहां से! मैं इंतजाम करता हूं। वह एक टोकरी लिए हुए था, टोकरी में एक पुराना सड़ा-गला वस्त्र, उसने उस पर पानी छिड़का और उस आदमी के मुंह पर रख दिया। तत्क्षण वह आदमी होश में आ गया और उसने कहा कि मेरे भाई, किसने मुझे बचाया? कोई मेरी जान लिए ले रहा था! हालांकि मुझे बेहोशी थी, मगर कोई मेरी जान लिए ले रहा था, इतनी तेज पीड़ा मुझे होने लगी कि मुझे बेहोशी में भी पता चल रहा था कि कोई मुझे मारे डाल रहा है। सांस घुटने लगी मेरी। कोई ऐसी बदबू सुंघा रहा था। यह तुम कौन हो जिसने मछलियों की सुगंध मेरे नासापुटों में भर दी?
उस आदमी ने कहा, मैं भी एक मछुआ हूं जैसे तुम मछुआ हो। मैं भी मछली बेचने आया था जैसे तुम बेचने आए थे। मैं जानता हूं कि मछुआ तो सिर्फ एक ही सुगंध पहचानता है, वह मछली की। मछली तो नहीं थीं मेरे पास, लेकिन यह कपड़ा जिसमें मैं हमेशा मछलियां बांध कर लाता हूं और बेचता हूं, यह पुराना कपड़ा मेरे पास था। यह तो मछलियों की गंध से तरोबोर है। इस पर जरा पानी छिड़क दिया और तेरी नाक पर रख दिया, होश आ गया। और मैं जानता हूं कि यह इत्र वाला तेरी जान ले लेता।
वह इत्र की गली में लगी भीड़ तो चकित हो गई। निश्चित ही जिसको मछली में सुगंध आती हो उसको इत्र में दुर्गंध आएगी। जो झूठ के साथ बहुत दोस्ती बना ली है... और हमने कितने झूठों के साथ दोस्ती बना ली है! हमें बचपन से झूठ ही पिलाए जा रहे हैं। दूध में, मां के दूध में हमें झूठ पिलाए जा रहे हैं। तुम जब पैदा होते हो, हिंदू नहीं होते, मुसलमान नहीं होते, ईसाई नहीं होते, जैन नहीं होते; मगर एक झूठ पिलाया जाता है कि तुम जैन हो, कि तुम हिंदू हो, कि तुम ईसाई हो। फिर झूठों पर झूठ, कि जैन भी तुम दिगंबर नहीं हो, श्वेतांबर हो। फिर झूठों पर झूठों पर झूठ, कि श्वेतांबर भी तुम स्थानकवासी नहीं हो, तेरापंथी हो। कि तुम भारत की पुण्यभूमि में पैदा हुए हो। जैसे और सारी भूमियां पाप की भूमियां हैं, भारत पुण्यभूमि है! और भूमि इकट्ठी है, बंटी हुई नहीं है कहीं। कोई रेखा नहीं है भूमि पर।
अब यह बड़ा मजा है, उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले लाहौर पुण्यभूमि थी, कराची भी, ढाका भी। अब? अब पुण्यभूमि नहीं रही, क्योंकि नक्शे पर पाकिस्तान अलग हो गया। पुण्यभूमि कहां है? यह सारी पृथ्वी या तो पुण्यभूमि है या फिर कोई भूमि पुण्यभूमि नहीं है। मगर झूठ... ।
जर्मनों को समझाया जा रहा है कि तुम्हीं श्रेष्ठ जाति हो, जगत पर राज्य करने को तुम्हीं पैदा हुए हो। जर्मन जैसी बुद्धिमान जाति को भी अडोल्फ हिटलर जैसा जड़बुद्धि आदमी, बिल्कुल सामान्य प्रतिभा का आदमी, जिसकी कोई योग्यता नहीं है, वह भी मूढ़ बना सका--मूढ़ बना सका एक बहुत विचारशील जाति को! क्यों? क्योंकि उसने ऐसा झूठ बोला जो सब के मन भाया। उसने ऐसा झूठ बोला जिसको कोई इनकार न कर पाया। उसने कहा कि तुम आर्य हो-- शुद्ध आर्य! तुम ही पैदा हुए हो दुनिया पर राज्य करने को।
कौन इनकार करे! अगर कोई तुमसे यह कहे कि तुम शुद्ध आर्य हो, बस तुम्हीं
हो शुद्ध, बाकी सारा जगत अशुद्ध हो चुका है, एक तुम पर ही आशा है जगत की। चाहे तुम्हें यह बात शुरू-शुरू में एकदम झूठ भी लगे कि तुम और शुद्ध आर्य, कि तुम्हीं पैदा हुए हो जगत पर राज्य करने को; मगर फिर भी मन मान लेने को राजी होगा। मन कहेगा कि बात सच ही होगी, नहीं तो कोई कहेगा ऐसा! और जब पूरी जाति को यह बात कही जाती है तो जहर बड़े जोर से फैलता है। और जब भीड़ मानने लगती है तो भीड़ ही नहीं मानने लगती, समझदार से समझदार लोग मानने लगते हैं। जर्मनी का सबसे बड़ा विचारक मार्टिन हाइडेगर, जो इस सदी के बड़े से बड़े विचारकों में एक है, उसने भी अडोल्फ हिटलर को स्वीकार कर लिया। क्योंकि चाहे कितने ही बड़े तुम विचारक क्यों न होओ, तुम्हारे भीतर वही झूठ बैठे

हुए हैं जो सबके भीतर बैठे हुए हैं। और जब तुम्हारे अहंकार को कोई फुसलाता है और फुग्गे की तरह फुलाता है तो एकदम राजी हो जाते हो। जर्मन जाति राजी हो गई कि दुनिया पर राज्य करने को पैदा हुए हैं, राज्य करके रहेंगे। यह ईश्वर ने हमारे ऊपर विशेष जिम्मेवारी दी है, उत्तरदायित्व है हमारा। यहूदी सदा से मानते रहे हैं कि वे ही ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। इस झूठी बात के मानने के कारण सदियों-सदियों सताए गए हैं, मगर वे छोड़ते नहीं; जितने सताए गए उतने ही उन्होंने जोर से इस बात को पकड़ लिया है। क्योंकि जितने सताए गए उतना उनको भरोसा आया कि जरूर हम ईश्वर के चुने हुए आदमी हैं। क्योंकि कहा है पुराने उनके शास्त्रों में कि ईश्वर जिसे चुनता है उसे बहुत कठिनाइयों से गुजर कर परीक्षा देनी पड़ती है; उसके लिए बड़ी चुनौतियां आती हैं, अग्नि-परीक्षाएं आती हैं।
एक बूढ़ा यहूदी ईश्वर की प्रार्थना कर रहा था और कह रहा था, हे परमपिता, तेरी हम पर सदा से अनुकंपा है! वर्षों से प्रार्थना करता था, एक दिन परमात्मा की आवाज आकाश से गूंजी कि तूने इतनी प्रार्थना की, अब कुछ मांग ले। तो उसने कहा, एक ही बात मांगनी हैः हमें चुने हुए काफी समय हो गया, अब आप किसी और को चुन लो। अब किसी और जाति को चुन लो। अब यहूदियों का पिंड छोड़ो! क्योंकि तुमने हमें क्या चुना, आज तीन हजार सालों से हम सताए जा रहे हैं--परीक्षा ही, परीक्षा ही, परीक्षा ही। उत्तीर्ण तो होने का कोई उपाय दिखाई पड़ता नहीं।
यहूदियों को ही भ्रांति नहीं है, दुनिया के हर आदमी को यह भ्रांति है। आदमियों को छोड़ दो, जानवरों को भी यह भ्रांति है।
तुमने कहानी सुनी होगी ईसप कीः एक सिंह को एक दिन सुबह-सुबह एक लोमड़ी
ने शक पैदा करवा दिया। लोमड़ी ने कहा, ऐसा लोग कहते तो हैं कि सिंह राजा है, मगर प्रमाण क्या? वोट लिए हैं लोगों के? अब जमाने गए राजशाही के, यह लोकतंत्र है। फिर से वोट लिया जाना चाहिए।
सिंह ने कहा, अभी जाकर पूछ लेता हूं। एक सियार से पूछा। सियार ने कहा,
यह भी कोई बात है पूछने की! अरे महाराज, महाराजाधिराज, आप ही सम्राट हैं! एक बिल्ली से पूछा। अरे, बिल्ली ने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है? यह तो ईश्वर ने ही आपको सम्राट बनाया। सिंह फूलता गया, फूलता गया। पूछता गया, फूलता गया। फिर उसने हाथी से पूछा। हाथी ने उसे अपनी सूंड में लपेटा और फेंका कोई पचास कदम दूर। गिरा जमीन पर, हड्डी-पसली टूट गई, झाड़-झूड़ कर अपने को उठ कर खड़ा हुआ और कहा कि भाई, अगर तुम्हें ठीक उत्तर मालूम नहीं तो कह देते। इतनी उठा-पटक की क्या जरूरत थी? साफ कह देते कि मुझे उत्तर मालूम नहीं।
मैंने सुना है, एक हाथी सुबह-सुबह, सर्दी के दिन हैं, धूप ले रहा है। एक चूहा भी अपनी पोल से निकल आया, वह भी हाथी के पास खड़ा होकर धूप ले रहा है। चाहता है कि हाथी का ध्यान उसकी तरफ जाए, लेकिन हाथी का ध्यान नहीं जा रहा। तो काफी चें-चें करता है, घूमता है, चारों तरफ चक्कर मारता है, जितना भी प्रचार कर सकता है करता है। आखिर हाथी को ख्याल में आता हैः कोई चें-चें- चें-चें, कोई पैर में चोंच भी मार रहा है। तो उसने नीचे देखा, बड़े गौर से देखा। छोटी-छोटी आंखें हाथी की, देखा एक चूहा जरा सा! सर्दी का समय है, फुर्सत का वक्त है, धूप लेने का समय है, कोई अड़चन नहीं है। हाथी ने कहा कि मेरे भाई, तुम भी हो क्या? इतने छोटे! मैंने तो कभी सोचा भी नहीं, सपने में भी नहीं देखा कि इतना छोटा भी प्राणी होता है! चूहा अकड़ कर खड़ा हो गया। उसने कहा, छोटा नहीं हूं। असल में मैं तीन महीने से बीमार हूं।
आदमी को ही नहीं, जानवरों को भी... ।
भारत पुण्यभूमि! कि यहां ऋषि-मुनियों का देश! कि हिंदू धर्म महान धर्म! कि इसलाम धर्म महान धर्म! कि ईसाइयत ही अकेला धर्म है जिससे स्वर्ग का द्वार खुलेगा! जो ईसाई हैं वे ही केवल प्रवेश पा सकेंगे, बाकी सब नरक में सड़ेंगे! ऐसे फिर झूठों पर झूठ समझाए जाते हैं। रूस में एक तरह के झूठ समझाए जाते हैं कि कम्युनिज्म एकमात्र भविष्य है; और अमरीका में दूसरे झूठ समझाए जाते हैं, भारत में तीसरे झूठ समझाए जाते हैं। मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। झूठ कोई भी हों, झूठ ही हैं। और झूठ सब तुम्हें फुलाते

हैं। झूठ सब तुम्हारी मालिश करते हैं। झूठ तुम्हारे अहंकार को पुष्ट करते हैं।
इसलिए झूठ को स्वीकार कर लेना, मुकेश, आसान है; आसान क्या सुखद है, प्रीतिकर है। सत्य को स्वीकार करने के लिए साहस चाहिए। सत्य को स्वीकार करने के लिए साहस ही नहीं, दुस्साहस चाहिए! सत्य को स्वीकार करने के लिए जोखिम उठाने की हिम्मत चाहिए। इसलिए सत्य के सामने कोई झुकता नहीं। झुकना पड़ेगा! झुकना कौन चाहता है? कोई नहीं झुकना चाहता।
सत्य के सामने झुकने को जो राजी है, वही धार्मिक व्यक्ति है। मैं उसी
को संन्यासी कहता हूं। लेकिन सत्य के सामने वही झुक सकता है, जिसके भीतर ध्यान की किरण उतरी हो और जिसने देखा हो कि मैं तो हूं ही नहीं। बस उस मैं के न होने में ही झुकना है। झुकना कोई कृत्य नहीं है। झुकना तुम्हारा कोई संकल्प नहीं है। अगर कृत्य है, अगर संकल्प है, तो कर्ता फिर निर्मित हो जाएगा, फिर अहंकार बन जाएगा। तुम्हारे भीतर एक नया अहंकार पैदा हो जाएगा कि देखो मैं कितना विनम्र हूं, कैसा झुक जाता हूं, जगह-जगह झुक जाता हूं, मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं!
चार आदमियों ने तय किया कि वे एक गुफा में बैठ कर ध्यान करेंगे, मौन रखेंगे। जब तक ज्ञानोपलब्धि न हो जाए, जब तक निर्विकल्प समाधि न लग जाए, तब तक हटेंगे नहीं, तब तक मौन नहीं तोड़ेंगे। कोई पांच-सात मिनट ही बीते होंगे कि पहला आदमी बोला कि अरे, पता नहीं मैं घर की बिजली बुझा कर आया कि नहीं! पांच बजे उठ कर चला आया हूं, बिजली जलती न छोड़ आया होऊं।
दूसरे आदमी ने कहा कि हमने तय किया है कि चुप रहेंगे और तुम बोल गए।
तीसरे आदमी ने कहा, भैया, बोल तो तुम भी गए।
चौथे आदमी ने कहा, हमीं भले, जो अब तक नहीं बोले!
ध्यान इस जगत में सर्वाधिक बहुमूल्य घटना है। क्योंकि ध्यान अर्थात मौन। ध्यान अर्थात निर्विचार। ध्यान अर्थात एक शून्य चैतन्य की अवस्था, जब चैतन्य तो पूरा होता है, लेकिन चैतन्य के समक्ष कोई विषय नहीं होता, कोई विचार नहीं होता। बस चैतन्य मात्र! उस चैतन्य की घड़ी में तुम जानोगे--तुम नहीं हो, परमात्मा है। यही झुकना है। और अगर यह जाने बिना तुम झुके तो तुम्हारा झुकना भी झूठ होगा, तुम्हारा झुकना औपचारिक होगा। और तब तुम्हारे भीतर एक नया अहंकार शुरू होगा, जो विनम्र आदमी में पाया जाता है। मैंने सुना है, जीवन की यह महत्वपूर्ण बातों में एक बात है, जो ठीक से समझ लेना, कि अहंकार के रास्ते इतने सूक्ष्म हैं कि अगर तुम बहुत जागरूक नहीं हो तो अहंकार को एक दरवाजे से तुम बाहर निकालोगे, वह दूसरे दरवाजे से भीतर आ जाएगा। अहंकार इतना कुशल है कि वह विनम्रता का भी आवरण लेकर तुम्हारे भीतर आ सकता है। दुनिया में विनम्रता का भी अहंकार होता है। लोग हैं ऐसे जिनको यह दंभ है कि उनसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं। मगर यह भाषा तो वही रही, अहंकार की रही, कुछ फर्क न पड़ा। अकड़ तो वही रही, कुछ फर्क न पड़ा। मूढ़ता जरा भी न बदली।
निरहंकारिता को सारे धर्मों ने बड़ा मौलिक गुण माना है। लेकिन ख्याल रखना, निरहंकारिता को! और तुम्हें समझाया जो जाता है वह समझाई जाती है विनम्रता; निरहंकारिता नहीं, अहंकार-शून्यता नहीं, बल्कि विनम्रता। भाषा- कोश में दोनों का एक ही अर्थ होता है। निरहंकारिता और विनम्रता, भाषा-कोश दोनों का एक ही अर्थ करते हैं। भाषा-कोशों से बड़ी भ्रांतियां फैलती हैं, क्योंकि भाषा-कोश लिखने वाले लोग भाषा जानते होंगे, जीवन नहीं जानते। जीवन की भाषा और है और भाषा का जीवन और है। भाषा तो केवल शब्दों, व्याकरण के नियमों का खेल है; जीवन कुछ और ही बात है, न वहां शब्द हैं, न व्याकरण है। जीवन की भाषा में अगर समझना हो, अगर अस्तित्वगत अनुभव समझना हो, तो विनम्रता अहंकार का एक रूप है; निरहंकारिता नहीं है विनम्रता।
इसलिए तुम विनम्र आदमी के चेहरे पर बड़ा दंभ पाओगे, बड़ी अकड़ पाओगे। ऐसे
वह हाथ जोड़ कर खड़ा होगा। हो सकता है तुम्हारे पैर छुए। हो सकता है तुमसे कहे, मैं तो आपकी चरण-रज हूं। मगर वह आंख के कोने से देख रहा है कि तुम प्रशंसा करो कि अहा, आप जैसा विनम्र आदमी कोई नहीं देखा! और स्वभावतः जो तुमसे कहेगा कि मैं आपकी चरण-रज हूं, आप उसकी प्रशंसा करोगे ही, क्योंकि वह

आपके अहंकार को भर रहा है, आप उसके अहंकार को भरो; यही पारस्परिक लेन-देन है, शिष्टाचार है।
कभी कोई आदमी आपसे कहे कि मैं आपके चरण की धूल हूं... । ऐसा एक दफे हुआ,
एक मुसलमान फकीर को लोग मेरे पास ले आए। उन्होंने मुझे कहा कि वह बड़ा विनम्र आदमी है! हर किसी के पैर छू लेता है! राह चलते लोगों के पैर छू लेता है! आपसे मिलाना है। मैंने कहा, जरूर ले आओ।
फकीर आया, एकदम मेरे पैरों में गिर पड़ा साष्टांग दंडवत! पैर के नीचे
की धूल उठा कर उसने अपने माथे पर टीका कर लिया। मुझसे बोला कि मैं आपके चरणों की धूल हूं। मैंने कहा, निश्चित! तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। चरणों की ही धूल हो!
वह आदमी बहुत चौंका। उसने मुझे बड़े क्रोध से देखा। मैंने कहा, तुमने बिल्कुल सत्य कहा। यही मेरी भी समझ है। तुम्हें देख कर ही मैं समझ गया कि तुम चरणों की धूल से ज्यादा नहीं हो।
वह आदमी कहने लगा, आप आदमी कैसे हैं! मैंने न मालूम कितने लोगों के चरण छुए हैं, बड़े-बड़े महात्माओं के पास गया; लेकिन कभी किसी ने मुझे इस तरह की कठोर बात नहीं कही।
मैंने कहा, कठोर! मैं तो सिर्फ तुम्हारी बात से राजी हो रहा हूं।
लेकिन वह नहीं चाहता कि मैं उसकी बात से राजी हो जाऊं; वह चाहता था सुनना कि मैं कहूं कि अहा, यही तो सदगुण है, यही पुण्य-भाव है। तो प्रसन्न होता। उसने यह "मैं आपके चरणों की धूल हूं", इसको सूत्र बना लिया अपने अहंकार के निर्माण करने का। मगर इतनी आसानी से अहंकार नहीं छूटता; अंतर्दर्शन के बिना नहीं छूटता। तुम ढोंग कितना ही करो सोच-विचार का, त्याग-तप का, सबको अहंकार पचा लेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे ने उससे पूछा, पापा, मेरे मास्टर जी कहते हैं कि दुनिया गोल है। लेकिन मुझे तो चपटी दिखाई पड़ती है। और ढब्बू जी का लड़का है, वह कहता है, न तो गोल है न चपटी, जमीन चौकोर है। पापा, आप तो बड़े विचारक हैं, आप क्या कहते हैं?
मुल्ला नसरुद्दीन ने आंखें बंद कर लीं। जब बेटा कह रहा है आप बड़े विचारक हैं तो थोड़ा विचारक का ढोंग करना पड़ेगा। आंखें बंद कर लीं, हाथ ठोड़ी से लगा लिया। जैसे तुमने रोडिन की मूर्ति देखी हो--दि थिंकर! हाथ लगाए हुए ठोड़ी से। थोड़ी देर बैठा ही रहा। हालांकि सोच-विचार कुछ नहीं आया, सब तरह की बातें सिर में घूमती रहीं कि आज कौन सी फिल्म देखने जाऊं, क्या करूं, क्या न करूं। बेटे ने कहा, पापा बहुत देर हो गई, अब तक आप पता नहीं लगा पाए? दुनिया गोल है, चपटी है कि चौकोर है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, बेटा, न तो दुनिया गोल है, न चपटी, न चौकोर, दुनिया चार सौ बीस है।
अब कितना ही सिर लगा कर सोचते रहो, मगर सोचोगे भी क्या? तुम्हारा सोच-विचार तुमसे ऊपर नहीं जा सकता। तुम्हारी विनम्रता भी तुमसे ऊपर नहीं जा सकती। तुम्हारी विनम्रता भी चाकर हो जाएगी तुम्हारे अहंकार की। और ये सारे झूठ और झूठों के झमेले हमें सिखाए गए हैं।
झूठ के सामने, मुकेश, तुम्हें झुकना ही नहीं पड़ता। झूठ खुद ही झुक जाता है; झूठ एकदम पैर पकड़ लेता है। झूठ कहता है, मालिक, मुझे सेवक की तरह स्वीकार कर लो। सब तरह आपकी सेवा करूंगा। सब तरफ आपकी सुरक्षा करूंगा। सत्य तो आपको मुश्किलों में डाल देगा; मैं आपको मुश्किलों से बचाऊंगा। सत्य तो आपको झंझटें खड़ी कर देगा।
सिग्मंड फ्रायड ने लिखा है--और ठीक लिखा है--कि अगर प्रत्येक व्यक्ति
यह तय कर ले पृथ्वी पर कि चौबीस घंटे सिर्फ सत्य बोलेंगे, सिर्फ सत्य और कुछ भी नहीं, तो दुनिया में चार दोस्त भी नहीं बचेंगे। सब पति-पत्नियों के तलाक हो जाएंगे। अगर चौबीस घंटे के लिए लोग तय कर लें कि सिर्फ सत्य बोलेंगे। खालिस सत्य और कुछ नहीं, तो सारे नाते-रिश्ते टूट जाएंगे।
और सिग्मंड फ्रायड जब कुछ कहता है तो उसकी बात में गहरी खोज है, जीवन
भर का अनुभव है। चालीस साल तक लोगों के मनों में झांकने की जो उसकी अपूर्व क्षमता थी, उसके आधार पर उसका यह वक्तव्य है। लोग कह ही नहीं रहे हैं। लोग

कुछ और ही कहते हैं। सोचते कुछ और हैं, बताते कुछ और हैं। भीतर कुछ है, बाहर कुछ और है। हमारे सारे नाते-रिश्ते झूठ पर खड़े हैं।
पत्नी कहती है पति से कि मैं आपके चरणों की दासी हूं। मगर हालत और है; मानती यही है कि यह चरणदास है। चौबीस घंटे यही सिद्ध करती है कि तुम चरणदास हो और चिट्ठी वगैरह में लिखती है कि आपके चरणों की दासी। वह सब चिट्ठी-पत्रियों में लिखने की बात है। मगर चरणदास भी जब चिट्ठी पाते हैं कि पत्नी लिखती है चरणों की दासी तो फूल कर कुप्पा हो जाते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं।
कौन पत्नी मानती है कि पति में अकल है! कौन पति मानता है कि मेरी पत्नी सुंदर है! लेकिन कहना पड़ता है, प्रशंसा करनी पड़ती है। और ऐसा ही नहीं कि लोग सिर्फ कहते ही हैं, इस तरह की किताबें लिखी गई हैं जिनमें इस तरह के सुझाव दिए गए हैं।
पश्चिम में डेल कारनेगी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसकी एक किताब इतनी बिकी है कि बाइबिल के बाद नंबर दो। हाऊ टु विन फ्रेंड्स एंड इन्फ्लुएंस पीपुल? कैसे दोस्त बनाओ और कैसे लोगों को जीतो? उसमें जो सूत्र दिए हैं, वे सब इसी तरह के झूठों के सूत्र हैं। डेल कारनेगी कहता है कि जब भी घर आओ तो भूलो ही मत पत्नी के प्रति प्रेम प्रकट करना। हो प्रेम या नहीं, इसका सवाल नहीं। कुछ न कुछ सुंदर शब्द बोलो ही; भीतर हों या न हों, यह सवाल नहीं। तुम्हारे भीतर क्या है, इससे किसी को क्या लेना-देना है? पत्नी तुम जो कहते हो उसको सुनती है। रोज कहो कि हे प्रिये, तेरे जैसी सुंदरी संसार में कोई भी नहीं है। सोचते तुम कुछ भी रहो, मगर कहो यही, तो तुम जीत पाओगे, स्वभावतः।
और डेल कारनेगी जो कह रहा है वह सदियों का अनुभव है लोगों का। चौबीस घंटे सत्य बोला जाए, सिर्फ सत्य, तो पृथ्वी एकदम उजड़ जाए, बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाए।
एक आदमी ने गांव के नेता जी को, किसी बातचीत में गुस्सा-गुस्सी हो गई
और सच्ची बात कह दी। कह दिया कि तुम उल्लू के पट्ठे हो! अब नेता जी को उल्लू का पट्ठा कहो तो नेता जी कुछ ऐसे ही नहीं छोड़ देंगे। उन्होंने अदालत में मुकदमा चलाया मानहानि का। मुल्ला नसरुद्दीन नेता जी के पास ही खड़ा था तो उसको गवाही में लिया। अब नेता जी ने गवाही में लिया तो वह मना भी नहीं कर सका। मानता वह भी था, मगर यह मौका छोड़ना क्यों! नेता जी प्रसन्न रहें तो ठीक ही है। कभी काम पड़ेंगे, कभी कोई लाइसेंस निकलवा देंगे, कभी कोई झंझट-झगड़ा होगा तो निपटा देंगे। तो चला गया अदालत में।
जिसने गाली दी थी नेता जी को, उसने मजिस्ट्रेट को कहा कि होटल में कम
से कम पचास लोग थे, जरूर मैंने उल्लू का पट्ठा शब्द का उपयोग किया है; लेकिन मैंने किसी का नाम नहीं लिया। मैं किसी और से भी कहता हो सकता हूं। नेता जी कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि मैंने इन्हीं से उल्लू का पट्ठा कहा है?
नेता जी ने कहा, सिद्ध कर सकता हूं। मेरे पास गवाह हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन को खड़ा किया गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि मुल्ला नसरुद्दीन, तुम गवाही देते हो कि इस आदमी ने नेता जी को इंगित करके उल्लू का पट्ठा कहा? मुल्ला ने कहा कि निश्चित, सौ प्रतिशत निश्चित बात है यह कि इसने नेता जी को ही उल्लू का पट्ठा कहा है! मजिस्ट्रेट ने कहा, तुम कैसे इतने निश्चित हो सकते हो? वहां पचास लोग और मौजूद थे, इसने किसी का नाम तो लिया नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, नाम लिया हो कि नहीं लिया हो, पचास मौजूद हों कि पांच सौ मौजूद हों, मगर वहां उल्लू का पट्ठा केवल एक था, वह नेता जी थे! इसने इन्हीं को कहा है, मैं कसम खाकर कहता हूं। अपने बेटे की कसम खाकर कहता हूं। वहां कोई दूसरा था ही नहीं, यह कहेगा भी किसको?
तुम छिपाओगे कितनी देर? हां, ऊपर हम छिपाए चले जाएं, तो भीतर एक धारा
चल रही है। ऊपर-ऊपर झूठ का बड़ा भार है, लेकिन भीतर सत्य की किरण भी मौजूद है।
मुकेश, जिस दिन तुम जानोगे कि अहंकार नहीं है उस दिन झुकना नहीं पड़ेगा, अपने को झुका हुआ पाओगे, अचानक झुका हुआ पाओगे! वही झुका हुआ पाना

प्रार्थना है, पूजा है। झुके चेष्टा से, वह पूजा नहीं है। झुका हुआ पाया निश्चेष्टा में, वह पूजा है। प्रार्थना कही तो प्रार्थना नहीं; प्रार्थना निकली तो प्रार्थना है।
लेकिन वह अपूर्व घड़ी तो तब आए, जैसे हंसा को हुआ वैसा तुमको हो--यह मन गया, यह मैं गया! और आई पवन और कह गई कि सावन आ गया।
ध्यान में उतरो, मुकेश! सत्य-असत्य का अभी विचार ही न करो। अभी तुम किसे सत्य कहोगे? किसे असत्य कहोगे?
किसी शहर के एक प्रसिद्ध सिनेमाघर में एक व्यक्ति मैनेजर के कक्ष में पहुंचा और उसने बड़े ही क्रुद्ध स्वर में मैनेजर से कहा, सुनिए जनाब, मेरी पत्नी अपने किसी प्रेमी के साथ यहां सिनेमा हाल में मौजूद है। उससे कहिए कि वह सीधी तरह घर चली जाए, नहीं तो बाद में बड़ा धमाल हो जाएगा। मैं यहीं तूफान मचा दूंगा।
मैनेजर ने कहा, आप शांत हो जाइए, शांत होकर बैठिए, हम अभी अनाउंस करवाते हैं।
मैनेजर ने पिक्चर हाल में अनाउंस करवाया, दोस्तो, कोई महिला जो कि अपने प्रेमी के साथ पिक्चर देखने आई हुई हैं, वे कृपया अपने घर चली जाएं।
यह उनके पति का आदेश है। हम दो मिनट के लिए हाल की लाइट बंद कर रहे हैं, जो भी महिला अपने प्रेमी के साथ हाल में हैं, वे कृपया अपने घर वापस चली जाएं। यह उनकी और हमारी दोनों की इज्जत का सवाल है। इसलिए हम बत्तियां बंद करवा देते हैं, ताकि कोई उन्हें देखे न, पहचाने न।
इस अनाउंसमेंट के बाद मैनेजर ने दो मिनट के लिए हाल की बत्तियां बंद करवा दीं। जब दो मिनट बाद बत्तियां जलाई गईं तो मैनेजर तथा दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि हाल में अब एक भी महिला मौजूद नहीं थी। एक जिंदगी है तुम जो जीते हो; एक जिंदगी है जो तुम दिखलाते हो। एक जिंदगी है जैसी होनी चाहिए थी; और एक जिंदगी है जैसी तुमने बना ली है। इन झूठों के बाहर आओ। लेकिन तुम बाहर आने की चेष्टा से बाहर न आ सकोगे। तुम्हारे भीतर सत्य की प्रतीति हो तो बाहर आ सकोगे।
फिर दोहरा दूंः क्रांति भीतर से बाहर की तरफ होती है, बाहर से भीतर की तरफ नहीं। पहले केंद्र पर क्रांति होती है तब परिधि की तरफ फैलती है। परिधि पर क्रांति नहीं होती। परिधि की क्रांति अगर हो तो वह क्रांति नहीं होती, क्रांति का केवल झूठा आभास होती है। परिधि की क्रांति को ही लोग आचरण कहते हैं। और समाज का जोर इसी पर है कि आचरण सुधारो, आचरण सुधारो। और तुम्हारे आचरण सुधारने के सब उपाय केवल तुम्हें झूठ कर जाते हैं, थोथा, पाखंडी कर जाते हैं।
मैं चाहता हूं, तुम्हारा अंतस जागरूक हो। आचरण अगर कभी बदले तो अंतस
के कारण बदले। आचरण के कारण अंतस नहीं बदलता है; आचरण तो सिर्फ पाखंडी ही पैदा करता है। आचरण नहीं, अंतस! इस सूत्र को हृदय में सम्हाल कर रख लो। आचरण जरूर बदलेगा, लेकिन आचरण छाया है अंतस की। छाया को बदलने में मत लगे रहना, क्योंकि छाया को बदलने से मूल नहीं बदलता। मूल बदल जाए तो छाया जरूर बदलती है।
इसलिए मैं अपने संन्यासियों को नहीं कहता कि तुम अपने आचरण को ऐसा करो, वैसा करो; यह खाओ, वह पीओ; इतने बजे उठो, इतने बजे मत उठो। मैं अपने संन्यासियों को सिर्फ एक बात कह रहा हूं, सिर्फ एक औषधि, कि तुम ध्यान में उतरो। ध्यान तुम्हें सत्य के सामने खड़ा कर देगा, फिर तुम्हारे जीवन में क्रांति होनी शुरू होगी--जो तुम करोगे नहीं, होगी ही। और उस बात का सौंदर्य ही और है, जब तुम्हारा आचरण अपने आप बदलता है, जब तुम्हारे आचरण में अपने आप आभा आती है! थोप-थाप कर, जबरदस्ती ऊपर से बिठा कर, किसी तरह सम्हाल कर जो आचरण बनाया जाता है, वह पाखंड है।
लेकिन सदियों से तुम्हें पाखंड सिखाया गया है धर्म के नाम पर, नीति के नाम पर। इसलिए मैं जब तुम्हें उस पाखंड को छोड़ देने के लिए कहता हूं तो तथाकथित नीतिवान लोग मेरे विपरीत हो जाते हैं, तथाकथित धार्मिक लोग मेरे विरोध में हो जाते हैं। उनका विरोध समझ में आता है, क्योंकि सदियों की उनकी धारणा को मैं तोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। लेकिन उस धारणा को तोड़ना ही

होगा, क्योंकि सदियां बीत गईं और आदमी नहीं बदला। सदियां बीत गईं और आदमी सड़ता ही चला गया।
बहुत देर वैसे ही हो चुकी है, अब जागो! अब हम एक नये धर्म का सूत्रपात करें; परमात्मा को एक नये ढंग से पुकारें; प्रार्थना को एक नयी भाव-भंगिमा दें; जीवन को एक नया मार्ग! वह मार्ग ध्यान का है, वह मार्ग अंतर्यात्रा का है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या मौत पर विजय नहीं पाई जा सकती है?

गिरीशचंद्र, यह प्रश्न तभी उठ सकता है जब मौत से तुम बहुत डरे होओ। मौत पर विजय पाने की जरूरत क्या है? मौत तो विश्राम है। क्या विश्राम पर विजय पानी है? क्या कभी विश्राम नहीं करना है? दौड़ते ही रहना है, धापते ही रहना है?
मौत दुश्मन नहीं है कि उस पर विजय पाओ; मौत तो महामित्र है। मौत तो तुम्हारे सारे जीवन के उपद्रव, सारे जीवन की आपाधापी के बाद तुम्हें विश्राम का क्षण है। मौत तो तुम्हें नयी देह देगी, नया जीवन देगी। अगर कुछ पाठ लिए हों पुराने जीवन से तो नये जीवन में उनका उपयोग कर लेना। मौत तुम्हें एक अवसर देगी पुरानी आदतें छोड़ने, पुरानी देह के छोड़ने, पुराने ढंग-ढांचे को छोड़ने का। मौत तो एक महा अवसर है।
मैंने सुना है, जब सिकंदर भारत की यात्रा को आया तो उसने सुन रखी थी एक कहानी। कहानी ही मानता था, नहीं सोचा था कि सच होगी। सुन रखा था उसने कि कहीं रास्ते में मरुस्थलों में कोई एक ऐसा झरना है, जिस झरने का जल पी लेने से आदमी अमर हो जाता है। सिकंदर जब आया तो उसने अपने सिपाहियों को कह रखा था कि पता लगाए रखना, जहां से गुजरो पता लगाए रखना, कि वह झरना कहां है? और आखिर वह एक दिन घड़ी आ गई जब उस झरने का पता मिल गया। सिकंदर ने उस झरने पर चारों तरफ पहरा लगवा दिया, अकेला उस झरने के पास गया। एक छोटी सी खोह में, एक छोटी सी गुफा में वह झरना था। भीतर प्रवेश किया। बड़ा स्वच्छ निर्मल जल था--ऐसा जैसा कभी नहीं देखा! स्फटिक मणि जैसी स्वच्छता की बात तो सुनी थी, मगर देखी नहीं थी, आज पहली बार देखी। सामने अमृत को देख कर फिर कोई रुके! जल्दी से अंजली भर कर पीने को ही जा रहा था कि कोई आवाज गूंजी कि रुक! चारों तरफ देखा कि कौन है गुफा में?
एक कौआ बैठा था। उस कौए ने कहा, रुक, मेरी सुन ले। मेरी कथा सुन ले। मेरी दुख-कथा सुन ले, फिर पीना। एक क्षण रुक जाएगा तो कुछ हर्ज नहीं होगा। एक तो कौआ, और बोले! भरी अंजली छूट गई। सिकंदर भी एकदम घबड़ा गया और उसने पूछा कि क्या तुम्हें कहना है? उस कौए ने कहा, मुझे यह कहना है कि जैसे तू सिकंदर है आदमियों में, ऐसा मैं भी सिकंदर हूं कौओं में। मैंने भी कहानी सुनी थी और मैं भी खोज में निकला था। और अंततः मैंने यह झरना पा लिया और मैंने जी भर कर पी लिया। इस बात को हुए सदियां बीत गईं। अब मैं मरना चाहता हूं और मर नहीं पा रहा हूं। सिर पटकता हूं, चोट नहीं लगती। पहाड़ से गिरता हूं, जिंदा का जिंदा। आग में चला जाता हूं, पंख नहीं जलते। जहर पीता हूं, असर नहीं होता। और अब मुझे मरना है। मैं थक गया! बहुत थक गया! अब कब तक जीता रहूं? किसलिए जीता रहूं? अब यह जिंदगी बहुत बोझ मालूम होती है। अगर तुम्हें कुछ पता हो ऐसी किसी जगह का जहां अमृत को काटने वाली कोई दवा, कोई एंटीडोट, तो मुझे बता दो। और मेरी कथा सुनने के बाद भी अगर तुम्हें पीना हो तो पीओ, लेकिन सोच लेना, फिर मर न सकोगे।
और कहते हैं सिकंदर ने दो क्षण सोचा और फिर ऐसा भागा वहां से--भागा इसलिए कि कहीं किसी प्रलोभन में पी ही न ले--ऐसा भागा कि उसने लौट कर पीछे नहीं देखा। कभी कोई उससे बात भी छेड़ता था उस झरने की तो वह बात नहीं करता था; वह कहता कि उसकी बात ही मत करो। उस झरने की मैं बात ही नहीं सुनना चाहता।
गिरीशचंद्र, तुम पूछते होः "क्या मौत पर विजय नहीं पाई जा सकती?"
क्या करोगे मौत पर विजय पाकर? मौत जीवन की विपरीत अवस्था नहीं है; जीवन को नित नया करने की व्यवस्था है। मौत से गुजर कर जीवन नितनूतन होता

है। मौत जीवन का अंत नहीं है। जीवन तो शाश्वत है। जीवन को जानो तो तुम्हें जीवन की शाश्वतता पता चल जाए। जीवन तो अमृत है ही, अब किसी और अमृत की जरूरत नहीं है। और मौत को जीत कर क्या करोगे?
मगर मौत से आदमी भयभीत है और भय के कारण मौत को जीतना चाहता है। और सदियों से आदमी ने चेष्टा की है। एक से एक मूर्खतापूर्ण चेष्टाएं की गई हैं। अभी अमरीका में एक नयी से नयी चेष्टा चल रही है, क्योंकि अमरीका में अब साधन उपलब्ध हो गए हैं। तो कुछ लोग मर जाते हैं, वे वसीयत कर जाते हैं कि उनकी देह को बचाया जाए। देह को बचाना बहुत मंहगा मामला है, दस हजार डालर प्रति दिन का खर्च होता है--एक लाख रुपया रोज। देह बिल्कुल न सड़े, जैसी की तैसी रहे, तो उसको बहुत तापमान को नीचे गिरा कर, बर्फ से भी बहुत नीचे तापमान को गिरा कर, बर्फ की चट्टानों में दबा कर रखना पड़ता है। एक क्षण को भी अगर गर्मी पहुंच गई, जरा सी भी गर्मी पहुंच गई, तो देह में सड़ान शुरू हो जाएगी। और यह मरने के मिनटों के भीतर हो जाना चाहिए।
इस समय अमरीका में कोई दस लाशें इस तरह बचाई जा रही हैं। क्यों? वे करोड़पतियों की लाशें हैं। वे मरते वक्त वसीयत कर गए हैं कि उनकी लाश बचाई जाए। किस आशा में? क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि दस या पंद्रह वर्ष के भीतर हम वह तरकीब खोज लेंगे जिससे मुर्दे को पुनः जिलाया जा सकता है। तो दस ही पंद्रह साल का सवाल है। दस-पंद्रह साल अगर लाश बची रही और तरकीब खोज ली गई तो मुर्दों को जगाया जाएगा, उसमें ये मुर्दे भी जाग जाएंगे। एक लाख रुपया रोज का खर्च! कोई चार अरब रुपया प्रति वर्ष का खर्च! मगर जिनके पास सुविधा है वे पंद्रह-बीस साल का इंतजाम कर सकते हैं।
समझ लो कि आज से बीस साल बाद एक आदमी इस तरह जिंदा भी हो गया, फिर क्या करेगा? पहले भी क्या किया था? पहले भी जिंदा रहा था, पहले ही क्या किया था? जो उपद्रव पहले किए थे वही फिर करेगा; कोई बुद्धिमत्ता तो आ नहीं जाएगी, कोई बोध तो पैदा हो नहीं जाएगा। और देह अगर बच भी गई तो भी बूढ़ी होगी, सड़ी होगी। करोगे क्या उसका? और यह भी समझ लो कि आज नहीं कल तुम्हारे शरीर के सारे के सारे हड्डी-मांस-मज्जा को भी बदला जा सके और नया किया जा सके, तो भी क्या होगा?
मैंने सुना है, एक आदमी बूढ़ा हो गया। बहुत धनपति था। उसने बुढ़ापे में शादी कर ली। अब बुढ़ापे की शादी, खुद की उम्र नब्बे साल और लड़की की उम्र उन्नीस साल। डाक्टरों से कहा कि कुछ करो। अब डाक्टर भी क्या करें! मगर डाक्टर इनकार भी नहीं कर सकते। विशेषज्ञ की एक मुसीबत होती है; वह यह तो कह ही नहीं सकता कि मैं नहीं जानता। नहीं तो उसका अज्ञान प्रकट होता है। उसने कहा, मत घबड़ाओ। उसने सारा का सारा यौन-यंत्र बदल डाला। एक बंदर का आपरेशन करके... ।
तुम जानते हो, हिंदुस्तानी बंदर अमरीका भेजे जा रहे हैं! बड़ा एक्सपोर्ट चलता है। हमारे पास एक्सपोर्ट करने को कुछ और है भी नहीं; चलो हनुमान जी के वंशजों को एक्सपोर्ट करो। इससे धर्म का भी प्रचार होगा, ये बंदर जाएंगे तो हनुमान चालीसा भी ले जाएंगे। और ये बंदर कोई साधारण बंदर तो नहीं हैं, रामचंद्र जी की सेवा में रहे हैं। चलो इसी तरह हिंदू धर्म फैलेगा।
तो एक बंदर का पूरा का पूरा यौन-यंत्र काट कर, उस आदमी का आपरेशन करके उसमें यौन-यंत्र बंदर का लगा दिया। बूढ़ा बहुत खुश हुआ। जवानी फिर अनुभव होने लगी। नौ महीने बाद पत्नी को बच्चा हुआ। बूढ़ा बाहर बैठा है--एकदम उत्तेजित। बंदर जैसा उत्तेजित! बैठता ही नहीं, खड़ा हो-हो जाता है। डाक्टर कहते हैं, बैठो भाई, थोड़ा वक्त लगेगा, पैदा होगा तभी होगा। मगर वह फिर-फिर उठ आता है। दरवाजा खोलता है, बंद करता है; अखबार खोलता है, बंद करता है। बंदर की हालत उसकी! आखिर डाक्टर बाहर आया। उसने पूछा, क्या हुआ?
उसने कहा, भई जरा ठहरो भी तो! तुम्हारा बच्चा पहले शैंडेलियर पर चढ़ गया है, अब वह उतरे नीचे तो हम बताएं क्या हुआ। वह शैंडेलियर से नहीं उतर रहा है।
अब बंदर का यंत्र लगाओगे तो क्या तुम बच्चे से आशा करते हो कि वह कुछ
और होंगे? मगर यह चल रही है कोशिश कि आदमी के यंत्र को बदल दो, उसकी

हड्डियां बदल दो, मांस-मज्जा बदल दो। यह भी चलेगा। मगर इस सब से भी क्या प्रयोजन है?
असली सवाल यह नहीं है कि मौत को कैसे विजय किया जाए; असली सवाल यह है
कि जीवन कैसे जीया जाए। क्या फिजूल की बात पूछते हो! अभी जिंदा हो, इस जिंदगी का क्या उपयोग हो सके, कैसा सदुपयोग हो सके, ऐसी कुछ बात पूछो। ऐसी कुछ बात पूछो कि कैसे जीएं इस जीवन को समग्रता से कि फिर दुबारा देह में न आना पड़े? ऐसी कुछ बात पूछो कि कैसे जीएं परिपूर्णता से कि यह पृथ्वी की परीक्षाओं में फिर न आना पड़े।
यही तो जानने वालों ने पूछा है और जानने वालों ने समझाया है और जताया है। उपनिषद यही पूछते हैं, बुद्ध यही पूछते हैं। बुद्ध यही समझाते हैं, उपनिषद यही समझाते हैं। कुरान और बाइबिल आखिर क्या समझा रहे हैं? एक ही बात समझा रहे हैं कि देह में होना, एक विराट आत्मा को एक बहुत संकीर्ण से स्थान में बंद करना है। यह कारागृह है। तुम चाहते हो कारागृह शाश्वत हो जाए? इन सींकचों के बाहर कभी न निकल सको?
हंसा, उड़ना नहीं है मानसरोवर की तरफ? हंसा, उड़ चल वा देश! उस दूसरे देश
की तलाश नहीं करनी है, इसी किनारे रहना है सदा-सदा? और पाया क्या है इस किनारे? खोया है सिर्फ।
नहीं, मृत्यु को शत्रु मत मानो। मृत्यु के दो उपयोग हैं। जो आदमी अंधे
की तरह जीया, ध्यान-विहीन जीया, उसके लिए भी मृत्यु मित्र है। क्योंकि वह उसे नयी देह देगी, फिर नया बचपन देगी, फिर नयी ताजगी देगी, फिर नयी बुद्धि देगी--ताकि फिर जीवन का अनुभव कर सके; इस बार चूक गया, अगली बार न चूके; इस आशा में परमात्मा दूसरा अवसर देगा। और जिस व्यक्ति ने जीवन को समग्रता से जीया, ध्यानपूर्वक जीया, जीवन को समाधि में रूपांतरित कर लिया, उसके लिए? उसके लिए दूसरी देह नहीं मिलेगी। उसके लिए तो परमात्मा में निमग्न होने का अवसर मिलेगा। वह तो उसके विराट आकाश में लीन हो जाएगा, जैसे गंगा सागर में गिर कर लीन हो जाती है। उस लीनता का आनंद लेगा। वह आनंद शाश्वत है-- सच्चिदानंद। वहां सत्य है, वहां चैतन्य है, वहां आनंद है। देह नहीं होगी, सिर्फ बोध मात्र होगा, चिन्मात्र होगा। और अगर तुम्हें यहीं-यहीं वापस आना है तो घबड़ाते क्यों हो?
मौत यदि रुकती नहीं तो जन्म भी रुकता कहां है!
एक क्षण यदि और है तो दूसरा क्षण और कुछ है,
रूप पल पल पर बदल कर और कुछ है और कुछ है।
यह अखंड विधान जग में रंच भी झुकता कहां है!
मौत यदि रुकती नहीं तो जन्म भी रुकता कहां है!
यदि तुम्हारे वक्ष में है सांस बांहों में भरा बल, काल-सरिता की लहर पर आंक दो गति-चित्र निर्मल। सिंधु समझो बिंदु पर यह बिंदु में चुकता कहां है!
मौत यदि रुकती नहीं तो जन्म भी रुकता कहां है!
दुख केवल दुख ही यदि सत्य है तो और क्या है?
अश्रु सिंचित हास पुलकित जिंदगी फिर और क्या है?
जिंदगी का मोल केवल मौत से चुकता कहां है!
मौत यदि रुकती नहीं तो जन्म भी रुकता कहां है!
गिरीशचंद्र, ऐसे क्या घबड़ाए? न मौत रुकती, न जन्म रुकता। मौत और जन्म
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; इधर मरे, उधर जन्मे। जन्म हो गया तो मौत होगी, मौत हो गई तो जन्म होगा--सिर्फ उन थोड़े से लोगों को छोड़ कर जो जाग कर मरेंगे। जो जाग कर मरेंगे, वे न तो जन्मते, न मरते; वे उस शाश्वत को पा लेते हैं, जिसका कोई जन्म नहीं, मृत्यु नहीं। उस शाश्वत का नाम ही परमात्मा है। गिरीशचंद्र, पाओ परमात्मा को। मौत पर विजय पाकर क्या करोगे? क्या हाथ लगेगा? सत्तर साल की जिंदगी हो कि सात सौ साल की, सात सौ साल की हो कि सात हजार साल की--क्या होगा? तुम वही-वही दोहराए जाओगे न! इतना दोहराने से भी तुम्हें समझ नहीं आती! इन्हीं-इन्हीं गड्ढों में फिर-फिर गिरोगे। यही-यही भूलें फिर-फिर करोगे।

नहीं, मौत पर विजय नहीं पानी है, जीवन पर विजय पानी है। और जीवन पर विजय कौन को मिलती है? उसको मिलती है जो जीवन को जान लेता है। हम अपने से ही अपरिचित जी रहे हैं; यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं और मौत को जीतना चाहते हैं! डुबकी मारो इसमें कि मैं कौन हूं। पूछो एक प्रश्न सतत--मैं कौन हूं? और इसका उत्तर खोज लो।
और उत्तर, ख्याल रखना, उधार न हो। मेरा उत्तर तुम्हारे काम का नहीं; न बुद्ध का, न महावीर का, न कृष्ण का, न क्राइस्ट का, किसी का उत्तर तुम्हारे काम का नहीं। तुम्हें अपना उत्तर खोजना होगा। अपना सत्य ही मुक्त करता है; दूसरों के सत्य सिद्धांत बन जाते हैं, संप्रदाय बन जाते हैं। दूसरों के सत्य तो बंधन बन जाते हैं।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप सत्य को बांटने में सदा संलग्न रहते हैं। आपकी अथक चेष्टा देख बस मैं चकित हूं। आप कहते हैं चमत्कार नहीं होते। मैं कैसे मानूं? आप तो जीवित चमत्कार हैं! मनुष्य की चेतना को जगाने का ऐसा प्रयास न पहले हुआ और न आगे होगा। मैं इस चमत्कार को नमस्कार करती हूं।

नीलम, मैं मिटा कि फिर चमत्कार ही चमत्कार है। जब तक मैं है तब तक विषाद ही विषाद है।
यहां जो हो रहा है, ऐसा कहना ठीक नहीं कि मैं कर रहा हूं; मैं नहीं हूं, इसलिए हो रहा है। मैं जो बोल रहा हूं, मैं नहीं बोल रहा हूं; कोई और बोल रहा है। यह जो सतत उपक्रम हो रहा है, इसमें मैं परमात्मा के हाथ में एक सूखे पत्ते की तरह हूं, हवाएं जहां उड़ा ले जाएं! अब मेरा न कोई व्यक्तिगत लक्ष्य है, न कोई गंतव्य है। मैं ही नहीं हूं, तो क्या लक्ष्य, क्या गंतव्य! परमात्मा पूरब ले जाता तो पूरब और पश्चिम ले जाता तो पश्चिम। आकाश में उठा दे तो ठीक और धूल में गिरा दे तो ठीक। जैसी उसकी मर्जी!
तुम धीरे-धीरे मुझे व्यक्ति की तरह देखना बंद ही कर दो। तुम भूल ही जाओ कि यहां कोई है। तुम तो मुझे बांस की पोली पोंगरी समझो। कोई बांसुरी का गीत अपना तो नहीं होता! बांसुरी से निकलता होगा। हां, अगर कोई भूल-चूक होती हो तो बांसुरी की होगी, मगर गीत बांसुरी का नहीं होता। अगर बेसुरा मैं कर दूं गीत तो वह बेसुरापन मेरे बांस का होगा; लेकिन अगर गीत में कोई माधुर्य हो तो माधुर्य तो सदा उस परमात्मा का है। अगर कोई सत्य हो तो सदा उसका है; अगर कुछ असत्य हो तो जरूर बांस ने जोड़ दिया होगा। बांस के कारण जरूर गीत उतना मुक्त नहीं रह जाता; बांस की संकरी गली से गुजरना पड़ता है, संकरा हो जाता है।
मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा करना। लेकिन मुझसे अगर कोई सत्य तुम्हें मिल जाए, उसके लिए मुझे धन्यवाद मत देना।
नीलम, याद रख! मैं तो बस वैसे हूं जैसे सूरज निकले तो रोशनी फैलती है।
अब कमल कोई यह थोड़े ही कहेगा कि सूरज आया और उसकी किरणों ने आकर मेरी पंखुड़ियों को खोला। वह तो सूरज निकला, कमल खुल जाता है। रात होती है, आकाश तारों से भर जाता है। फूल खिलते हैं, गंध उड़ती है। अब वर्षा आने को है, मेघ घिरेंगे; मेघ घिरेंगे, वर्षा भी होगी, प्यासी धरती तृप्त भी होगी। यह सब हो रहा है। बस इसी होने के महाक्रम में मैं भी एक हिस्सा हूं।
और चाहता हूं, नीलम, तू भी ऐसी ही एक हिस्सा हो जा। चाहता हूं मेरा प्रत्येक संन्यासी इस महाक्रम में एक हिस्सा हो जाए। उसे भाव ही न रहे अपने होने का; बस परमात्मा के होने का भाव पर्याप्त है, उसके आगे और क्या चाहिए!
गिरिवर से निर्झर झरता है!
छल छल का संगीत मनोहर घाटी को गुंजित करता है!
पाषाणों से नित टकरा कर
गिर गिर उठता फिर ऊपर,
फेनिल मोती की लड़ियों से
उछल उछल भरता अपना उर,
श्रांति सभी पथिकों के तन मन की क्षण भर में नित हरता है!

गिरिवर से निर्झर झरता है!
धरता कितने रूप मनोहर--
कभी तरल कुंदन सा बनकर
कभी चांद तारों से सज्जित
कभी अरुण रंग-रंजित होकर
पाषाणों से भरी हुई घाटी को भी उर्वर करता है! गिरिवर से निर्झर झरता है!
इसे मिले जीवन के जो पल
उन्हें बिताता चलकर अविरल,
ज्ञात नहीं है इसे कहां ले--
जाएगी जीवन की हलचल
फिर भी प्रतिपल हर्षित मन में निज पथ पर आगे बढ़ता है!
गिरिवर से निर्झर झरता है!
तुम तो मेरे संबंध में ऐसा ही सोचना जैसे पहाड़ से एक झरना गिरता हो, कि पक्षी सुबह गीत गाते हों! तुम मुझे भूल ही जाओ। तुम जितना मेरे व्यक्ति को भूल जाओगे उतने मेरे करीब आ जाओगे। जिस दिन मैं तुम्हें व्यक्ति की तरह दिखाई ही न पडूंगा उस दिन तुम बिल्कुल मेरे साथ संयुक्त हो जाओगे, एक हो जाओगे।
वही घड़ी गुरु और शिष्य के मिलन की घड़ी है--न गुरु गुरु रह जाता, न शिष्य शिष्य रह जाता। एक बचता है, दो खो जाते हैं। और उस दो के खो जाने में अमृत की वर्षा है, आनंद के द्वार खुलते हैं, प्रभु के मंदिर में प्रवेश होता है! और वही मेरा संदेश हैः उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र!
आज इतना ही।